TEXT CROSS WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186149

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H349.547 Accession No. G.H.180

Author L19P

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रेमसागर

पण्डित लल्लूलाल कृत

श्रीमद्भागवत दशमस्कंध का अनुवाद

संशोधक
पण्डित कालिका प्रसाद दीक्षित

(मंत्री श्री नागरी हितैषिणी सभा, प्रयाग)

प्रकाशक
रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर
प्रयाग

सम्वत् १९९५

भूमिका

यह पुस्तक प्रेमसागर पण्डित लल्लूलाल गुजराती ब्राह्मण कृत श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध का अनुवाद है और अनेक ठौर की छपी मिलती है, परन्तु अभी तक इतने छोटे आकार की पुस्तक देखने में नहीं आई; इसलिये मैंने यह ग्रन्थ सब के लाभ के लिये, और विशेष कर विद्यार्थियों के पढ़ने के हेतु, कई पुस्तकों से शुद्ध कराकर अलग अलग शब्द और बहुत स्वच्छ छपवाई; ऐसा कि जो थोड़ा पढ़ा हो वह भी सहज में पढ़ ले और आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र जी का चरित्र जाने। सब के सुभीते के लिये इसका मूल्य भी अल्प रक्खा है, इससे हमको पूर्ण आशा है कि पाठकगण अपने इष्ट मित्रों में इसका प्रचार कर हमारा उत्साह बढ़ावेंगे।

रामनारायण लाल

विषय-सूची

प्रकरण	पृष्ठ
१—पीठाबन्ध	१
२—देवकी विवाह, बालक बध	१२
३—गर्भस्तुति ...	१५
४—कृष्ण जन्म, कन्या ग्रहण	१८
५—कंस उपद्रव	२१
६—कृष्ण जन्मोत्सव ...	२३
७—पूतना बध ...	२५
८—शकट भंजन तृणावर्त्तबध	२७
९—विश्व दर्शन	२९
१०—दाम बन्धन	३३
११—यमलार्जुन मोक्ष ..	३५
१२—वत्सासुर, बकासुर बध	३६
१३—अघासुर बध ...	३९
१४—ब्रह्मा वत्सहरण, श्रीकृष्ण माया करण	४१
१५—ब्रह्मा, स्तुतिकरण ...	४२
१६—धेनुक बध	४३
१७—काली मर्दन	४५
१८—दावाग्नि मोचन ...	४९
१९—प्रलम्ब बध	५०
२०—दावाग्नि मोचन ...	५१
२१—वर्षा-शरद ऋतु वर्णन...	५३
२२—गोपी वेणु गीत वर्णन...	५४
२३—चीर हरण	५५

प्रकरण	पृष्ठ
२४—द्विजपत्नी याचना ...	५८
२५—गोवर्द्धन पूजन ...	६२
२६—व्रज रक्षा	६६
२७—गोपीकृष्ण लीला वर्णन	६९
२८—इन्द्रस्तुति करण ...	६९
२९—वरुणलोक गमन वैकुण्ठ चरित्र	७१
३०—रास क्रीड़ारम्भ ...	७३
३१—गोपी विरहवर्णन ...	७८
३२—गोपीजन विरहवर्णन	८१
३३—गोपी कृष्ण संवाद ...	८३
३४—पंचध्यायी रासलीलावर्णन	८५
३५—विद्याधरमोक्षशंख चूड़बध	८८
३६—गोपी गीत वर्णन ...	९१
३७—कंस नारद संवाद ...	९१
३८—व्योमासुर बध ...	९७
३९—अक्रूर वृन्दावन गमन	१००
४०—अक्रूर दर्शन ...	१०२
४१—अक्रूर स्तुतिकरण ...	१०६
४२—मथुरापुर प्रवेश ...	१०७
४३—कंस स्वप्नदर्शन ...	११२
४४—कुबलया बध ...	११६
४५—कंसासुर बध ...	१२०
४६—शंखासुर बध ...	१२२

प्रकरण	पृष्ठ
४७—ऊधो वृन्दाबन गमन ...	१३३
४८—ऊधोगोपीसंबोधन भ्रमरगीत ...	१३८
४९—कुबजाकेलि वर्णन ...	१४५
५०—अक्रूर हस्तिनापुर गमन	१४७
५१—जरासन्ध पराजय ...	१५०
५२—यमनमारण,मुचकुन्दतरण	१५७
५३—श्रीकृष्णप्रतिरुक्मिणीसंदेश	१६३
५४—रुक्मिणी हरण ...	१७३
५५—रुक्मिणी चरित्र ...	१८३
५६—प्रद्युम्नजन्म, सम्बर बध	१९२
५७—जाम्बवती, सत्यभामा विवाह	१९८
५८—शतधन्वा बध ...	२०७
५९—श्रीकृष्ण पंच विवाहकरण	२१६
६०—भौमासुर बध ...	२२६
६१—श्रीरुक्मिणी मानलीला वर्णन	२३६
६२—अनिरुद्ध विवाह, रुक्मबध	२४०
६३—ऊषा स्वप्न अनिरुद्ध ग्रहण	२४७
६४—ऊषा चरित्र वर्णन ...	२६६
६५—राजानृग मोक्ष ...	२७७
६६—बलभद्रचरित्र ...	२८२
६७—नृप पौड्रक मोक्ष ...	२८७
६८—बलभद्र चरित्र, द्विविदकपि बध	२९१
६९—शाम्ब विवाह कथन ...	२९३
७०—नारद माया दर्शन ...	२९८
७१—राजायुधिष्ठिर संदेश...	३०१
७२—श्रीकृष्णहस्तिनापुरगमन	३०३
७३—जरासन्ध बध ...	३०६
७४—सर्वभूपति हस्तिनापुर गमन	३१५
७५—शिशुपाल मोक्ष ...	३१७
७६—दुर्योधन मानमर्दन ...	३२३
७७—शाल्वदैत्य बध ...	३२५
७८—सूत बध	३३०
७९—श्रीबलराम तीर्थकरण	३३२
८०—सुदामा द्वारकागमन ..	३३६
८१—सुदामा दारिद्रगमन ...	३३९
८२—श्रीकृष्ण बलराम कुरुक्षेत्र-गमन	३४१
८३—स्त्रीगीतवर्णन ...	३४८
८४—वसुदेव यज्ञ करण ...	३४९
८५—देवकी मृतकपुत्रजीवन	३५२
८६—सुभद्राहरण श्रीकृष्णचन्द्र मिथिला गमन ...	३५४
८७—नरनारायण नारद-संवाद	३५८
८८—रुद्रमोक्ष वृकासुर बध	३६१
८९—द्विजकुमार हरण ...	३६३
९०—द्वारका विहार वर्णन...	३६९

॥ श्री ॥

प्रेमसागर

अथ कथा प्रारम्भः

१—पीढ़ाबन्ध

महाभारत के अन्त में जब श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान हुये तब पाण्डव तो महादुःखी हो, हस्तिनापुर का राज्य परीक्षित को दे हिमालय गलने गये, और राजा परीक्षित सब देश जीत धर्मराज करने लगा, कितने एक दिन पीछे राजा परीक्षित आखेट को गये तो वहाँ देखा कि एक गाय और बैल दौड़े चले आते हैं, तिनके पीछे मूसल हाथ में लिये एक शूद्र मारता आता है, जब वे पास पहुँचे तब राजा ने शूद्र को बुलाय दुःख पाय झुंझलाय कर कहा अरे तू कौन है ? अपना बखान कर जो मारता है गाय और बैल को जान कर, क्या तैंने अर्जुन को दूर गया जाना तिससे उसका धर्म नहीं पहिचाना। सुन, पाण्डु के कुल में ऐसा किसी को न पावेगा कि जिसके सोहीं कोई दीन को सतावेगा। इतना कह राजा ने खड्ग हाथ में लिया। यह देख कर खड़ा हुआ फिर नरपति ने गाय और बैल को भी निकट बुलाय कर पूँछा तुम कौन हो बुझा कर कहो देवता हो कि ब्राह्मण और किस लिये भागे जाते हो सो निधड़क कहो मेरे रहते किसी को इतनी सामर्थ्य नहीं जो तुम्हें दुःख दे।

इतनी बात सुनी तब तो बैल शिर झुका कर बोला—महाराज ये पापरूप काले वर्ण डरावनी सूरत जो आपके सन्मुख खड़ा है

सेा कलियुग है, इसी के आने से मैं भागा जाता हूँ। यह गाय रूप पृथ्वी है, सेा भी इसी के डर से भाग चली और मेरा नाम धर्म है, चार पाँव रखता हूँ—तप, सत्य, दया और शौच, सतयुग में मेरे चरण बीस बिस्वे थे, त्रेता में सेालह, द्वापर में बारह, अब कलियुग में चार बिस्वे रहा, इसमें कलि के बीच चल नहीं सकता। धरती बेाली—धर्मावतार! मुझसे इस युग में रहा नहीं जाता; क्योंकि शूद्र राजा हेा अधिक अधर्म मेरे ऊपर करेंगे तिनका बेाझ मैं न सह सकूँगी। इस भय से मैं भी भागती हूँ। यह सुनते ही राजा ने क्रोध कर कलियुग से कहा—मैं तुझे अभी मारता हूँ, वह थरथरा राजा के चरणों पर गिर गिड़गिड़ा कर कहने लगा कि, पृथ्वीनाथ! अब तेा मैं तुम्हारी शरण आया मुझे कहीं रहने को ठौर बताइये, क्योंकि तीन काल और चारों युग ब्रह्मा ने बनाये हैं सेा किसी भाँति मेटे नहीं मिटेंगे। इतना बचन सुनते ही राजा परीक्षित ने कलियुग से कहा कि तुम इतनी ठौर रहो—जुयें, झूँठ, मद की हाट, वेश्या के घर, हत्या, चोरी और सुवर्ण में; यह सुन कलि ने तो अपने स्थान को प्रस्थान किया और राजा ने धर्म को मन में रख लिया, पृथ्वी अपने स्वरूप में मिल गई राजा फिर नगर में आये और धर्मराज करने लगे। कितने एक दिन बीते राजा फिर एक समय आखेट को गये और खेलते खेलते प्यासे भये, शिर के मुकुट में तेा कलियुग रहता ही था उसने अपना अवसर पा राजा को अज्ञान किया, राजा प्यास के मारे कहाँ आते हैं कि जहाँ लोमश ऋषि आसन मारे नयन मूँदे हरि का ध्यान लगाये तप कर रहे थे, उन्हें देख राजा परीक्षित मन में कहने लगे कि इन्होंने अपने तप के घमण्ड से मुझे देख आँखें मूँद ली हैं, ऐसी कुमति ठान एक मरा साँप वहाँ पड़ा था सेा धनुष से उठा ऋषि के गले में डाल अपने घर आया। मुकुट उतारते ही राजा को ज्ञान

हुआ तो सोच कर कहने लगा कि कञ्चन में कलयुग का बास है यह मेरे शीश पर था इससे मेरी ऐसी कुमति हुई जो मरा सर्प ले ऋषि के गले में डाल दिया सेा मैं अब समझा कि कलि ने मुझसे पलटा लिया, इस महापाप से कैसे छूटूँगा। धरन् धन, जन, स्त्री और राज मेरा क्यों न गया सब आज, न जानूँ किस जन्म में यह अधर्म जायगा जो मैंने ब्राह्मण को सताया है। राजा परीक्षित तेा यहाँ इस अथाह शोक सागर में डूब रहे थे और जहाँ लोमश ऋषि थे तहाँ कितने एक लड़के खेलते हुए जा निकले, मरा साँप उनके गले में देख अचम्भे में रहे और घबरा कर आपस में कहने लगे कि भाई कोई इनके पुत्र से जाकर कह दे, जो उपवन में कौशिकी नदी के तीर ऋषियों के बालकों में खेलता है, एक सुनते ही दौड़ा वहीं गया जहाँ शृङ्गी ऋषि छोकरों के साथ खेलता था। कहा बन्धु तुम यहाँ क्या खेलते हेा, कोई दुष्ट मरा साँप तुम्हारे पिता के कण्ठ में डाल गया है। सुनते ही शृङ्गी ऋषि के नेत्र लाल हेा आये, दाँत पीस पीस लगा थरथर काँपने और क्रोध कर कहने कि कलियुग में राजा उपजे हैं अभिमानी, धन के मद से अन्धे हेा गये हैं दुखदायी, अब मैं उनको देहूँ शाप, वही मीच पावैगा आप। ऐसे कह शृङ्गी ऋषि ने कौशिकी नदी का जल चुल्लू में ले राजा परीक्षित को शाप दिया कि यही सर्प सातवें दिन तुझको डसेगा। इस भाँति राजा को शाप दे अपने बाप के पास आ गले से साँप निकाल कहने लगा कि हे पिता तुम अपनी देह सँभालो, मैंने उसे शाप दिया है जिसने आपके गले में मरा सर्प डाला था। यह बात सुनते ही लोमश ऋषि ने चैतन्य हो नयन उघाड़ अपने ज्ञान, ध्यान से विचार के कहा—अरे पुत्र! तूने यह क्या किया? क्यों शाप राजा को दिया? उसके राज्य में हम सुखी थे और कोई पशु पक्षी भी दुःखी न था ऐसा धर्मराज था कि सिंह गाय एक साथ रहते

और आपस में कुछ न कहते, हे पुत्र ! जिनके देश में हम बसे थे क्या हुआ तिनके हाथ से मरा हुआ साँप डाला गया, उसे शाप क्यों दिया तनक दोष पर ऐसा शाप तैने दिया, बड़ा ही पाप किया, कुछ विचार मन में न किया। गुण छोड़ा औगुण लिया, साधु को चाहिये शील स्वभाव से रहे, आप कुछ न कहै और की सुन ले सब का गुण ले अवगुण तजै। इतना कह लोमश ऋषि ने एक चेले को बुला कर कहा तुम राजा परीक्षित को जाके चिता दो नेा तुम्हें शृङ्गी ऋषि ने शाप दिया है भले लोग तो दोष देहींगे पर वह सुन सावधान तो हो जाय। इतना वचन गुरु का मान चेला चला वहाँ आया जहाँ राजा बैठा सोच करता था, आते ही कहा—महाराज ! तुम्हें शृङ्गी ऋषि ने वह शाप दिया है कि सातवें दिन तक्षक डसेगा, अब तुम अपना कार्य करो जिससे कर्म की फाँसी से छूटो। राजा सुनते ही प्रसन्न हो हाथ जोड़ कहने लगा कि मुझ पर ऋषि ने बड़ी कृपा की जेा शाप दिया—क्योंकि मैं माया मोह के अपार शोक-सागर में पड़ा था सेा निकाल बाहर किया। जब मुनि का शिष्य बिदा हुआ तब राजा ने आप बैराग लिया और जनमेजय को बुलाय राज पाट देकर कहा—बेटा गो ब्राह्मण की रक्षा कीजेा और प्रजा को सुख दीजेा। इतना कह आये रनिवास, देखी नारी सभी उदास, राजा को देखते ही रानियाँ पावों पर गिर रो रो कहने लगीं—महाराज ! तुम्हारा बियेाग हम अबला न सह सकेंगी इससे तुम्हारे साथ जी दें तो भला, राजा बोला—सुनो स्त्री को उचित है कि जिसमें अपने पति का धर्म रहै सेा करे, उत्तम कार्य में बाधा न डाले। इतना कह धन जन कुटुम्ब और राज्य की माया तज निर्मोही हो अपना योग साधने को गंगा के तीर जा बैठा इसको जिसने सुना वह हाय हाय कर पछताय पछताय बिन रोये न रहा और जब ये समाचार मुनियों ने सुना कि

राजा परीक्षित शृङ्गी ऋषि के शाप से मरने को गङ्गा के तीर आ बैठा है। तब व्यास, वशिष्ठ, भरद्वाज, कात्यायन, पाराशर, नारद, विश्वामित्र, वामदेव, जमदग्नि, आदि अट्ठासी सहस्र ऋषि आये, और आसन बिछाय बिछाय पाँत पाँत बैठ गये और अपने अपने शास्त्र विचार विचार अनेक भाँति के धर्म सुनाने लगे कि इतने में राजा को श्रद्धा देख पोथी काँख में लिये दिगम्बर भेष श्रीशुकदेव जी भी आ पहुँचे उनको देखते ही जितने मुनि थे सबके सब उठ खड़े हुए, और राजा परीक्षित भी हाथ बाँध खड़ा हो विनती कर कहने लगा। हे कृपा निधान मुझ पर बड़ी दया की जो इस समय मेरी सुध लिया। इतनी बात कही तब शुकदेव मुनि भी बैठे तो राजा ऋषियों से कहने लगे कि महाराज शुकदेव व्यास जी के तो बेटे और पाराशर जी के पोते तिनको देख तुम बड़े बड़े मुनीश होके उठे सो तो उचित नहीं इसका कारण कहो जो मेरे मन का सन्देह जाय, तब पाराशर मुनि बोले—हे राजा जितने हम बड़े बड़े ऋषि हैं पर ज्ञान में शुकदेव जी से छोटे हैं, इसलिये सब ने शुक का आदरमान किया, किसी ने इस आश पर कि ये तारण तरण हैं क्योंकि जब से जन्म लिया है तबहीं से उदासी हो बन बास करते हैं और राजा तेरा भी बड़ा पुण्य उदय हुआ जो शुकदेवजी आये, ये सब धर्मों से उत्तम धर्म कहेंगे तिससे तू जन्म मरण से छूट भव सागर पार होगा; यह बचन सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी को दण्डवत् कर पूँछा कि महाराज! मुझे धर्म समझाय के कहो कि किस रीति से कर्म के फन्दे से छूटूँगा, सात दिन में क्या करूँगा! अधर्म है अपार, कैसे भवसागर हूँगा पार। श्रीशुकदेवजी बोले—राजा तू थोड़े दिन मत समझ, मुक्ति तो होती है एक ही घड़ी के ध्यान में, जैसे षट्वाङ्ग राजा को नारद मुनि ने ज्ञान बताया था और उसने दो ही घड़ी में मुक्ति पाई थी

तुझे तो सात दिन बहुत हैं। जो एकचित्त होके ध्यान से सब समझो अपने ही ज्ञान से, कि क्या है देह किसका है बास कौन करता है इसमें प्रकाश, यह सुन राजा ने हर्ष कर पूँछा, हे महाराज! सब धर्मों से उत्तम धर्म कौनसा है सो कृपाकर कहो। तब शुकदेवजी बोले—हे राजा! जैसे सब धर्मों में वैष्णव धर्म बड़ा है तैसे पुराणों में श्रीमद्भागवत, जहाँ हरिभक्त यह कथा सुनावें हैं, तहाँ ही सर्व तीर्थ और धर्म आवें हैं जितने हैं पुराण पर नहीं हैं भागवत के समान, इस कारण मैं तुझे बारह स्कन्ध महापुराण सुनाता हूँ जो व्यास मुनि ने मुझे पढ़ाया है, तू श्रद्धा समेत आनन्द से चित्त दे सुन, तब तो राजा परीक्षित प्रेम से सुनने और शुकदेवजी मन से सुनाने लगे। नवमस्कन्ध की कथा जब मुनि ने सुनाई तब राजा ने कहा—हे दीनदयाल अब दयाकर कृष्णावतार की कथा कहिये, क्योंकि हमारे सहायक और कुल पूज्य वही हैं। शुकदेवजी बोले—हे राजा! तुमने मुझे बड़ा सुख दिया जो यह प्रसंग पूँछा, सुनो मैं प्रसन्न हो कहता हूँ। यदुकुल में पहिले भजमान नाम राजा थे तिनके पुत्र पृथु अरु पृथु के विदूरथ, तिनके शूरसेन जिन्होंने नवखण्ड पृथ्वी जीत के यश पाया उनकी स्त्री का नाम मरिष्या, जिसके दश लड़के और पाँच लड़कियाँ तिन में बड़े पुत्र बसुदेव जिनकी स्त्री के आठवें गर्भ में श्रीकृष्णचन्द्रजी ने जन्म लिया जब बसुदेवजी उपजे थे तब देवताओं ने सुरपुर में आनन्द के बाजने बजाये और शूरसेन की पाँचों पुत्रियों में से सब से बड़ी कुन्ती थी जो पाण्डु को ब्याही थी, जिसकी कथा महाभारत में गाई है। और बसुदेवजी पहिले तो रोहण नरेश की बेटी रोहिणी को ब्याह लाये। पीछे सत्रह अठारह पटरानी हुई, तब मथुरा में कंस की बहन देवकी को ब्याहा। तहाँ आकाशबाणी हुई कि इस

लड़की के आठवें गर्भ में कंस का काल उपजेगा। यह सुन कंस ने बहन बहनोई को एक घर में क़ैद किया और श्रीकृष्ण ने वहाँ ही जन्म लिया इतनी कथा सुनते ही राजा परीक्षित बोले महाराज कैसे जन्म कंस ने लिया। किसने उसे महा बर दिया और कौन रीति से कृष्ण उपजे आय और किस बिधि से गोकुल पहुँचे जाय यह तुम मुझे कहो समुझाय।

श्रीशुकदेवजी बोले मथुरा पुरी का आहुक नाम राजा तिसके दो बेटे एक का नाम देवक दूसरा उग्रसेन। कितने एक दिन पीछे उग्रसेन ही वहाँ का राजा हुआ जिसकी एक ही रानी उसका नाम पवनरेखा सो अति सुन्दरी और पतिव्रता थी आठों पहर स्वामी की आज्ञा ही में रहै। एक दिन कपड़ों से भई तो पति की आज्ञा ले सखी सहेलियों को साथ ले रथ में चढ़ बन में खेलने को गई, वहाँ घने घने वृक्षों में भाँति भाँति के फूल फूले हुये सुगन्ध सनी मन्द मन्द ठण्डी ठण्डी पवन बह रही थी। कोकिल, कपोत, कीर, मोर, मीठी मीठी मनभावनी बोलियाँ बोल रहे और एक पर्वत के नीचे यमुना न्यारी ही लहरें ले रही थी, कि रानी इस समय को देख रथ से उतरकर चली तो अचानक एक ओर अकेली भूल के जा निकली वहाँ द्रुमलिक नाम राक्षस भी संयोग से आ निकला, वह इनके रूप और यौवन की छबि को देख छक रहा और मन में कहने लगा कि इससे भोग किया चाहिये मन में यह ठान तुरन्त राजा उग्रसेन का स्वरूप बन रानी के सौंही जा बोला—तू मुझ से मिल। रानी बोली—महाराज! दिन को काम केलि करिये नहीं, क्योंकि इस पर शील और धर्म जाता है, क्या तुम नहीं जानते जो ऐसी कुमति बिचारी है। जब पवनरेखा ने इस भाँति कहा तब तो द्रुमलिक ने रानी का हाथ पकड़ कर खींच लिया और जो मन

माना सेा किया, इस छल से भेाग करके जैसा था तैसा बन गया, तब तेा रानी अतिदुःख पाय पछताय कहने लगी। अरे अधर्मी! पापी! चाण्डाल! तूने यह क्या अन्धेर किया? जेा मेरा सत खेा दिया। धिक्कार है तेरे माता पिता केा और गुरू केा जिसने तुझे ऐसी बुद्धि दी है तुझ सा पूत जनने से तेरी माँ बाँझ क्यों न हुई—अरे दुष्ट! जेा नर देह पाकर किसी का सत भङ्ग करते हैं सेा जन्म जन्म नरक में पड़ते हैं। द्रुमलिक बेाला—रानी तू श्राप मत दे, तुझे मैंने अपने धर्म का फल दिया। मुझे तेरी केाख बन्द देख के मेरे जी केा बड़ी चिन्ता थी सेा गई। अब तेरे पुत्र पैदा हेागा दसवें मास और मेरी देह के स्वभाव से तेरा पुत्र नव खण्ड पृथ्वी केा जीत राज करेगा और कृष्ण से लड़ेगा। मेरा नाम प्रथम कालनेमि था तब विष्णु से युद्ध किया था, अब जन्म ले द्रुमलिक नाम कहाया तुझकेा पुत्र दे चला तू अपने मन में किसी बात की चिन्ता मत कर, इतनी बात कह जब कालनेमि चला गया तब रानी केा भी कुछ शेाच समझ कर धीर्य भया।

दो०—जैसी हेा होतव्यता, तैसी उपजहि बुद्धि।
होनहार हिरदै बसै, बिसरि जाय सब सुद्धि॥

इतने में सब सखी सहेली आन मिलीं। रानी का शृङ्गार बिगड़ा देख एक सहेली बेाल उठी—इतने बेर तुझे कहाँ लगी और यह क्या गति हुई? पवनरेखा ने कहा—सुनेा सहेली, तुमने इस बन में तजी अकेली; एक बन्दर आया जिसने मुझे अधिक सताया तिसके डर से मैं अब तक थर थर कापती हूँ, यह बात सुनकर तेा सब की सब घबराईं और रानी केा झट रथ पर चढ़ा घर लाईं। जब दस महीने पूजे तब पूरे दिन लड़का हुआ तिस समय एक बड़ी आँधी चली कि जिसके मारे लगी धरती

डोलने, अंधेरा ऐसा हुआ जो दिन की रात हो गई और लगे तारे टूट टूट कर गिरने, बादल गर्जने, बिजली कड़कने। ऐसे माघ सुदी १३ वृहस्पतवार को कंस ने जन्म लिया, तब राजा उग्रसेन ने प्रसन्न हो सारे नगर के मङ्गलामुखियों को बुलवाया, मङ्गलाचार करवाया और सब ब्राह्मण पण्डित ज्योतिषियों को भी अति सन्मान से बुलवा भेजा, वे आये, राजा ने बड़ी भक्ति से आसन दे दे बैठाये, तब ज्योतिषियों ने लग्न साध मुहूर्त्त विचार कर कहा— पृथ्वीनाथ ! यह लड़का कंस नाम तुम्हारे वंश में उपजा सो अति बलवान् हो राक्षसों को ले राज्य करेगा और देवता हरिभक्तों को दुःख दे और आपका राज ले राज्य करेगा निदान हरि के हाथ मरेगा।

इतनी कथा कह शुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा— हे राजा ! मैं उग्रसेन के भाई देवक की कथा कहता हूँ कि, उसके ४ बेटे और ६ बेटियाँ थीं सो छहों बासुदेव को ब्याह दी, सातवीं देवकी हुई जिसके होने से देवताओं को प्रसन्नता हुई और उग्रसेन के भी दश पुत्र थे पर सब से कंस ही बड़ा था, जब से जन्मा तब से यह उपाधि करने लगा कि नगर नगर जाय छोटे छोटे लड़कों को पकड़ लावे और पहाड़ की खोह में मूँद मूँद मार डाले, जो बड़े होयँ तिनकी छाती पर चढ़ गला घोट जी निकाले। इस दुःख से कोई न निकलने पावे सब अपने अपने लड़कों को छिपाये, प्रजा कहैं दुष्ट यह कंस, उग्रसेन का नहीं है वंश, कोई महापापी जन्म ले आया है जिसने सारे नगर को सताया है, यह बात सुन उग्रसेन ने उसे बुलाकर बहुत सा समझाया पर इसका कहना कंस के जी में कुछ भी न आया, तब दुःख पाय पछताय के कहने लगा कि ऐसे पूत होने से मैं अपूत ही क्यों न हुआ, कहते हैं जिस समय कुपूत घर में आता है तिसी समय

यश धर्म जाता है जब कंस आठ वर्ष का हुआ तब मगध देश पर चढ़ गया। वहाँ का राजा जरासन्ध बड़ा योधा था तिससे मिल इसने मल्लयुद्ध किया, तो उसने कंस का बल लख लिया; तब हार मान अपनी दो छोटी बेटियाँ ब्याह दीं—उनको ले पहिले मथुरा में आया और उग्रसेन से बैर बढ़ाया एक दिन कोपकर अपने पिता से बोला कि तुम राम नाम कहना छोड़ दो, और महादेव का जप करो। इनसे कहा—मेरे तो कर्त्ता दुःख हर्त्ता वही हैं जो उनको नहीं भजूँगा तो अधर्मी हो कैसे भवसागर पार हूँगा। यह सुन कंस ने खुनसाय बाप को पकड़ कर सारा राज्य ले लिया, और नगर में डौंड़ी फेर दी कि कोई यज्ञ, दान, तप, धर्म और राम का नाम लेने न पावै। ऐसा अधर्म बढ़ा कि, गौ ब्राह्मण और हरि के भक्त दुख पाने लगे और धरती अति बोझ से भरने लगी। जब कंस सब राजाओं का राज्य ले चुका तब एक दिन अपना दल ले राजा इन्द्र पर चढ़ चला, तहाँ मंत्री ने कहा कि महाराज इन्द्रासन बिन तप किये नहीं मिलता, आप बल का गर्व न करिये देखो गर्व ने रावण, कुम्भकर्ण को कैसा खो दिया कि जिनके कुल में एक भी न रहा।

इतनी कथा कह शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजा जब पृथ्वी पर अति अधर्म होने लगा तब पृथ्वी दुःख पाय, घबराय गाय का रूप धन, डकारती देवलोक में गई और इन्द्र की सभा में जा शिर झुकाय उसने अपनी सब पीर कही कि महाराज संसार में असुर अति पाप करने लगे तिनके डर से धर्म तो उठ गया यदि मुझे आज्ञा हो तो नरपुर छोड़ रसातल को जाऊँ तब इन्द्र सब देवताओं को साथ ले ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा सुन सब को महादेव के निकट ले गये, महादेव भी सुन सब को साथ ले वहाँ गये जहाँ क्षीर समुद्र में नारायण सो रहे थे।

उनको सोते जान ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र सब देवताओं को साथ ले खड़े हो हाथ जोड़ बिनती कर देव-स्तुति करने लगे—महाराजाधिराज ! आपकी महिमा कौन कहि सकै, मत्स्यरूप हो वेद डूबते निकाले, कच्छप रूप बन पीठ पर गिरि धारण किया, बाराह बन भूमि को दाँत पर रख लिया, बामन होके राजा बलि को छला, परशुराम अवतार ले क्षत्रियों को मार पृथ्वी कश्यपमुनि को दी, रामावतार लिया तब महादुष्ट रावण का बध किया, और जब जब तुम्हारे भक्तों को दैत्य दुःख देते हैं तब तब आप विनकी रक्षा करते हैं। नाथ ! अब कंस के सताने से अति व्याकुल हो पुकार करती है विसकी वेग सुधि लीजै, असुरों को मार साधुओं को सुख दीजै, ऐसे गुणगाय देवताओं ने कहा तब आकाशबाणी हुई, सो ब्रह्मा देवताओं को समझाने लगे यह जो बाणी हुई सो तुम्हें आज्ञा दी है कि तुम सब देवी देवता ब्रजमण्डल जाय मथुरा नगरी में जन्म लो, पीछे चार स्वरूप धर हरि भी अवतार लेंगे, बसुदेव के घर देवकी की कोख में, और बाल लीला कर नन्द यशोदा को सुख देंगे, इसी रीति से जब ब्रह्मा ने बुझा कर कहा तब सुर मुनि किन्नर और गन्धर्व सब अपनी स्त्रियों समेत जन्म ले ले ब्रजमण्डल में यदुवंशी और गोप कहाये। और जो चारों वेद की ऋचायें थीं सो ब्रह्मा से कहने लगीं कि हम भी गोपी हो ब्रज में अवतार लें बासुदेव की सेवा करें इतना कह वे भी ब्रज में आईं और गोपी कहलाईं। जब सब देवता मथुरापुरी में आ चुके तब क्षीर समुद्र में हरि बिचार करने लगे कि पहिले तो लक्ष्मण हो बलराम, पीछे बासुदेव हो मेरा नाम, भरत प्रद्युम्न, शत्रुघ्न अनिरुद्ध और सीता रुक्मिणी का अवतार लें।

२—देवकी विवाह, बालक-बध

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा—हे महाराज! कंस तो इस अनीति से मथुरा में राज्य करने और उग्रसेन दुःख भरने लगा। देवक जो कंस का चाचा था उसकी कन्या देवकी जब ब्याहने योग्य हुई तब उसने जा कंस से कहा कि यह लड़की किसको दें? वह बोला सूरसेन के पुत्र वसुदेव को दीजिये, इतनी बात सुनते ही देवक ने एक ब्राह्मण को बुलाय शुभ लग्न मुहूर्त्त ठहराय सूरसेन के घर टीका भेज दिया तब तो सूरसेन भी बड़ी धूमधाम से बरात ले सब देश देश के नरेश साथ ले मथुरा में बसुदेव को ब्याहने आये; बरात नगर के निकट आई, सुन उग्रसेन देवक और कंस अपना दल ले आगे बढ़ नगर में ले गये, अति आदर मान से अगौनी कर, जनवासा दिया। खिलाय पिलाय सब बरातियों को मढ़े के नीचे ले जा बैठाया और वेद की विधि से कंस ने बसुदेव को कन्यादान दिया। तिसके यौतुक में पन्द्रह सहस्र घोड़े, चार हज़ार हाथी, अठारह सौ रथ, दास दासी अनेक दे कंचन के थाल वस्त्र आभूषण रत्नजटित से भर भर अनगिनत दिये और सब बरातियों को भी अलंकार सहित बागे पहिराय सब मिल, पहुँचावने को गये। तिस समय देववाणी हुई कि अरे कंस जिसको तू पहुँचावने चला है तिसका आठवाँ गर्भ तेरा काल उपजेगा, उसके हाथ तेरी मौत है यह सुनते ही कंस डर के मारे काँपने लगा और क्रोध कर देवकी के झोंटे पकड़ रथ से नीचे खैंच लाया और खड्ग हाथ में ले दाँत पीस पीस कहने लगा कि जिस पेड़ को जड़ ही से उखाड़िये तिसमें फूल फल काहे को लगेगा। अब इसी को मारूँ तो निर्भय राज्य करूँ, यह देख सुन

बसुदेव मन में कहने लगे कि इस मूर्ख ने सन्ताप दिया। यह पुण्य और पाप नहीं जानता है। जो मैं अब क्रोध करता हूँ, तो कार्य बिगड़ेगा, तिससे इस समय क्षमा करनी ही योग्य है।

चौ० जो बैरी खैंचे तलवार। करै साधु तिसकी मनुहार॥
समझ मूढ़ सोई पछताय। जैसे पानी आग बुझाय॥

यह सोच समझ बसुदेव कंस के सन्मुख जो हाथ जोड़ बिनती कर कहने लगे कि सुनो पृथ्वीनाथ तुमसा बली संसार में कोई नहीं और सब तुम्हारी छाँह तले बसते हैं। ऐसे शूर हो स्त्री पर शस्त्र करना यह अति अनुचित है, और बहिन के मारने से महापाप होता है, तिस पर भी मनुष्य अधर्म तो करै जो जाने कि मैं कभी न मरूँगा। इस संसार की तो यही रीति है, इधर जन्मा उधर मरा, किरोड़ यत्न से पाप पुण्यकर कोई इस देह को पोषे पर यह कभी अपनी न होयगी और धन यौवन राज्य भी न आवेगा काम, इससे मेरा कहा मान लीजै और अपनी अबला आधीन बहिन को छोड़ दीजै, इतना सुन वह अपना कालजान घबरा कर और भी झुँझलाया। तब बसुदेव सोचने लगे कि यह पापी तो असुर बुद्धि किये अपने हठ की टेक पर है। जिससे इसके हाथ से यह बचे सो उपाय किया चाहिये। ऐसे बिचार मन में कहने लगे अब तो इससे यों कह देवकी को बचाऊँ कि जो पुत्र मेरे होगा सो तुम्हैं दूँगा। पीछे किसने देखी है लड़का ही न होय, कि यही दुष्ट मरे, यह अवसर तो टलै फिर समझी जायगी। इस भाँति मन में ठान बसुदेव ने कंस से कहा—महाराज! तुम्हारी मृत्यु इसके पुत्र के हाथ न होगी क्योंकि मैंने एक बात ठहराई है, कि देवकी के जितने लड़के होंगे तितने मैं तुम्हैं ला दूँगा। यह बचन मैंने तुमको दिया, ऐसी बात जब बसुदेव ने कही तब समझ के कंस ने मान

ली और देवकी को छोड़ कहने लगा—हे बसुदेव ! तुमने अच्छा बिचार किया जो ऐसे भारी पाप से मुझे बचा लिया इतना कह बिदा किये और अपने घर गये।

कितने एक दिन मथुरा में रहते भये जब पहिला पुत्र देवकी के हुआ ; तब बसुदेव ले कंस पै गये और रोता हुआ लड़का आगे धर दिया। देखते ही कंस ने कहा, बसुदेव ! तुम बड़े सत्य-वादी हो मैंने आज जाना क्योंकि तुमने मुझसे कपट न किया। निर्मोही हो अपना पुत्र ला दिया इससे डर मुझे कुछ नहीं है यह बालक मैंने तुझे दिया। इतना सुन बालक ले दण्डवत् कर बसुदेव जी तो अपने घर आये और उसी समय नारद मुनि जी ने जाय कंस से कहा—राजा ! तुमने यह क्या किया जो बालक उलटा फेर दिया, क्या तुम नहीं जानते कि बसुदेव की सेवा करने को सब देवताओं ने ब्रज में आय जन्म लिया है, और देवकी के आठवें गर्भ में श्रीकृष्ण जन्म ले सब राक्षसों को मार भूमि का भार उतारेंगे। इतना कह नारद मुनि ने आठ लकीरें खैंच गिनवाई जब आठ ही आठ गिन्ती में आईं तब डर कर कंस ने लड़के समेत बसुदेव जी को बुला भेजा। नारद मुनि तो यों समुझाय बुझाय चले गये और कंस ने बसुदेव से बालक ले मार डाला। ऐसे जब जब पुत्र होय तब तब बसुदेव ले आवें और कंस मार डालै, इसी रीति से छः बालक मारे, तब सातवें गर्भ में शेषरूप जो श्रीभगवान् तिन्हों ने आ बास किया। यह कथा सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव मुनि से पूँछा महाराज ! नारद मुनि जी ने जो अधिक पाप करवाया तिसका ब्योरा समझा कर कहो, जिससे मेरे मन का सन्देह जाय। श्रीशुक-देव जी बोले—राजा ! नारद जी ने तो अच्छा बिचारा कि यह अधिक अधिक पाप करे तो श्रीभगवान् तुरन्त ही प्रकट होवैं॥

३—गर्भस्तुति

फिर शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजा जैसे गर्भ में हरि आये और ब्रह्मादिक ने गर्भ-स्तुति करी और देवी जिस भाँति बलदेव जी को गोकुल ले गई तिसी रीति से कथा कहता हूँ। एक दिन राजा कंस अपनी सभा में आय बैठा और जितने दैत्य उसके थे उनको बुलाकर कहा सुनो सब देवता पृथ्वी में जन्म ले आये हैं तिन्हीं में कृष्ण भी अवतार लेगा यह भेद मुझसे नारद मुनि समुझाय के कह गये हैं इससे अब उचित यही है कि तुम जाकर सब यदुबंशियों का ऐसा नाश करो जो एक भी जीता न बचे।

यह आज्ञा पा सब के सब दण्डवत कर चले। नगर में आ ढूँढ़ ढूँढ़ पकड़ पकड़ लगे बाँधने, खाते पीते, खड़े बैठे, सोते जागते, चलते फिरते, जिसे पाया तिसे न छोड़ा, घेर के एक ठौर लाये और जला जला डुबो डुबो पटक पटक दुःख दे दे सब को मार डाला, इसी रीति से छोटे बड़े भयावने भाँति भाँति के भेष बनाये नगर नगर गाँव गाँव गली गली घर घर खोज खोज लगे मारने और यदुबंसी दुःख पाय पाय देश छोड़ छोड़ जी ले ले भागने लगे।

उसी समय बसुदेव की जो और स्त्रियाँ थीं सो भी रोहिणी समेत मथुरा से गोकुल आईं जहाँ बसुदेव जी के परम मित्र नन्द जी रहते थे उन्होंने अति हित से आशा भरोसा रक्खा, वे आनन्द से रहने लगीं जब कंस देवताओं को यों सताने और अति पाप करने लगा तब विष्णु ने अपनी आँखों से एक माया उपजाई, सो हाथ बाँध सन्मुख आई उससे कहा तू अभी संसार में जा मथुरापुरी के बीच अवतार ले, जहाँ दुष्ट कंस मेरे भक्तों को

दुःख देता है और कश्यप अदिति जो बसुदेव देवकी हो व्रज में गये हैं तिनको मूँद रक्खा है। छः बालक तो तिनके कंस ने मार डाले अब सातवें गर्भ में लक्ष्मण जी हैं। उनको देवकी के कोख से निकाल गोकुल में जाकर इस रीति से रोहिणी के पेट में रख दीजो कि कोई दुष्ट न जाने और सब वहाँ के लोग तेरा यश बखानें।

इस भाँति माया को समझाय श्री नारायण बोले कि तू तो पहले जाकर यह कार्य करके नन्द के घर में जन्म ले पीछे बसुदेव के यहाँ अवतार ले, मैं भी नन्द के घर आता हूँ। इतना सुनते ही माया झट मथुरा में आई और मोहनी का रूप धन बसुदेव के गेह में पैठ गई।

चौ०—जो छिपाय गर्भ हर लिया। जाय रोहिणी को सो दिया॥
जाने सब पहिला आधान। भये रोहिणी के भगवान॥

इसी रीति से श्रावण सुदी चौदश बुधवार को बलदेव जी ने गोकुल में जन्म लिया और माया ने बसुदेव देवकी को जा स्वप्न दिया, कि मैंने तुम्हारा पुत्र गर्भ से जाय रोहिणी को दिया है; सो किसी बात की चिन्ता मत कीजो। सुनते ही बसुदेव देवकी जाग पड़े और आपस में कहने लगे कि यह तो भगवान ने भला किया पर कंस को इसी समय जताना चाहिये, नहीं तो क्या जानिये पीछे क्या दुःख दे, यों सोच समझ रखवालों से बुलाकर कहा उन्होंने कंस को जा सुनाया कि, महाराज! देवकी का गर्भ अधूरा गया बालक कुछ न पूरा भया सुनते ही कंस घबरा कर बोला कि तुम अब की बेर चौकसी करियो क्योंकि मुझे आठवें गर्भ का डर है जो आकाश बाणी कह गई है।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजन्! बलदेव जी तो यों प्रगटे और जब श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ में आये तभी माया ने जा नन्द की रानी यशोदा के पेट में बास लिया। दोनों गर्भ से थीं कि एक पर्व में देवकी यमुना नहाने गई, वहाँ संयोग से यशोदा भी आन मिली तो आपस में दुःख की चर्चा चली निदान यशोदा ने देवकी को वचन दे कहा कि तेरा बालक मैं रक्खूँगी; अपना तुझे दूँगी। ऐसे वचन दे यह अपने घर आई और वह अपने आई। जब कंस ने जाना कि देवकी का आठवाँ गर्भ रहा, तब जा बसुदेव का घर घेरा चारों ओर दैत्यों की चौकी बैठा दी और बसुदेव को बुलाकर कहा, कि अब तुम मुझ से कपट मत कीजो; अपना लड़का ला दीजो तब तो मैंने तुम्हारा ही कहना मान लिया था।

ऐसे कह बसुदेव देवकी के बेड़ी हथकड़ी पहिराय एक कोठे में मूँदकर ताले पर ताले दे निज मन्दिर में आ, मारे डर के उपास कर सेा रहा। फिर भोर होते ही वहीं गया, जहाँ बसुदेव देवकी थे, गर्भ का प्रकाश देख कहने लगा कि इसी यम गुफा में मेरा काल है, मार तो डालूँ पर अपयश से डरता हूँ; क्योंकि अति बलवान हो स्त्री को हनना योग्य नहीं, भला इसके पुत्र ही को मारूँगा। यों कह बाहर आ गज, सिंह श्वान और अपने बड़े २ योद्धा वहाँ चौकी को रखाये और आप भी नित चौकसी कर आवे, पर एक पल भी कल न पड़े जहाँ देखे आठ पहर चौंसठ घड़ी कृष्ण-रूप काल ही दृष्टि आवे तिसके भय से रात दिन चिन्ता में गँवावे।

इधर कंस की तो यह दशा थी, उधर बसुदेव और देवकी पूरे दिनों महाकष्ट में श्रीकृष्ण ही को मनाते थे कि इसी बीच भगवान् ने आ उन्हें स्वप्न दिया और इतना कह उनके मन का

शोच दूर किया—हम वेग ही जन्म ले तुम्हारी चिन्ता मेटते हैं, तुम अब मत पछिताओ। यह सुन बसुदेव देवकी जाग पड़े तो इतने में ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादिक सब देवता अपने अपने बिमान अधर में छोड़ अलख-रूप बन बसुदेव के गृह में आये और हाथ जोड़ जोड़ वेद गाय गाय, गर्भस्तुति करने लगे। तिस समय उनको तो किसी ने न देखा पर वेद की ध्वनि सब ने सुनी। यह अचरज देख सब रखवाले अचम्भे में रहे और बसुदेव देवकी को निश्चय हुआ कि भगवान वेग ही हमारी पीर हरेंगे।

४—श्रीकृष्ण-जन्म, कन्या-ग्रहण

श्रीशुकदेव जी बोले—राजा जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र जन्म लेने लगे, तिस काल सब ही के जी में ऐसा आनन्द उपजा कि दुःख नाम को भी न रहा। हर्ष से बन उपबन लगे हरे हो हो फलने फूलने, नदी नाले सरोवर भरने, तिन पर भाँति भाँति के पक्षी कलोलें करने और नगर नगर गाँव गाँव घर घर मङ्गलाचार होने, ब्राह्मण यज्ञ रचने, दशों दिशा के दिक्पाल हर्षने, बादल ब्रज-मण्डल पर फिरने, देवता अपने अपने बिमानों में बैठे आकाश से फूल बर्षाने विद्याधर, गंधर्ष, चारण, ढोल दमामे भेरी बजाय बजाय गुण गाने लगे, और एक ओर उर्बशी आदि सब अप्सरा नाच रही थीं कि ऐसे समय भादों बदी अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्र में आधी रात को श्रीकृष्णचन्द्र ने जन्म लिया, और मेघवर्ण, चन्द्र-मुख, कमल नयन हो, पीताम्बर काछे मुकुट धरे, बैजन्ती माल और रत्न जटित आभूषण पहरे चतुर्भुजरूप किये शङ्ख चक्र गदा पद्म लिये बसुदेव देवकी को दर्शन दिया। देखते ही अचम्भे में हो उन दोनों ने ज्ञान से बिचारा तो आदि पुरुष को जाना, तब हाथ

जोड़ बिनती कर कहा—हमारे बड़े भाग्य जो आपने दर्शन दिया, और जन्म मरण का निबेड़ा किया।

इतना कह पहिली कथा सब सुनाई, जैसे जैसे कंस ने दुःख दिया था। तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले—तुम अब किसी बात की चिन्ता मन में मत करो; क्योंकि मैंने तुम्हारे दुःख के दूर करने ही को अवतार लिया है, पर इस समय मुझे गोकुल पहुँचा दो, और इसी बिरियाँ यशोदा के लड़की हुई है, सो कंस को ला दो, अपने जाने का कारण कहता हूँ सो सुनो।

दो०—नन्द यशोदा तप कियेा, मोही सों मन लाय।
देख्यो चाहत बाल सुख, रहों कछू दिन जाय॥

फिर कंस को मार आन मिलूँगा, तुम अपने मन में धीर्य्य धरो, ऐसे बसुदेव देवकी को समझाय श्रीकृष्ण बालक बन रोने लगे, और अपनी माया फैला दी। तब तो बसुदेव देवकी का ज्ञान गया और जाना कि हमारे पुत्र भया। यह समझ दश सहस्र गाय मन में संकल्प कर लड़के को गोद में उठा छाती से लगा लिया, उसका मुख देख देख दोनों लम्बी साँसैं भर भर आपस में कहने लगे—जो किसी रीति से इस लड़के को भगा दीजै तो कंस पापी के हाथ से बचे, बसुदेव बोले—

चौ० बिधना बिन राखे नहिं कोई। कर्म लिखा सोई फल होई॥
तब करि जोर देवकी कहे। नन्द मित्र गोकुल में रहे॥
पीर यशोदा हरे हमारी। नारि रोहिणी तहाँ तिहारी॥

इस बालक को वहाँ ले जाओ, यों सुन बसुदेव अकुला कर कहने लगे कि इस कठिन बन्धन से छूट कैसे ले जाऊँ? ज्यों इतनी बात कही त्यों सब बेड़ी हथकड़ी खुल पड़ी; चारों ओर

के किवाड़ खुल गये, पहरुये अचेत नींद वश भये तब तो बसुदेव जी ने श्रीकृष्ण को सूप में रख शिर पर धर लिया और झटपट ही गोकुल को प्रस्थान किया।

सो० ऊपर बरसे देव, पीछे सिंह जु गुञ्जरे।
शोचत है बसुदेव, यमुना देखि प्रवाह अति॥

नदी तीर खड़े हो बसुदेव बिचारने लगे कि पीछे तो सिंह बोलता है, और आगे अथाह यमुना बह रही है अब क्या करूँ ऐसा कह भगवान का ध्यान धर यमुना में पैठे। ज्यों ज्यों जाते थे, त्यों त्यों नदी बढ़ती थी जब नाक तक पानी आया तो ये निपट घबराये, इनको व्याकुल जान श्रीकृष्ण ने अपना पाँव बढ़ाय हुँकार दिया। चरण छूते ही यमुना थाह हुई बसुदेव पार हो नन्द की पौर पर जा पहुँचे वहाँ किवाड़ खुले पाये भीतर धस के देखें तो सब सोये पड़े हैं। देवी ने ऐसी मोहनी डाली थी कि यशोदा को लड़की के होने की भी सुधि न थी। बसुदेव जी ने कृष्ण को तो यशोदा के निकट सुला दिया और कन्या को ले चल अपना पन्थ लिया। नदी उतर फिर आये जहाँ बैठी देवकी शोचती थी तहाँ कन्या दे वहाँ की कुशल कही। सुनते ही देवकी प्रसन्न हो बोली—हे स्वामी! हमें कंस अब मार डाले तो कुछ चिन्ता नहीं क्योंकि इस दुष्ट के हाथ से पुत्र तो बचा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि जब बसुदेव लड़की को ले आये तब किवाड़ ज्यों के त्यों भिड़ गये, और दोनों ने हथकड़ियाँ बेड़ियाँ पहर लीं, कन्या रो उठी। रोने की धुनि सुन पहरुये जागे तो अपने अपने शस्त्र ले ले सावधान हो, लगे तुपक छोड़ने, तिनका शब्द सुन लगे हाथी चिघाड़ने, सिंह धहाड़ने और कुत्ते भौंकने तिसी समय अँधेरी

रात के बीच बर्षते में एक रखवाले ने हाथ जोड़ के कंस से कहा—महाराज ! तुम्हारा बैरी उपजा, यह सुन कंस मूर्छित हो गिरा।

५—कंस-उपद्रव

बालक का जन्म सुनते ही कंस डरता काँपता उठ खड़ा हुआ, और खड्ग हाथ में ले गिरता पड़ता दौड़ा। छूटे बालों पसीने में डूबा धुकुड़ पुकुड़ करता जा बहिन के पास पहुँचा। जब उसके हाथ से लड़की छीन ली। तब वह हाथ जोड़ बोली—अब भैया ! यह कन्या तेरी भानजी है इसे मत मार यह मेरी पेट पोछनी है। मारे है बालक छः तिनका दुःख मुझे अति सताता है, बिन काज कन्या को मार क्यों पाप बढ़ाता है। कंस बोला—जीती लड़की तुझे न दूँगा, जो इसे ब्याहेगा सो मुझे मारेगा। इतना कह बाहर आ ज्यों चाहे कि फिराय कर पत्थर पर पटके त्योंही हाथ से छूट कन्या आकाश को गई और पुकार के यह कह गई—अरे कंस मेरे पटकने से क्या हुआ ? तेरा बैरी कहीं जन्म ले चुका, अब तू न बचेगा।

यह सुन कंस अकुता पकुता वहाँ आया जहाँ बसुदेव देवकी थे, आते ही उनके हाथ पाँव की हथकड़ी बेड़ी काट दी, और हाथ जोड़ कर कहने लगा कि मैंने बड़ा पाप किया जो तुम्हारे पुत्र मारे यह कलङ्क कैसे छूटेगा ? किस जन्म में मेरी गति होगी ? तुम्हारे देवता झूँठे हुये जिन्होंने कहा था कि देवकी के आठवें गर्भ में लड़का होगा सो न हुआ लड़की हुई, वह भी हाथ से छूट स्वर्ग को गई। अब दया कर मेरा दोष जी में मत रक्खो क्योंकि कर्म का लिखा कोई मेट नहीं सकता। इस संसार में आये

से जीना मरना, संयोग वियोग मनुष्य का नहीं छूटता, जो ज्ञानी हैं सो मरना जीना समान ही जानते हैं और अभिमानी मित्र शत्रु कर मानते हैं। तुम तो बड़े साधु सत्यवादी हो जो हमारे हेतु अपने पुत्र ले आये।

ऐसे कह जब कंस बार बार हाथ जोड़ने लगा तब बसुदेव जी बोले महाराज! तुम सच कहते हो इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं, विधाता ने यही हमारे कर्म में लिखा था। यों सुन कंस प्रसन्न हो अति हित से बसुदेव देवकी को अपने घर ले आया और भोजन करवाय वस्त्र पहिराय बड़े आदर भाव से दोनों को फेर वहीं पहुँचाय दिया। और मंत्री को बुला के कहा कि देवी कह गई है तेरा बैरी जग में जन्मा। इससे अब देवताओं को जहाँ पाओ तहाँ मारो, क्योंकि उन्होंने मुझसे झूँठी बात कही थी आठवें गर्भ में तेरा शत्रु होगा। मंत्री बोला—महाराज! उनका मारना क्या बड़ी बात है वे तो जन्म के भिखारी हैं। जब आप कोपियेगा तभी वे भाग जायँगे, उनकी क्या सामर्थ्य है, जो तुम्हारे सन्मुख हों; ब्रह्मा आठ पहर ज्ञान ध्यान में रहता है, महादेव भाँग धतूरा खाय, इन्द्र का न कुछ तुम पर बशाय, रहे नारायण सो संग्राम नहीं जाने लक्ष्मी के साथ रहते हैं सुख माने।

कंस बोला—नारायण को कहाँ पावें और किस विधि जीतें सो कहो, मंत्री ने कहा—महाराज! जो नारायण को जीता चाहते हो तो जिनके घर में आठ पहर उनका बास है तिन ही का अब विनाश करो, ब्राह्मण, वैष्णव, योगी, यती, तपस्वी, सन्यासी, वैरागी आदि जितने हरि के भक्त हैं तिनके लड़के से ले बूढ़े तक एक भी जीता न रहे। यह सुन कंस ने प्रधान से कहा—तुम सब को जा मारो। आज्ञा पाकर मंत्री अनेक राक्षस साथ ले बिदा हो

नगर में जा गौ, ब्राह्मण, बालक, और हरिभक्तों को छल बल कर ढूँढ ढूँढ मारने लगा।

६—कृष्ण-जन्मोत्सव

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले—राजा! एक समय नन्द यशोदा ने पुत्र के लिए बड़ा तप किया? तहाँ श्रीनारायण ने आय बर दिया कि तुम्हारे यहाँ जन्म लेंगे जब भादों बदी अष्टमी बुधवार को आधी रात के समय श्रीकृष्ण आये, तब यशोदा ने जागते ही पुत्र का मुख देख नन्द को बुला अति आनन्द मना और अपना जीवन सुफल जाना भोर होते ही उठ नन्द जी ने पण्डित ज्योतिषियों को बुला भेजा, वे अपनी अपनी पोथी पत्रे ले आये, तिनको आसन दे आदर मान से बैठाया, उन्होंने शास्त्र की विधि से संवत्, महीना, तिथि, दिन, नक्षत्र, योग, करण ठहराय लग्न बिचार मुहूर्त साध के कहा—महाराज! हमारे शास्त्र के विचार में तो ऐसा आता है, कि यह लड़का दूसरा विधाता हो, सब असुरों को मार ब्रज का भार उतार गोपीनाथ कहावेगा; सारा संसार इसी का यश गावेगा।

यह सुन नन्द जी ने कञ्चन के शृङ्ग, रूपे के खुर, तामे की पीठ समेत दो लाख गौ पाटम्बर उढ़ाय सङ्कल्प की और अनेक दान ब्राह्मणों को दे अशीष ले ले बिदा किया। तब नगर के सब मङ्गला-मुखियों को बुलाया, वे आय आय अपना अपना गुण प्रकाश करने लगीं। बाजन्त्री बजाने, नर्त्तक नाचने, गायक गाने ढाढ़ी ढाढ़िन यश बखानने, और जितने गोकुल के गोप ग्वाल थे, वे भी अपनी रानियों के शिर पर दहेड़ियाँ लिवाय भाँति भाँति के

भेष बनाये, नाचते गाते नन्द को बधाई देने आये। आते ही ऐसा दधिकांदौ किया कि सारे गोकुल में दही दही कर दिया, जब दधिकांदौ खेल चुके, तब नन्द जी ने सब को खिलाय पिलाय वस्त्र पहिराय तिलक कर पान दे बिदा किया।

इसी रीति से कई दिन तक बधाई रही। इसी बीच नन्द जी से जिसने जो जेा आय आय माँगा सेा सेा पाया। बधाई से निश्चिन्त हेा नन्द जी ने सब ग्वालों को बुलाय के कहा—भाइयो! हमने सुना है कि कंस बालक पकड़ मँगवाता है, न जानिये कोई दुष्ट कुछ बात लगा दे, इससे उचित है कि सब मिल भेंट ले चलें और बरसौड़ी दे आवें। यह बचन मान सब अपने अपने घर से दूध दही, माखन और रुपये लाये, गाड़ी में लाद लाद नन्द के साथ हेा गेाकुल से चल मथुरा आये, कंस से भेंट कर भेंट दी, कौड़ी चुकाय अपनी बिदा हेा अपनी बाट ली।

ज्योंही यमुना तीर पै आये, त्योंही समाचार सुन बसुदेव जी आ पहुँचे, नन्द जो से मिल कुशल क्षेम पूँछ कहने लगे—तुम सा सगा और मित्र हमारा संसार में कोई नहीं, क्योंकि जब हमें भारी विपत्ति भई, तब गर्भवती रोहिणी तुम्हारे यहाँ भेज दी, उसके लड़का हुआ सेा तुमने पाल बड़ा किया, हम तुम्हारा गुण कहाँ तक बखानें। इतना कह फेर पूँछा कहेा राम कृष्ण और यशोदा रानी आनन्द से हैं? नन्द जी बोले—आपको कृपा से सब भले हैं, और हमारे जीवनमूल तुम्हारे बलदेव जी भी कुशल से हैं, कि जिनके होते तुम्हारे पुण्य प्रताप से हमारे पुत्र हुआ पर एक तुम्हारे ही दुःख से हम दुःखी हैं। बसुदेव कहने लगे—मित्र! विधाता से कुछ न बश आवै, कर्म की रेखा किसी से मेटी न जाय, इससे संसार में आय दुःख पीर पाय, कौन पछताय, ऐसा ज्ञान जनाय के कहो।

चौ० तुम घर जाहु बेग आपने। कीन्हें कंस उपद्रव घने॥
बालक ढूँढ़ मँगावे नीच। हुई साधु पर जाकी मीच॥

तुम तो सब यहाँ चले आये हो, और कंस के दूत ढूँढ़ते फिरते हैं। न जानिये कोई दुष्ट जाय गोकुल में उपाधि मचावे। यह सुनते ही नन्द जी अकुला कर सब को साथ लिये शोचते मथुरा से गोकुल को चले।

७—पूतना-बध

श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजा! कंस का मंत्री तो अनेक राक्षस साथ लिये मारता फिरता ही था कि कंस ने पूतना नाम राक्षसी को बुला कर कहा—तू जा यदुवंशियों के जितने बालक पावे तितने मार, यह सुन वह प्रसन्न हो दण्डतवत् कर चली तो अपने जी में कहने लगी :—

दो० भये पूत हैं नन्द के, सूने गोकुल गाँउ।
छल कर अबही आनिहौं, गोपी ह्वैके जाउँ॥

यह कह सोलह शृङ्गार, बारह आभूषण कर कुच में विष लगाय, मोहनी रूप बन, कपट किये, कमल का फूल हाथ में लिये, बन ठन के ऐसे चली कि जैसे शृङ्गार किये लक्ष्मी अपने कन्त पै जाती हो; गोकुल में पहुँच हँसती हँसती नन्द के मन्दिर बीच गई। इसे देख सब की सब मोहित हो भूली सी रहीं, यह जाय यशोदा के पास बैठी और कुशल पूँछ आशीष दी कि बहिन तेरा कान्ह जीवे कोटि बरस। ऐसे प्रीति बढ़ाय, लड़के को यशोदा के हाथ से ले, गोद में रख, ज्योंहीं दूध पिलावने लगी, त्योंहीं श्रीकृष्ण दोनों हाथों से छाती पकड़ मुँह लगाय, लगे प्राण समेत दूध

पीने ; तब तो अति व्याकुल हो पूतना पुकारी—कैसा यशोदा तेरा पुत्र, मनुष्य नहीं, यह है यमदूत, जेवरीजान मैंने साँप पकड़ा, जो इसके हाथ से बच जीती जाऊँगी ; तो फिर गोकुल में कभी न आऊँगी। यों कह भाग गाँव के बाहर आई, पर कृष्ण ने न छोड़ा, निदान उसका जी लिया। वह पछाड़ खाय ऐसे गिरी जैसे आकाश से वज्र गिरे, उसका अति शब्द सुन रोहिणी और यशोदा रोती पीटती वहीं आईं, जहाँ पूतना दो कोस में मरी पड़ी थी और उनके पीछे सब गोप उठ धाये। देखा तो कृष्ण उसकी छाती पर चढ़े दूध पी रहे हैं। झटपट उठाय मुख चूम हृदय से लगाय घर ले आईं। गुणियों को बुलाय झाँड़ फूँक कराने लगीं, और पूतना के पास गोपी ग्वाल खड़े आपस में कह रहे थे, कि भाई इसके गिरने की धमक सुन ऐसे डरे हैं, जो छाती अब तक धड़कती है ; न जाने बालक की क्या गति हुई होगी।

इतने में मथुरा से नन्द जी आये तो देखते क्या हैं कि एक राक्षसी मरी पड़ी है और व्रजबासियों की भीड़ घेरे खड़ी है, पूँछा—यह उपाधि कैसे हुई ? वे कहने लगे—महाराज ! पहले तो यह अति सुन्दरी हो तुम्हारे घर आशीष देने गई, इसे देख सब व्रजनारी भूल रहीं, यह कृष्ण को ले दूध पिलाने लगी, पीछे हम नहीं जानते क्या गति हुई। इतना सुन नन्द जी बोले बड़ी कुशल भई, जो बालक बचा और यह गोकुल पर न गिरी ; नहीं तो एक भी जीता न रहता। सब इसके नीचे दब मरते, यों कह नन्द जी तो घर आये, दान पुण्य करने लगे और ग्वालों ने फरसे, फावड़े, कुदाल, कुल्हाड़ों से काट काट पूतना के हाड़ गोड़ गढ़े खोद खोद गाड़ दिये, और माँस चाम इकट्ठा कर फूँक दिया उसके जलने में एक ऐसी सुगंध फैली कि सारे संसार को सुगंध से भर दिया।

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से पूँछा—महाराज ! यह राक्षसी महा मलीन मद्य मांस खाने वाली, उसके शरीर से सुगंध कैसे निकली, सो कृपा कर कहो, मुनि बोले—राजा ! श्रीकृष्ण ने दूध पी उसे मुक्ति दी, इस कारण सुगंध निकली ।

८—शकट-भञ्जन, तृणावर्त्त-बध

श्रीशुकदेव मुनि बोले—

दो० जेहि नक्षत्र मोहन भये, परयो नखत सेा आय ।
चारु बधाये रीति सब, करत यसोदा माय ॥

जब सत्ताईस दिन के हरि हुये, तब नन्द जी ने सब ब्राह्मण और व्रज-बासियों का नेवता भेज दिया । वे आये तिन्हें आदर मानकर बैठाया । आगे ब्राह्मणों को तो बहुत सा दान दे बिदा किया और भाइयों को बस्त्र पहराय षटरस भोजन कराने लगे ; तिस समय यशोदा रानी परोसती थीं रोहिणी टहल करती थीं, ब्रजवासी हँस हँस खा रहे थे । गोपियां गीत गा रहीं थीं, सब आनन्द में ऐसे मग्न थे कि कृष्ण की सूरत किसी को न थी, और कृष्ण एक भारी छकड़े के नीचे पालने में अचेत सेाते थे, कि इतने में भूखे हेा जागे, पाँव के अँगूठे मुँह में दे रेाने लगे, और हिलक हिलक चारों ओर देखने लगे । उसी अवसर उड़ता हुआ एक राक्षस आ निकला । कृष्ण को अकेला देख अपने मन में कहने लगा कि, यह तेा कोई बड़ा बली उपजा है, पर आज मैं इससे पूतना का बैर लूँगा यों ठान शकट में आन बैठा ; इसी से उसका नाम शकटासुर हुआ । जब गाडा चर चराय के हिला, तब श्रीकृष्ण ने बिकलते २ एक ऐसी लात मारी कि वह मर गया,

और छकड़ा टूक टूक हो गिरा, तो जितने बासन दूध दही के थे सब फूट चूर हुये। और गोरस की नदी सी बह निकली। गाड़े के टूटने और भाँड़ों के फूटने का शब्द सुन सब गोपी-ग्वाल दौड़े आये। आते ही यशोदा ने कृष्ण को उठाया, मुँह चूम छाती से लगा लिया। यह अचरज देख सब आपस में कहने लगे—आज बिधाता ने बड़ी कुशल की, और बालक बच रहा और शकटा ही टूट गया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजा! जब हरि पाँच महीने के हुये, तब कंस ने तृणावर्त्त को पठाया. वह बगुला हो गोकुल में आया; नन्द रानी कृष्ण को गोद में लिये आँगन में बैठी थीं, कि एकाएक कान्ह ऐसे भारी हुए जो यशोदा ने मारे बोझ के गोद से नीचे उतारे। इतने में एक ऐसी आँधी आई, कि दिन की रात हो गई और पेड़ उखड़ उखड़ गिरने, छप्पर उड़ने लगे, तब व्याकुल हो यशोदा जी श्रीकृष्ण को उठाने लगीं पर वे न उठे ज्योंही उनके शरीर से इनका हाथ अलग हुआ त्योंही तृणावर्त्त आकाश को ले उड़ा, और मन में कहने लगा कि आज इसे बिना मारे न रहूँगा।

वह तो कृष्ण को लिये वहाँ यह बिचार करता था। यहाँ यशोदा जी ने जब आगे न पाया तब रो रो कर कृष्ण कृष्ण कर पुकारने लगीं, उनका शब्द सुन सब गोपी ग्वाल साथ ही ढूँढने को धाये, अँधेरे में अटकल से टटोल कर चलते थे, तिस पर भी ठोंकरें खाय गिर गिर पड़ते थे।

चौ०—ब्रज बन गोपी ढूँढ़त डोलैं। इत रोहणी यशोदा बोलैं॥
नन्द मेघ धुनि करैं पुकार। टेरैं गोपी गोप अपार॥

जब श्रीकृष्ण ने नन्द यशोदा समेत सब ब्रजबासी अति दुःखित देखे, तब तृणावर्त्त को फिराय आँगन में ला शिला पर

धर पटका, कि उसका जी देह से निकल सटका ; आँधी थम गई उजाला हुआ, सब भूले भटके घर आये देखैं तो राक्षस आँगन में मरा पड़ा है। श्रीकृष्ण छाती पर खेल रहे हैं। आते ही यशोदा ने उठाय कण्ठ से लगाय लिया, और बहुत सा दान ब्राह्मणों को दिया।

९—विश्व-दर्शन

श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजा ! एक दिन बसुदेव जी ने गर्ग मुनि को जो बड़े ज्योतिषी और यदुबंशियों के पुरोहित थे बुला कर कहा कि तुम गोकुल जा लड़के का नाम रख आओ।

दो०—गई रोहिणी गर्भ सों, भयो पूत है ताहि।
किती आयु कैसा बली, कहा नाम तो आहि॥

और नन्द जी का पुत्र हुआ है सो भी तुम्हैं बुलाय गये हैं। सुनते ही गर्ग मुनि प्रसन्न हो चले औ गोकुल के निकट जा पहुँचे। तिसी समय किसी ने नन्द जी से आ कहा कि यदुबंशियों के पुरोहित गर्ग मुनि जी आते हैं। यह सुन नन्द जी आनन्द से ग्वाल बाल सङ्ग कर भेंट ले उठ धाये। और पाटम्बर के पाँवड़े डालते बाजे गाजे से ले आये। पूजा के आसन पर बैठाय, चरणामृत ले, स्त्री-पुरुष हाथ जोड़ कहने लगे—महाराज ! बड़े भाग्य हमारे जो आपने दया कर दर्शन दे घर पवित्र किया। तुम्हारे प्रताप से दो पुत्र हुए हैं, एक रोहिणी के, एक हमारे। कृपा कर तिनका नाम धरिये। गर्ग मुनि बोले—ऐसे नाम रखना उचित नहीं, क्योंकि जो यह बात फैले कि गर्ग मुनि गोकुल में लड़कों के नाम धरने गये हैं, और कंस सुन पावै तो वह यह जानेगा कि देवकी के पुत्र को बसुदेव के मित्र के यहाँ कोई

पहुँचा आया है। इसीलिये गर्ग पुरोहित गया है, यह समझ मुझे पकड़ मँगावेगा। और न जानिये तुम पर भी क्या उपाधि लावै, इससे तुम फैलाव कुछ मत करो; चुप चाप घर में नाम धरवा लो।

नन्द बोले—गर्ग जी! तुम ने सच कहा। इतना कह घर के भीतर ले जाय बैठाया। तब गर्ग मुनि ने नन्द जी से दोनों की जन्म-तिथि और समय लग्न साध नाम ठहराय कहा—सुनो नन्द जी! बसुदेव की नारी रोहिणी के पुत्र के तो इतने नाम होयँगे—संकर्षण, रेवतीरमण, बलदाऊ, बलराम, कालिन्दीभेदन, हलधर, बलबीर। और कृष्ण-रूप जो तुम्हारा लड़का है उसके नाम तो अगणित हैं, पर किसी समय बसुदेव के यहाँ जन्मा इससे बसुदेव नाम हुआ। और मेरे बिचार में आया है कि, ये दोनों बालक तुम्हारे चारों युगों में जब जन्मे हैं तब साथ ही जन्मे हैं।

नन्द जी बोले—इनके गुण कहो। गर्ग मुनि ने उत्तर दिया—ये दूसरे बिधाता हैं। इनकी गति कुछ जानी नहीं जाती, पर मैं यह जानता हूँ, कंस को मार भूमि का भार उतारेंगे। ऐसे कह गर्ग मुनि चुपचुपाते चले गये, और बसुदेव से जा सब समाचार कहे।

आगे दोनों बालक गोकुल में दिन दिन बढ़ने लगे, और बाललीला कर कर नन्द यशोदा को सुख देने लगे। नीले, पीले, झँगले पहने, माथे पर छोटी छोटी लटुरियाँ बिखरी हुई, यंत्र गंडे बाँधे, कठले गले में डाले, खिलौने हाथों में लिये, खेलते आँगन के बीच घुटनों के बल चल चल गिर गिर पड़ें और तोतली तोतली बातें करें। रोहिणी और यशोदा पीछे लगी फिरें, इसलिये कि कहीं लड़के किसी से डर ठोकर खा न गिरें। जब छोटे छोटे बछड़ों और बछियाओं की पूँछ पकड़ पकड़ उठें और गिर गिर

पड़े, तब यशोदा और रोहिणी अति प्यार से उठाय छाती से लगाय दूध पिलाय भाँति भाँति के लाड़ लड़ावैं।

जब श्रीकृष्ण बड़े भये तो एक दिन ग्वाल बाल साथ ले ब्रज में दधि माखन की चोरी को गये।

चौ० सूने घर में हूँढ़ैं जाय। जेा पावैं सेा देयँ लुटाय॥

जिनको घर में सेाते पावैं तिनकी धरी ढँकी दहेड़ी उठा लावैं जहाँ छीके पर रक्खा देखें, तहाँ पीढ़े पर पट्टरा, पट्टरे पै उलूखल धर साथी को खड़ा कर उसके ऊपर चढ़ उतार लें, कुछ खावें और कुछ लुटाय दें; ऐसे गेापियों के घर घर नित्य चोरी कर आवैं।

एक दिन सब ने मता किया, और गेह में मोहन को आने दिया। ज्यों घर भीतर पैठा चाहैं, कि माखन दही चुरावैं, तो गेापियों ने जाय पकड़ कर कहा—'दिन दिन आते थे निशि भेार, अब कहाँ जाओगे माखन चेार'। यों कह सब गेापी मिल कन्हैया को लिये यशोदा के पास उलहना देने चलीं; तब श्रीकृष्ण ने ऐसा छल किया कि उसके लड़के का हाथ उसे पकड़ा दिया, और आप दौड़ अपने ग्वाल बालों का संग लिया। वे चलीं चलीं नन्दरानी के निकट आय पाँवों पड़ बेालीं—जेा तुम बुरा न मानेा तेा हम कहैं, जैसी कुछ उपाधि कृष्ण ने ठानी है।

दो०—दूध दही माखन मही, बचै नहीं ब्रज माँझ।
ऐसी चेारी करत हैं, फिरत भेार अरु साँझ॥

जहाँ कहीं धरा पाते हैं, तहाँ से निधड़क उठा लाते हैं, कुछ खाते हैं और लुटाते हैं, जेा कोई इनके मुख में दही लगा बतावे उसे उलट कर कहते हैं, तूनेई तेा लगाया है। इस भाँति नित चेारी कर आते थे। आज हमने पकड़ पाया, सेा तुम्हैं

दिखाने लाई हैं। यशोदा बोलीं—बहिन तुम किसका लड़का पकड़ लाईं, कल से तो मेरा कुँवर कन्हाई घर से बाहर भी नहीं निकला। ऐसा ही सच बोलती हो? यह सुन और अपना ही बालक हाथ में देख, वह हँस कर लजाय रही, तब यशोदा जी ने कृष्ण को बुलाय के कहा—पुत्र! तुम किसी के यहाँ मत जाओ जो चाहिये सो घर में से ले खाओ।

चौ० सुनके कान्ह कहत तुतराय। मत मैया तू इन्हैं पतियाय॥
झूँठी गोपी झूँठी बोलैं। मेरे पीछे लागी डोलैं॥

कभी दोहनी बछड़ा पकड़वाती हैं। कभी घर की टहल करातीं हैं, मुझे द्वारे रखवाली बैठाय अपने काज को जाती हैं। झूठ मूठ आय तुमसे बातें लगाती हैं। यह सुन गोपी हरि मुख देख देख मुस्करा कर चली गईं।

आगे एक दिन कृष्ण बलराम सखाओं के सङ्ग घर में खेलते थे, कि जो कान्ह ने मट्टी खाई, तो एक सखा ने यशोदा से जा लगाई। वह क्रोध कर हाथ में छड़ी ले उठ धाईं, मा को रिस भरी आती देख मुँह पोंछ कर डर कर खड़े हो रहे, इन्होंने जाते ही कहा, क्यों रे तूने माटी क्यों खाई? कृष्ण डरते काँपते बोले—माँ! तुझसे किसने कहा? वे बोलीं तेरे सखा ने? तब मोहन ने कोप कर सखा से पूँछा—क्यों रे मैंने मट्टी कब खाई है? वह डर कर बोला—भैया! मैं तेरी बात कुछ नहीं जानता, क्या कहूँगा? जो कान्ह सखा से बतराने लगे, तो यशोदा ने उन्हें जा पकड़ा। तब कृष्ण कहने लगे—मैया तू मत रिसाय, कहीं मनुष्य भी मट्टी खाते हैं? वह बोलीं—मैं तेरी अटपटी बात नहीं सुनती, जो सच्चा है तो अपना मुख दिखा। ज्यों श्रीकृष्ण ने मुख खोला तो उसमें तीन लोक दृष्टि आये, तब यशोदा को ज्ञान हुआ,

तो मन में कहने लगीं कि मैं बड़ी मूर्ख हूँ, जो त्रिलोकी के नाथ को अपना सुत कर मानती हूँ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी राजा परीक्षित से बोले—हे राजा! जब नन्दरानी ने ऐसा जाना, तब हरि ने अपनी माया फैलाई, इतने में मोहन को यशोदा प्यार कर कण्ठ लगाय घर ले आई।

१०—दाम-बन्धन

एक दिन दही मथने की बिरियाँ जान भोर ही नन्दरानी उठीं, और सब गोपियों को जगाय-बुलाय वे आय झाड़ बुहार लीप पोत अपनी अपनी मथनियाँ ले ले दही मथने लगीं। तहाँ नन्द महरि भी एक बड़ा सा कोरा चरुआ ले एड़ुए पर रख चौकी बिछनेती रई मँगाय टटकी टटकी दहेड़ियाँ बाँछ बाँछ राम कृष्ण के लिये बिलोवन बैठी। तिस समय नन्द के घर में ऐसा शब्द दही मथने का हो रहा था, कि जैसे मेघ गर्जता हो। इतने में कृष्ण जागे तो रो रो माँ माँ कर पुकारने लगे। उनका पुकारना किसी ने न सुना तब आप ही यशोदा के निकट आये, और आँखें डबढबाय अनमने हो सुसक सुसक तुतलाय तुतलाय कहने लगे कि, माँ तुझे कै बेर बुलाया? पर मुझे कलेऊ देने न आई, तेरा काज अब तक नहीं निबड़ा। इतना कह मचल पड़े, रई चरुए से निकाल दोनों हाथ डाल लगे माखन काढ़ काढ़ फेंकने, आँगन लथेड़ने और पाँव पटक पटक आँचल खैंच खैंच रोने; तब नन्दरानी घबराय झुँझलाय के बोली—बेटा यह क्या चाल निकाली है।

चौ० चल उठ तुझे कलेऊ दूँ। कृष्ण कहै अब मैं नहिं लूँ॥
पहिले क्यों नहिं दीनों माय। अब तो मेरी लेय बलाय॥

निदान यशोदा ने फुसलाय प्यार से मुँह चूँम गोद में उठा लिया। और दधि माखन रोटी खाने को दिया, हरि हँस हँस खाते थे नन्द महरि अंचल के ओट किये खिला रही थी, इसलिये कि मत किसी की दीठ लगे।

इस बीच एक गोपी ने आ कहा कि तुम तो यहाँ बैठी हो वहाँ चूल्हे पर से सब दूध उफन गया। यह सुनते ही झट कृष्ण को गोद से उतार उठ धाई और जाके दूध बचाया। यहाँ कान्ह दही मही के भाजन फोड़ रई तोड़ माखन भरी कमोरी ले ग्वाल बालों में आये। एक उलूखल औंधा धरा पाया तिस पर जा बैठे। और चारों ओर सखाओं को बैठाय लगे आपस में हँस बाँट बाँट माखन खाने।

इतने में यशोदा दूध उतार आय देखें तो आँगन औ तिवारे में दही मही की कीच हो रही है तब तो सोच समझ हाथ में छड़ी ले निकलीं, और ढूँढ़ती ढूँढ़ती वहाँ आई जहाँ श्रीकृष्ण मण्डली बनाये, माखन खाय खिलाय रहे थे, जाते ही पीछे से जो कर धरा, तो हरि माँ को देखते ही रोकर हा हा खाय लगे कहने कि माँ गोरस किसने लुटाया, मैं नहीं जानूँ मुझे छोड़ दे। ऐसे दीन बचन सुन यशोदा हँस कर हाथ से छड़ी डाल, और आनन्द में मग्न हो रिस के मिस कण्ठ लगाय, घर लाय कृष्ण को ऊखल से बाँधने लगी। तब श्रीकृष्ण ने ऐसा किया कि जिस रस्सी से बाँधे वही छोटी होय। यशोदा ने सारे घर की रस्सियाँ मँगाई तौ भी बाँधे न गये। निदान माँ को दुःखित जान आप ही बँधाइ दिये। नन्दरानी बाँध गोपियों को खोलने को सौंह दे फिर घर की टहल करने लगीं।

११—यमलार्ज्जुन-मोक्ष

श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजा ! श्रीकृष्णचन्द्र को पूर्वजन्म की सुधि आई, कि कुवेर के बेटों को नारद जी ने शाप दिया है, तिनका उद्धार किया चाहिये। यह सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से पूँछा—महाराज कुवेर के पुत्रों को नारद मुनि ने कैसे शाप दिया था ? सो समझा कर कहो। शुकदेव मुनि बोले कि नल कुबर नाम कुवेर के दो लड़के कैलास में रहे। सो शिव की सेवा कर कर अति धनवान हुये। एक दिन स्त्रियाँ साथ ले वे बनविहार को गये, वहाँ जाय कर मद पी मदमाते भये, तब नारियों समेत नंगे हो गङ्गा में नहाने लगे, और लगे गलबहियाँ डाल डाल अनेक अनेक भाँति की कलोलैं करने कि इतने में तहाँ नारद मुनि आ निकले। उन्हें देखते ही नारियों ने तो निकल कपड़े पहिने और वे मतवारे वहाँ ही खड़े रहे। उनकी दशा देख नारद जी मन में कहने लगे कि इनको धन का गर्व हुआ है, इसी से मदमाते हो काम क्रोध को सुखकर मानते हैं। निर्धन मनुष्य को अहंकार नहीं होता, और धनवान् को धर्म अधर्म का विचार। कहा है कि मूर्ख झूँठी देह पर भूले, सम्पत्ति कुटुम्ब देख के फूले। और साधु न धन मद मन में आने, सम्पति विपति एक सम माने; इतना कह नारद मुनि ने उन्हें शाप दिया कि इस पाप से तुम गोकुल में जा वृक्ष हो। जब श्रीकृष्ण अवतार लेंगे, तब तुम्हें मुक्ति देंगे। ऐसे नारद मुनि ने उन्हें शाप दिया। इसी से वे गोकुल में आ रूख हुए। तब उनका नाम यमलार्ज्जुन हुआ।

इसी बात की सुरति कर श्रीकृष्ण ओखली को घसीटे वहाँ ले गये। जहाँ यमलार्जुन पेड़ थे, जाते ही वे दो तरुवर के बीच उलूखल को आडा डाल एक ऐसा झटका मारा, कि वे दोनों जड़

से उखड़ पड़े, और उनमें से दो पुरुष अति सुन्दर निकल हाथ जोड़ स्तुति कर कहने लगे—हे नाथ! तुम बिन हम ऐसे पापियों की सुधि कौन ले। श्रीकृष्ण बोले—सुनो नारद मुनि ने तुम पर बड़ी दया की, जो गोकुल में मुक्ति दी उन्हीं की कृपा से तुमने मुझे पाया, अब बर माँगो जो तुम्हारे मन में हो।

यमलार्ज्जुन बोले—दीनानाथ! यह नारद जी की ही कृपा है। जो आपके चरण परसे, और दर्शन किया, अब हमें किसी वस्तु की इच्छा नहीं। पर इतना ही दीजै जो सदा तुम्हारी भक्ति हृदय में रहे। यह सुन बर दे हँस कर श्रीकृष्णचन्द्र ने तिन्हें बिदा किया।

१२—बत्सासुर, बकासुर-बध

श्री शुकदेव मुनि बोले—राजा! वे जब दोनों तरु गिरे तब तिनका शब्द सुन नन्दरानी घबरा कर दौड़ी वहाँ आई, जहाँ कृष्ण को उलूखल से बाँध गई थीं, और उनके पीछे सब गोपी ग्वाल भी आये। जब कृष्ण को वहाँ न पाया तब व्याकुल हो, यशोदा मोहन मोहन पुकारती और कहती चली—कहाँ गया बाँधा था भाई? कहीं किसी ने देखा मेरा कुँवर कन्हाई? इतने में सोंही से आ, एक बोली ब्रजनारी, कि दो पेड़ गिरे तहाँ बचे मुरारी। यह सुन सब आगे जाय देखें तो सच्च ही वृक्ष उखड़े पड़े हैं और कृष्ण तिनके बीच ओखली में बँधे सुकड़े बैठे हैं। जाते ही नन्द महिर ने उलूखल से खोल कृष्ण को रोकर गले लगा लिया। और सब गोपियाँ डरा जान लगीं चुटकी ताली दे दे हँसाने, नन्द उपनन्द आपस में कहने लगे, कि ये युगानुयुग के

जमे हुए रूख कैसे उखड़ पड़े यह अचम्भा जी में आता है। कुछ भेद इनका समझ नहीं जाता, इतना सुन के एक लड़के ने पेड़ गिरने का ब्योरा ज्यों का त्यों कहा, पर किसी के जी में न आया। एक बोला—ये बालक इस भेद को क्या समझें? दूसरे ने कहा—कदाचित् यही हो, हरि की गती कौन जाने, ऐसे अनेक अनेक भाँति की बातें कर श्रीकृष्ण को लिये, सब अनन्द से गोकुल में आये, तब नन्द जी ने बहुत दान पुण्य किये।

कितने एक दिन बीते कृष्ण का जन्म-दिन आया तो यशोदा रानी ने सब कुटुम्ब को न्योत बुलाया। और मंगलाचार कर वर्षगाँठ बाँधी। जब सब मिल जेवन बैठे तब नन्दराय बोले—सुनो भाइयो? अब इस गोकुल में रहना कैसे बने, दिन दिन उपद्रव होने लगे। चलो कहीं ऐसी ठौर जावें जहाँ तृण जल का सुख पावैं। उपनन्द बोले वृन्दावन जाय बसिये तो आनन्द से रहिये। यह बचन सुन नन्द जी ने सब को खिलाय पिलाय पान दे बैठाय, एक ज्योतिषी को बुलाय यात्रा मुहूर्त पूँछा। उसने बिचार के कहा इसी दिशा की यात्रा को कल का दिन अति उत्तम है, बायें योगिनी पीछे दिशाशूल और सन्मुख चन्द्रमा है, आप, निस्सन्देह भोर ही प्रस्थान कीजे।

यह सुन तिसी समय सब गोपी ग्वाल अपने अपने घर गये पर सवेरे ही अपनी अपनी वस्तु गाड़ियों पै लाद लाद आ इकट्ठे भये। तब कुटुम्ब समेत नन्द जी भी साथ हो लिये, और चले चले नदी उतर साँझ समय जा पहुँचे। बृन्दादेवी को मनाय बृन्दाबन बसाय तहाँ सब सुखचैन से रहने लगे।

जब श्रीकृष्ण पाँच वर्ष के हुए, तब माँ से कहने लगे कि मैं बछड़े चराने जाऊँगा। तू बलदाऊ से कह दे कि मुझे बन

में अकेले न छोड़ें। वह बोली—पूत! बछड़े चरावने वाले दास बहुत हैं तुम्हारे, तुम मत पल ओट होओ मेरे नयन आगे से प्यारे, कान्ह बोले—जो मैं बन में खेलने जाऊँगा तो खाने को खाऊँगा नहीं तो नहीं। यह सुन यशोदा ने ग्वालबालों को बुलाय कृष्ण बलराम को सौंप कर कहा कि तुम बछड़े चरावने दूर मत जाइयो और साँझ न होते दोनों को संग ले घर आइयो। बन में इन्हें अकेला मत छोड़ियो, साथ ही साथ रहियो, तुम इनके रखवाले हो। ऐसे कह कलेऊ दे राम कृष्ण को उनके संग कर दिया।

वे जाय यमुना के तीर बछड़े चराने लगे। ग्वालबालों में खेलने लगे, कि इतने में कंस का पठाया कपट रूप किये वत्सासुर आया, उसे देखते ही सब बछड़े डर जिधर तिधर भागे। तब श्रीकृष्ण ने बलदेव जी को सैन से जताया, कि भाई! यह कोई राक्षस आया, आगे जो वह चरता चरता घात करने को निकट पहुँचा, तो श्रीकृष्ण ने पाँव पकड़ फिराय कर ऐसा पटका कि उसका जी घट से निकल सटका।

बत्सासुर का मरना सुन कंस ने बकासुर को भेजा वह बृन्दा बन आय, अपनी घात लगाय, यमुना के तीर बक सम जा बैठा। उसे देख मारे भय के ग्वालबाल कृष्ण से कहने लगे कि—भैया! यह तो कोई राक्षस बगुला बन आया है, इसके हाथ से कैसे बचैंगे।

यह तो इधर कृष्ण से ऐसे कहते ही थे, और उधर वह जी में यह बिचारता था, कि आज इसे बिना मारे न जाऊँगा। इतने में जो कृष्ण उसके निकट गये, तो उसने चोंच से उठा मूँद लिया। ग्वालबाल व्याकुल हो चारों ओर देख देख रो रो पुकार पुकार कहने लगे, हाय हाय यहाँ हलधर भी नहीं

हैं। हम यशोदा से क्या कहेंगे? इनको अति दुःखित देख श्रीकृष्ण ऐसे तत्ते हुए कि वह मुख में रख न सका, जो उसने इन्हें उगला तो उन्होंने उसे चोंच पकड़ पांव तले दबाय चीर डाला और बछड़े घेर सखाओं को साथ ले हँसते खेलते घर आये।

१३—अघासुर-बध

श्रीशुकदेव जी बोले—सुनो महाराज! प्रात होते ही एक दिन श्रीकृष्ण बछड़े चरावन घर से चले, तिनके साथ सब ग्वालबाल भी अपने अपने घर से छाक ले ले हो लिए, और बन में जाय छाक धर बछेरू चरने को छोड़, लगे खरी गेरू से तन चीत चीत बन के फल फूलों के गहने बनाय बनाय पहन पहन खेलने और पशु पक्षियों की बोली बोल बोल भाँति भाँति के कुतूहल कर कर नाचने गाने।

इतने में कंस का पठाया अघासुर नाम राक्षस आय, अति बड़ा अजगर हो मुख पसार बैठा। और सब सखा समेत श्रीकृष्ण भी खेलते खेलते वहीं जा निकले, जहाँ वह घात लगाये मुँह खोले बैठा था। दूर से उसे देख ग्वालबाल आपस में लगे कहने कि भाई! यह तो कोई बड़ा पहाड़ है कि जिसकी कन्दरा इतनी बड़ी है। ऐसे कहते, बछड़े चराते, उसके पास पहुँचे, तब एक लड़का उसका मुख खुला देख बोला, भाई! यह तो अति भयावनी गुफ़ा है। इसके भीतर न जावेंगे, देखते ही भय लगता है। फिर तोप नाम सखा बोला—चलो इसमें धस चलें, कृष्ण संग रहते हम क्यों डरें? जो कोई असुर होगा, तो बकासुर की रीति मारा जायगा।

यों सब सखा खड़े बातें करते ही थे कि उसने एक ऐसी लम्बी श्वास खैंची जो बछड़ों समेत ग्वालबाल सब उड़के उसके मुख में जा पड़े। विष भरी भाफ़ जो लगी तो लगे व्याकुल हो जलने, राँभने और सखा पुकारने कि हे कृष्ण! प्यारे बेगि सुधि लेव, नहीं तो सब जले मरते हैं। उनकी पुकार सुनते ही आतुर हो श्रीकृष्ण भी उसके मुख में पड़ गये। उसने प्रसन्न हो मुँह मूँद लिया, तब श्रीकृष्ण ने अपना शरीर इतना बढ़ाया कि उसका पेट फट गया। सब बछेरू और ग्वालबाल निकल पड़े, तिस समय आनन्द कर देवताओं ने फूल और अमृत बर्षाय सबकी तपन हर ली। तब ग्वालबाल श्रीकृष्ण से कहने लगे कि भैया! इस असुर को मार आज तो तूने भले बचाये, नहीं सब मर चुके थे।

१४—ब्रह्मा-वत्स हरण, श्रीकृष्ण माया करण

श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजा! ऐसे अघासुर को मार श्रीकृष्णचन्द्र बछड़े घेर सखाओं को साथ ले आगे चले। कितनी एक दूर जाय, कदम की छाँह में खड़े हो, वंशी बजाय, सब ग्वालबालों को बुलाय कहा—भैया! यह भली ठौर है, इसे छोड़ कहाँ जायँ? बैठो यहीं छाकें खायँ; सुनते ही उन्होंने बछड़े तो चरने हाँक दिये, और आक, ढाक, बड़, कदम के पात लाय दोने बनाय, झाड़ बुहार श्री कृष्ण के चारों ओर पाँति के पाँति बैठ गये, और अपनी अपनी छाकें खोल खोल लगे आपस में परोसने।

जब परोस चुके तब श्रीकृष्णचन्द्र ने सब के बीच खड़े हो, पहिले आप कौर उठाय खाने को आज्ञा दो। वे खाने लगे तिनमें मोर मुकुट धरे, बनमाल गले में पहिने, लकुटि लिये, त्रिभंगी छवि किये, पीताम्बर पहिने, पीतपट ओढ़े, हँस हँस श्रीकृष्ण

भी अपनी छाक से सब को खिलाते थे। और आप एक एक के पनवारे से उठाय उठाय चाख चाख खट्टे, मीठे, तीखे, चरपरे का स्वाद कहते जाते थे, और उस मण्डली में ऐसे सुहावने लगते थे, कि जैसे तारों में चन्द्रमा। तिस समय ब्रह्मा आदि सब देवता अपने विमानों में बैठ, आकाश से ग्वालमण्डली का सुख देख रहे थे। इतने में ब्रह्मा आय सब बछड़े चुरा ले गया, और यहाँ ग्वालबालों ने खाते खाते चिन्ता कर श्रीकृष्ण से कहा—भैया! हम तो निश्चिन्ताई से बैठ खाय रहे हैं, न जानिये बछड़े कहाँ निकल गये होंगे।

चौ० तब ग्वालन सों कहत कन्हाई। तुम सब जेवत रहियो भाई॥
जिन कोऊ उठकर औसेर। सब के बछड़े लाऊँ घेर॥

ऐसे कह कितनी एक दूर बन में जाय, जब जाना कि यहाँ से बछड़े ब्रह्मा हर ले गया। तब श्रीकृष्ण वैसे ही और बनाय लाये, यहाँ आय देखें तो ग्वालबालों को भी उठाय ले गया है। फिर इन्होंने भी ग्वालबाल जैसे थे तैसे ही बनाये और साँझ हुई जान सब को साथ ले, वृन्दाबन आये। ग्वालबाल अपने अपने घर गये। पर किसी ने यह भेद न जाना कि ये हमारे बालक और बछड़े नहीं वरन् और हैं, दिन दिन आदि माया बढ़ती चले।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले—महाराज! वहाँ ब्रह्मा ग्वालबाल बछड़ों को ले जाय एक पर्वत की कन्दरा में भर उसके मुँह पर पत्थर की शिला धर भूल गया। और यहाँ श्रीकृष्णचन्द्र नित्य नई नई लीला करते थे। इसमें एक वर्ष बीत गया तब ब्रह्मा को सुधि हुई, तो मन में कहने लगा कि मेरा तो एक पल भी नहीं हुआ पर नर का वर्ष हो गया। इससे अब देखा चाहिये, कि ब्रज में ग्वालबाल बछड़ों बिन क्या गति भई।

यह विचार उठ कर वहाँ आया जहाँ कन्दरा में सब को मूँद गया था, शिला उठाय देखे तो लड़के और बछड़े घोर निद्रा में सोये पड़े हैं। वहाँ से चल वृन्दावन में आये, बालक और बछड़े सब ज्यों के त्यों देख अचम्भे में हो, कहने लगा, कैसे ग्वाल बच्छ यहाँ आये, कैसे नये कृष्ण उपजाये, इतना कह फिर कन्दरा को देखने गया! जितने में वहाँ से देख आवे तितने बीच यहाँ श्री कृष्णचन्द्र ने ऐसी माया करी कि जितने ग्वालबाल बछड़े थे सब चतुर्भुज हो गये और एक एक के आगे ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, हाथ जोड़े खड़े हैं।

चौ० देखि विरंचि चित्र सेा भयेा। भूल्येा ज्ञान ध्यान सब गयेा॥
जनु पषाण देषि चौमुखी। भई भक्ति पूजा बिन दुखी॥

और डरकर नयन मूँद लगा थर थर काँपने। जब अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र ने जाना कि ब्रह्मा अति व्याकुल है। तब सब का अंश हर लिया और आप अकेले ही रह गये; ऐसे कि जैसे भिन्न भिन्न बादल एक हो जाय।

१५—ब्रह्मा-स्तुति करण

श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजा! जब श्रीकृष्ण ने अपनी माया उठा ली, तब ब्रह्मा को अपने शरीर का ज्ञान हुआ। तो ध्यान कर भगवान् के पास आ अति गिड़गिड़ाय पाँवों पर बिनती कर हाथ बाँध खड़ा हो कहने लगा कि—हे नाथ! तुमने बड़ी कृपा करी जो मेरा गर्व दूर किया। इसी से अन्धा हो रहा था, ऐसी बुद्धि किसी की है? जो बिन दया तुम्हारी तुम्हारे चरित्रों को जाने, माया तुम्हारी ने सब को मोहा है। ऐसा कौन है जो तुम्हें मोहे, तुम सब के कर्त्ता हो; तुम्हारे रोम रोम में मुझ से

ब्रह्मा अनेक पड़े हैं, मैं किस गिनती में हूँ—दीनदयाल ! अब दया कर अपराध क्षमा कीजे, मेरा दोष चित्त में न लीजे।

इतना सुन श्रीकृष्णचन्द्र मुस्कुराये तब ब्रह्मा ने सब ग्वालबाल बछड़े सोते के सोते ला दिये। और लज्जित हो स्तुति कर अपने स्थान को गया। जैसी मण्डली आगे थी, तैसी ही बन गई। वर्ष दिन बीता सो किसी ने न जाना जो ग्वालबालों की नींद गई तो कृष्ण बछेरू घेर लाये तब तिन से लड़के बोले—भैया ! तू तो बछड़े वेग ले आया हम भोजन करने भी न पाये।

चौ० सुनत बचन हँस कहत बिहारी। मोंको चिन्ता भई तिहारी॥
निकट चरत एकठौरी पाये। अब घर चलो भोर के आये॥

ऐसे आपस में बतराय बछेरू ले सब हँसते खेलते अपने घर आये।

१६—धेनुक-बध

श्रीशुकदेव जी बोले—महाराज ! जब श्रीकृष्ण आठ वर्ष के हुये तब एक दिन उन्होंने यशोदा से कहा कि—माँ ! मैं गाय चरावन जाऊँगा। तुम बाबा से समझाय कर कह दीजो। मुझे ग्वालों के साथ कर दे, सुनते ही यशोदा ने नन्द जी से कहा, उन्होंने शुभ मुहूर्त्त ठहराय ग्वालबालों को बुला कार्त्तिक सुदी अष्टमी को राम कृष्ण से खरक पुजवाय विनती कर ग्वालों से कहा—भाइयों ! आज से गौ चरावन अपने साथ राम कृष्ण को भी ले जाया करो। पर इनके पास ही रहियो, बन में अकेला न छोड़ियो, ऐसे कह छाक दे कृष्ण बलराम को दही का तिलक कर सब के संग बिदा किया। वे मग्न हो ग्वालबालों समेत गायें लिये बन में पहुँचे तहाँ बन की छबि देख कृष्ण बलदेव जी से कहने लगे—दाऊ !

यह तो अति भावती सुहावनी ठौर है। देखो! कैसे वृक्ष झुक रहे हैं। और भाँति भाँति के पशु पक्षी कलोलें करते हैं। ऐसे कह एक ऊँचे टीले पर जा चढ़े, और लगे दुपट्टा फिराय फिराय कारी, गोरी, पीरी, धौरी, धूमरी, भूरी, नीली, कह कह पुकारने, सुनते ही सब गायें रँभती हुँकती दौड़ आईं। तिस समय ऐसी शोभा हो रही थी कि मानों चारों ओर से वरण वरण घटा घिर आई होय।

फिर कृष्णचन्द्र गऊ चरने को हाँक, भाई के साथ छाक खाय, कदम्ब की छाँह में एक सखा की जाँघ पर शिर धर सोये, कितनी बेर में जो जागे तो बलराम जी से कहा—दाऊ! सुनो खेल यह करैं, न्यारो कटक बाँध के लरें, इतना कह आधी आधी गायें और ग्वालबाल बाँट लिये। तब बन के फल फूल तोड़ झोलियों में भर भर लगे, तुरही, भेरि, भोंपू, डफ़, ढोल, दमामे मुख ही से बजाय बजाय लड़ने और मार मार पुकारने, ऐसे कितनी एक बेर तक लड़े, फिर अपनी अपनी टोली निकाल कर गायें चराने लगे।

इसी बीच बलदाऊ जी से किसी सखा ने कहा—महाराज! यहाँ से थोड़ी सी दूर पर एक तालबन है। तिसमें अमृत समान फल लगे हैं। तहाँ गधे के रूप एक राक्षस रखवाली करता है। इतनी बात सुनते ही बलराम जी ग्वालबालों समेत उस बन में गये, और ईंट पत्थर ढेले लाठियाँ मार मार फल झाड़ने लगे। तिसका शब्द सुन कर धेनुक नाम खर रेंकता आया, उसने आते ही फिर कर बलराम जी की छाती में एक दुलत्ती मारी, तब इन्होंने उसे उठा कर दे पटका, फिर लोट पोट के उठा और धरती खूँद खूँद कान दबाय हट हट दुलत्तियाँ झाड़ने लगा। ऐसे बड़ी बेर लग लड़ता रहा। निदान बलराम जी ने उसकी दोनों पिछली टाँगे पकड़ फिराय कर एक ऊँचे पेड़ पर फेंका, सो गिरते ही मर गया। और साथ उसके वह रूख भी टूट पड़ा

दोनों के गिरने से अति शब्द हुआ, कि सारे बन के वृक्ष हिल उठे।

चौ० देख दूर सों कहत मुरारी। हाले रूख शब्द भयो भारी॥
तबहिं सखा हलधर के आये। चलहु कृष्ण तुम बेग बुलाये॥

एक असुर मारा है, सेा पड़ा है। इतनी बात सुनते ही कृष्ण भी बलराम जी के पास जा पहुँचे तब धेनुक के साथी जितने राक्षस थे, सब चढ़ आये। तिन्हें श्रीकृष्ण जी ने सहज ही मार गिराया। तब तो ग्वालबालों ने प्रसन्न हेा निधड़क फल तोड़ मन मानती झोलियाँ भर लीं और गायें घेर लाये। श्रीकृष्ण ने बलदेव जी से कहा—महाराज! बड़ी बेर से आये हैं। अब घर को चलिये। इतना वचन सुनते ही दोनों भाई गायें लिये ग्वालबालों समेत हँसते खेलते साँझ को घर आये, और जेा फल लाये थे सेा सारे बृन्दाबन में बँटवाये, सब को विदा दे, आप सेाये। फिर भेार को तड़के उठते ही कृष्ण ग्वालबालों को बुलाय, कलेऊ कर गायें ले बन को गये। और गौ चराते चराते कालीदह जा पहुँचे। वहीं ग्वालों ने गायों को यमुना में पानी पिलाया और आप भी पिया जेा जल पी ऊपर उठे तेा गायों समेत सारे विष के सब लोट गये, तब श्रीकृष्ण जी ने अमृत की दृष्टि से देख सबों को जिलाया।

१७—काली-मर्दन

श्रीशुकदेव जी बेाले—महाराज! ऐसे सब की रक्षा कर कृष्ण ग्वालबालों को साथ ले, गेंद-तड़ी खेलने लगे। और जहाँ काली था तहाँ चार कोस तक यमुना का जल उसके विष से

खौलता था। कोई पशु पक्षी वहां न जा सकता, जो भूल कर जाता सो लपट से झुलस दह में गिर पड़ता। और तीर में कोई रूख भी न उपजता। एक अविनाशी कदम्ब तट पर था, सोई था। राजा ने पूँछा—महाराज! वह कदम्ब कैसे बचा? मुनि बोले—किसी समय अमृत चोंच में लिये गरुड़ उस पेड़ पर आ बैठा था। तिसके मुँह से एक बूँद गिरी थी, इसीलिये वह रूख बचा।

इतनी कथा सुनाय शुकदेव जी ने राजा से कहा—महाराज! कृष्णचन्द्र जी कालीका मारना जी में ठान गेंद खेलते खेलते कदम्ब पर जा चढ़े। और जो नीचे से सखा ने गेंद चलाई तो यमुना में गिरी उसके साथ कृष्ण भी कूदे इनके कूदने का शब्द कान से सुनकर वह विष उगलने लगा, और अग्निसम फुँकारे मार कहने लगा कि यह ऐसा कौन है? जो अब लग दह में जीता है। कहीं अक्षय वृक्ष तो मेरा तेज न सहि के टूट पड़ा कि कोई बड़ा पशु पक्षी आया है, जो अब तक जल में शब्द होता है।

यों कह वह एक सौ दशों फणों से विष उगलता था। और कृष्ण पैरते फिरते थे, तिस समय सखा रो रो हाथ पसार पसार पुकारते थे, गायें मुँह बाये चारों ओर रांभती हुँकती फिरती थीं। ग्वाल न्यारे हो कहते थे—श्याम! बेग निकल आइये, नहीं तुम बिन घर जा हम क्या उत्तर देंगे। ये तो यहां दुःखित, यों कह रहे थे। इसमें किसी ने वृन्दाबन में जा सुनाया, कि कृष्ण कालीदह में कूद पड़े। यह सुन रोहिणी यशोदा और नन्द गोपी गोप समेत रोते पीटते उठ धाये और सब के सब गिरते पड़ते कालीदह आये। तहां कृष्ण को न देख व्याकुल हो, नन्दरानी पानी में गिरने चलीं, तब गोपियां ने बीच ही में जा पकड़ा और ग्वालबाल नन्द जी को थांमे ऐसे कह रहे थे।

चौ० छाँड़ महाबन या बन आये। तौहूँ दैत्यन अधिक सताये॥
बहुत कुशल असुरन ते परी। अब क्यों दह ते निकसें हरी॥

कि इतने में पीछे से बलदेव जी भी वहाँ आये और सब ब्रज बासियों को समझा कर बोले—अभी आवेंगे कृष्ण अविनाशी, तुम काहे को लाते हो उदासी।

चौ० आज साथ आयों मैं नाहीं। मो बिन हरि पैठे दह माहीं॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे—कि महाराज! इधर तो बलराम जी सब को यों आशा भरोसा देते थे और उधर जो कृष्ण पैर कर उसके पास गये, तो वह आ इनके सारे शरीर से लिपट गया, तब कृष्ण ऐसे मोटे हुए कि उसे छोड़ते ही बन आया, फिर ज्यों ज्यों वह फुँकारे मार मार इन पर फण चलाता था, त्यों त्यों ये अपने को बचाते थे, निदान ब्रजबासियों को अति दुःखित जान कृष्ण उधर एकाएकी उसके शिर पर चढ़े।

दो० तीन लोक को बोझ लै, भारी भये मुरारि।
फण फण पर नाचत फिरैं, बाजे पग पटतारि॥

तब तो मारे बोझ के काली मरने लगा। और फण पटक पटक उसने जीभें निकाल दीं, तन से लोहू की धारें बह चलीं। जब विष और बल का गर्व गया तब उसने मन में जाना कि आदि-पुरुष ने अवतार लिया नहीं इतनी किसमें सामर्थ्य है, जो मेरे विष से बचे, यह समझ जीवन की आशा तज शिथिल हो रहा, तब नागपत्नी ने आय, हाथ जोड़ शिर नवाय, बिनती कर कृष्णचन्द्र से कहा—महाराज! आपने भला किया जो इस दुःखदाई अति अभिमानी का गर्व दूर किया। अब इसके भाग जागे, जो तुम्हारा दर्शन पाया। जिन चरणों को ब्रह्मादि सब

देवता जप, तप, कर ध्यावते हैं, सोई पद काली के शीश पर बिराजते हैं।

इतना कह फिर बोली—महाराज! मुझ पर दया कर इसे छोड़ दीजै, नहीं तो इसके साथ मेरा भी बध कीजै; क्योंकि स्वामी बिन स्त्री को मरना ही भला है। और बिचारिये तो इसका भी कुछ दोष नहीं यह जाति स्वभाव है, कि दूध पिलाये विष बढ़े।

इतनी बात नागपत्नी से सुन श्रीकृष्णचन्द्र उस पर से उतर पड़े, तब प्रणाम कर हाथ जोड़ काली बोला—नाथ! मेरा अपराध क्षमा करो, मैंने अनजाने आप पर फण चलाये, हम अधम जाति सर्प हमें इतना ज्ञान कहाँ? जो तुम्हें पहिचानें। श्रीकृष्ण बोले—भला जो हुआ सो हुआ पर अब तुम यहाँ न रहो, कुटुम्ब समेत रमणक द्वीप में जा बसो।

यह सुन काली ने डरते काँपते कहा—कृपानाथ! वहाँ जाऊँ तो, पर गरुड़ मुझे खा जायगा। उसी के भय से मैं यहाँ भाग आया हूँ। कृष्ण बोले अब तू निर्भय चला जा, हमारे पद के चिन्ह तेरे शिर पर देख तुझ से कोई न बोलेगा। ऐसे कह श्रीकृष्णचन्द्र ने तिसी समय गरुड़ को बुलाय काली के मन का भय मिटाय दिया। तब काली ने धूप, दीप, नैवेद्य, समेत बिधि से पूजा कर बहुत सी भेंट कृष्ण के आगे धर हाथ जोड़ बिनती कर बिदा होय कहा—

चौ० चार घरी नाचे मों माथा। यह मन प्रीति राखियो नाथा॥

यों कह दण्डवत् कर काली तो कुटुम्ब समेत रमणक द्वीप को गया और कृष्णचन्द्र जल से बाहर आये।

१८—दावाग्नि-मोचन

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से पूँछा—महाराज ? रमणक द्वीप तो भली ठौर थी, काली वहाँ से क्यों आया ? और किसलिये यमुना में रहा, यह मुझे समझा कर कहो जो मेरे मन का सन्देह जाय। शुकदेव जी बोले—राजा ! रमणक द्वीप में हरि का वाहन गरुड़ रहता है सो अति बलवन्त है सो तिससे वहाँ के बड़े बड़े सर्पों ने हार मान उसे एक सर्प नित्य देने कहा। एक रूख पर धर आवै, वह आवै और खा जाय। एक दिन कद्रू नागिनी का पुत्र काली अपने विष का घमण्ड कर गरुड़ का भक्ष खाने गया। इतने में वहाँ गरुड़ आया और दोनों में अति युद्ध हुआ, निदान हार मान काली अपने मन में कहने लगा कि, अब इसके हाथ से कैसे बचूँ, और कहाँ जाऊँ ? इतना कह सोचा कि वृन्दाबन में यमुना के तीर जा रहूँ तो बचूँ ; क्योंकि यह वहां नहीं जा सकता, ऐसा विचार काली वहीं गया। फिर राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से पूँछा—महाराज ! वह वहाँ क्यों नहीं जा सकता था ? सो भेद कहो। शुकदेव जी बोले—राजा ! किसी समय यमुना के तट पर सौभरि ऋषि बैठे तप करते थे वहाँ गरुड़ ने जाय एक मछली मार खाई, तब ऋषि ने क्रोध कर उसे यह शाप दिया—तू जो इस ठौर फिर आवेगा तो जीता न रहेगा। इस कारण वहाँ न जा सकता था, और जब से काली वहाँ गया तभी से उस स्थान का नाम कालीदह हुआ।

इतनी कथा सुनाय शुकदेव जी बोले कि—हे राजा ! जब श्रीकृष्णचन्द्र निकले, तब नन्द यशोदा ने आनन्द कर बहुत सा दान पुण्य किया। पुत्र का मुख देख नयनों को सुख दिया और सब ब्रजबासियों के जी में जी आया। इस बीच साँझ हुई तो

आपस में कहने लगे कि अब दिन भर के हारे थके भूखे प्यासे घर कहाँ जायंगे, रात की रात यहीं काटें, भोर हुये वृन्दाबन चलेंगे; यह कह सब सोय रहे।

चौ० आधी रात आय जब गई। भारी कारी आँधी भई॥
दावा अग्नि लगी चहुँओर। अति झर बरे वृक्ष बनठोर॥

आग लगते ही चौंक पड़े और घबरा कर चारों ओर देख देख हाथ पसार पसार पुकारने लगे—कि हे कृष्ण! हे कृष्ण! इस अग्नि से बेग बचाओ; नहीं तो यह क्षण भर में सब को जलाय भस्म करती है। जब नन्द यशोदा समेत ब्रजबासियों ने ऐसे पुकार की तब श्रीकृष्णचन्द्र जी ने उठते ही वह आग पल में पी सब के मन की चिन्ता दूर की। भोर होते ही सब वृन्दाबन आये घर घर आनन्द मङ्गल हुये।

१९—प्रलम्ब-वध

इतनी कथा कह शुकदेव जी बोले—महाराज! अब मैं ऋतु वर्णन करता हूँ, कि जैसे श्री कृष्णचन्द्र ने तिनमें लीला करी सो चित्त दे सुनो, प्रथम ग्रीष्म ऋतु आई, उसने आते ही सब संसार का सुख ले लिया, और धरती आकाश को तपाय अग्नि सम किया, पर कृष्ण के प्रताप से वृन्दाबन में सदा बसन्त ही रहै, जहाँ घने कुञ्जों के वृक्षों पर बेलें लहलहा रहीं, बर्ण बर्ण के फूल फूले हुए तिन पर भौंरों के झुण्ड गूँज रहे, आमों की डालियों पर कोयल कुहुक रही। ठण्डी ठण्डी छाहीं में मोर नाच रहे, सुगन्ध लिये मीठी मीठी पवन बह रही, और एक ओर बन के यमुना न्यारी ही शोभा दे रही थी। तहाँ कृष्ण बलराम गाय छोड़ सब सखा समेत आपस में अनूठे अनूठे खेल खेल रहे थे कि इतने में कंस का पठाया

ग्वाल का रूप बनाय प्रलम्ब नाम राक्षस आया। उसे देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र ने बलराम जी को सैन से कहा।

चौ० आपनो सखा नहीं बल बीर। कपट रूप यह असुर शरीर॥
याके बध को करो उपाय। ग्वाल रूप मारो नहिं जाय॥
जब यह राखै रूप आपनो। तब तुम याहि ततक्षण हनो॥

इतनी बात बलदेव जी को जताय कृष्ण जी ने प्रलम्ब को हँस कर पास बुलाय हाथ पकड़ के कहा।

चौ० सबते नीको भेष तिहारो। भलो कपट बिन मित्र हमारो।

यों कह उसे साथ ले आधे ग्वालबाल बाँट लिये। और आधे बलराम जी को दे, दो लड़कों को बैठाय लगे फल फूलों का नाम बताने और पूँछने इसमें बताते बताते कृष्ण हारे, बलदेव जीते। तब कृष्ण की ओर वाले, बलदेव जी के साथियों को काँधे पर चढ़ाय ले चले, तहाँ प्रलम्ब बलराम जी को सब के आगे ले भागा और बन में जाय उसने अपनी देह बढ़ाई तिस समय उस काले काले पहाड़ से राक्षस पर बलदेव जी ऐसे शोभायमान थे, जैसे श्याम घटा पर चन्द्रमा और कुण्डम की दमक बिजली सी चमकती थी, पसीना मेह सा बर्षता था। शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि—महाराज! ज्यों अकेला पाय वह बलराम जी को मारने को हुआ त्योंहीं उन्होंने मारे घूँसों के उसे मार गिराया।

२०—दावाग्नि-मोचन

शुकदेव जी बोले—हे राजा जब प्रलम्ब को मार के बलराम जी चले; तभी सोहीं से सखाओं समेत घनश्याम आनि मिले। और जो ग्वालबाल बन में गायें चराते थे, वे भी असुर मरा सुन

गायें छोड़ उधर देखने को गये। तौलौं इधर गायें चरती डाभ कांश से निकल मूँज बन में बढ़ गईं, वहाँ से आय दोनों भाई यहाँ देखैं तौ एक भी गाय नहीं।

चौ० बिछुरीं गैया बिछुरे ग्वाल। भूले फिरैं मूँज बन ताल॥
रूखन चढ़ैं परस्पर टेरैं। ले ले नाम पिछौरी फेरैं॥

इस बीच में किसी सखा ने हाथ जोड़ कृष्ण से कहा—महाराज! गायें सब मूँज बन में पैठ गईं। इन पीछे ग्वालबाल ढूँढ़ते भटकते फिरते हैं। इतनी बात के सुनते ही कृष्ण ने कदम्ब पर चढ़ ऊँचे सुर से ज्यों बंसी बजाई तो सुन ग्वालबाल और सब गायें मूँज बन को ऐसे आनि मिलीं जैसे सावन भादों की नदी तुंग तरंग को चीर समुद्र में जा मिलें। इस बीच देखते क्या हैं, कि बन चारों ओर से दहड़ दहड़ जलता चला आता है। यह देख ग्वालबाल और सखा अति घबराय भय खाकर पुकारे—हे कृष्ण हे कृष्ण इस अग्नि से बेग बचाओ, नहीं तो अभी क्षण में सब जल मरते हैं। कृष्ण बोले—तुम सब अपनी आँखैं मूँदो उन्होंने नयन मूँदे तब कृष्ण जी ने पल भर में अग्नि बुझाय, और एक माया करी कि गायें समेत सब ग्वालबालों को भांडीर बन में आय कहा कि अब आँखैं खोल दो।

चौ० ग्वाल खोल दृग कहत निहारि। कहाँ गई वह अग्नि मुरारि।
कब आये फिर बन भांडीर। होत अचम्भौ यह बलबीर॥

ऐसे कह गायें ले सब मिल कृष्ण बलराम के साथ वृन्दाबन आये, और सबों ने अपने अपने घर जाय कहा कि आज बन में बलराम जी ने प्रलम्ब नाम राक्षस को मारा और मूँज बन में आग लगी थी, सेा भी हरि के प्रताप से बुझ गई।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने कहा—हे राजा! ग्वालबालों के मुख से यह बात सुन सब ब्रजबासी देखने को तो गये, पर विन्होंने कृष्ण चरित्र का कुछ भेद न पाया।

२१—वर्षा-शरद ऋतु वर्णन

श्रीशुकदेव मुनि बोले—कि महाराज! ग्रीष्म की अति अनीति देख नृप पावस प्रचण्ड पृथ्वी के पशु पक्षी जीव जन्तुओं की दया विचार चारों ओर से दल बादल साथ ले लड़ने को चढ़ आया। तिस समय घन जो गर्जता था सोई तौ धौंसा बजाता था और वर्ण वर्ण की घटा जो घिर आई थीं, सोई शूरवीर रावत थे, तिनके बीच बिजली की दमक शस्त्र की सी चमक थी, बगपाँत ठौर ठौर ध्वजा सी फहराय रही थी, दादुर, मोर कड़खेतों की सी भांति यश बखानते थे और बड़ी बड़ी बूँदों की झड़ी बाणों की सी झड़ी लगी। इस धूमधाम से पावस को आते देख, ग्रीष्म खेत छोड़ अपना जी ले भागा, तब मेघ पिया ने वर्षा, पृथ्वी को सुख दिया। उसने जो आठ महीने पति के वियोग में योग किया था, तिसका भोग भर लिया। कुछ गिर शीतल हुए और गर्भ रहा उसमें से अठारह भार पत्र उपजे, सो भी फल फूल भेंट ले ले पिया को प्रणाम करने लगीं। उस काल वृन्दावन की भूमि ऐसी सुहावनी लगती थी कि जैसे शृङ्गार किये कामिनी और जहाँ तहाँ नदी, नाले, सरोवर भरे हुए तिन पर हंस, सारस, शोभा दे रहे, ऊँचे ऊँचे रूखों की डालियाँ झूम रहीं; उनमें पिक, चातक, कपोत, कीर, बैठे कोलाहल कर रहे थे और ठाँव ठाँव सूहे कुसुँभे जोड़े पहरे गोपी ग्वाल झूलों पर झूल झूल ऊँचे सुरों से मलारें गाते थे। उनके निकट जाय जाय श्रीकृष्ण बलराम भी बाललीला कर कर

अधिक सुख दिखात थे। इस आनन्द से वर्षा ऋतु बीती, तब श्रीकृष्ण ग्वालबालों से कहने लगे—कि भैया अब तो सुखदाई शरद ऋतु आई।

चौ० सब को सुख भारी अब जान्यो। स्वाद सुगंध रूप पहिचान्यो॥
निशि नक्षत्र उज्ज्वल आकाश। मानहुँ निर्गुण ब्रह्म प्रकाश॥
चारि मास जो घिरमें गेह। भये शरद तिन तजे सनेह॥
अपने अपने काजन धाये। भूप चढ़े तकि देश पराये॥

२२—गोपी-वेणु गीत वर्णन

श्रीशुकदेव जी बोले—कि हे महाराज! इतनी बात कह श्रीकृष्णचन्द्र फिर ग्वालबाल साथ ले लीला करने लगे, और जब लग कृष्ण बन में धेनु चरावैं, तब लग सब गोपी घर में बैठी हरि का यश गावैं। एक दिन श्रीकृष्ण ने बन में वेणु बजाई तो बंशी की धुनि सुनि सारी ब्रज युवती हड़बड़ाय उठ धाईं, और एक ठौर मिलकर बाट में आ बैठीं, तहाँ आपस में कहने लगीं कि हमारे लोचन सुफल तब होंगे, जब कृष्ण के दर्शन पावैंगी। अभी तो कान्ह गायों के साथ बन में नाचते, गाते फिरते हैं। साँझ समय इधर आवेंगे, तब हमें दर्शन मिलेंगे, यों सुन एक गोपी बोली :—

चौ० सुनो सखी वह वेणु बजाई। बाँश वंश देखो अधिकाई॥

इसमें इतना क्या गुण है जो दिन भर कृष्ण के मुँह में लगी रहती है। और अधरामृत पी आनन्द वर्ष घन सी जाती है। क्या हम से भी यह प्यारी है, जो निशि दिन लिये रहते हैं।

चौ० मेरे आगे की यह गढ़ी। अब भइ सौत बदन पर चढ़ी॥

जब श्रीकृष्ण इसे पीताम्बर से पोंछ बजाते हैं। तब सुर, मुनि, किन्नर, और गन्धर्व अपनी अपनी स्त्रियों को साथ ले विमानों पर बैठ बैठ हर्ष कर सुनने को आते हैं। और सुनकर मोहित हो जहाँ के तहाँ चित्र से रह जाते हैं। ऐसा इसने क्या तप किया है ? जो सब इसके आधीन होते हैं। इतनी बात सुन एक गोपी ने उत्तर दिया कि पहिले तो इसने बाँश के वंश में उपज हरी का स्मरण किया, पीछे घाम शीत जल ऊपर लिया, निदान टूक टूक हो देह जलाय धुआँ पिया।

चौ० इसने तप कीन्हा है कैसा। सिद्ध हुई पाया फल ऐसा॥

यह सुन कोई ब्रज नागरी बोली कि हमको वेणु क्यों न रची ब्रजनाथ, जो निशिदिन हरि के रहती मैं साथ। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि महाराज ! जब तक श्रीकृष्ण धेनु चराय बन से न आवें तब तक नित गोपी हरि गुण गावें।

२३—चीर-हरण

शुकदेव मुनि बोले कि, शरद ऋतु के जाते ही हेमन्त ऋतु आई और अति जाड़ा पाला पड़ने लगा। निस काल ब्रजबाला आपस में कहने लगीं कि, सुनो सहेली अगहन के स्नान से जन्म जन्म के पातक जाते हैं और मन की आशा पुजती है, यों हमने प्राचीन लोगों के मुख से सुना है। यह बात सुन सब के मन में आई कि अगहन नहाइये तो निस्सन्देह कृष्ण बर पाइये।

ऐसे विचार भोर होते ही उठ बस्त्र आभूषण पहर सब ब्रजबाला मिल यमुना नहाने आईं, स्नान कर सूर्य्य को अर्घ्य

दे जल से बाहर आय माटी की गौर बनाय चन्दन, अक्षत, फूल, फल, धूप, दीप, नैवेद्य, आगे धर पूजा कर हाथ जोड़ शिर नाय गौरी को मनाय के बोलीं—हे देवी ! हम तुम से बार बार यही बर माँगती हैं कि कृष्ण हमारे पति होयँ। इस विधि से गोपी नित्य नहावें दिन भर व्रत कर साँझ को दही भात खा भूमि पर सोवें, इसलिये कि हमारे व्रत का फल शीघ्र मिले।

एक दिन सब ब्रजबाला मिल स्नान को औघट घाट गईं और वहाँ जाय चीर उतार तीर पर धर नग्न हो नीर में बैठ लगी हरि के गुण गाय गाय जल क्रीड़ा करने उसी समय कृष्ण भी वंशी बट की छाँह में बैठे धेनु चराघते थे। वे भी इनके गाने का शब्द सुन चुपचाए चले आये, और छिपकर देखने लगे। निदान देखते देखते जो कुछ उनके जी में आई तो सब वस्त्र चुराय कदम्ब पर जा चढ़े और गठरी बाँध आगे धर ली। इतने में गोपी जो देखें तो तीर पर चीर नहीं। तब घबरा कर चारों ओर उठ उठ देखने और आपस में कहने लगीं, कि अभी तो यहाँ एक चिड़िया भी नहीं आई बसन कौन हर ले गया। इस बीच में एक गोपी ने देखा कि शिर पर मुकुट, हाथ में लकुट, केसर तिलक दिये बनमाल हिये, पीताम्बर पहिरे, कपड़ों की गठरी बाँधे, मौन साधे श्रीकृष्ण कदम्ब पर चढ़े छिपे हुए बैठे हैं। वह देखते ही पुकारी—सखी ! वे देखो हमारे चित्त चोर चीर चोर कदम्ब पर पट लिये बिराजते हैं। यह बचन सुन और सब युवती कृष्ण को लजाय पानी में हाथ जोड़ शिर नाय बिन्ती कर हाहा खाय कर बोलीं—

चौ० दीनदयाल हरण दुख प्यारे। दीजे मोहन चीर हमारे॥
ऐसे सुन के कहैं कन्हाई। यों नहिं दूँगो नन्द दुहाई॥

एक एक कर बाहर आवा। तो तुम अपने कपड़े पावो॥

ब्रजबाला रिसाय के बोलीं, यह तुम भला सीख सीखे हो। तो हम से कहते हो, नङ्गी बाहर आओ। अभी अपने पिता बन्धु से जाय कहैं, तो वे तुम्हैं चोर चोर कर आय गहैं। और नन्द यशोदा को जा सुनावैं, तो वे भी तुमको भली भाँति से सिखावैं। हम करती हैं किसी की कान, तुमने मेटी सब पहिचान।

इतनी बात के सुनते ही क्रोध कर श्रीकृष्ण जी ने कहा, कि अब चीर तभी पावोगी जब उनको लिवा लाओगी, नहीं तो नहीं। यह सुन डर कर गोपियाँ बोलीं—दीनदयालु! हमारी सुधि के लिवैया, पति के रखैया तो आप हैं। हम किसे लायेंगी; तुम्हारे ही हेतु नेम कर मार्गशीर्ष मास नहाती हैं। श्रीकृष्ण बोले—जो तुम मन लगाय मेरे लिये अगहन नहाती हो तो लाज और कपट तज आप अपने चीर लो। जब श्रीकृष्णचन्द्र ने ऐसे कहा तब गोपी आपस में सोच विचार कर कहने लगीं, कि चलो जो मोहन कहते हैं सोई मानें, क्योंकि ये हमारे तन मन की सब जानते हैं। इनसे लाज क्या? यों आपस में ठान, कृष्ण की बातें मान, हाथ से कुछ देह दुहराय सब युवती नीर से निकल शिर नवाय जब सम्मुख तीर जा खड़ी हुईं, तब कृष्ण हँस के बोले कि अब तुम हाथ जोड़ आगे आओ तो मैं वस्त्र दूँगा, गोपी बोलीं :—

चौ० काहे कपट करत नन्दलाल। हम सूधी भोरी ब्रज बाल॥
परी ठगोरी सुधि बुधि गई। ऐसी तुम हरि लीला ठई॥
मन सँवारि के करि हैं लाज। अब तुम कछू करो ब्रजबाल॥

इतनी बात कह, जब गोपियों ने हाथ जोड़े तो श्रीकृष्णचन्द्र जी ने वस्त्र दे उनके पास आय कहा कि तुम अपने मन में कुछ

इस बात का बिलग मत मानो यह मैंने तुम्हें सीख दी है, क्योंकि जल में वरुण देवता का बास है; इससे जो कोई नग्न हो जल में नहाता है, उसका सब धर्म बह जाता है, तुम्हारे मन की लगन देख मगन हो मैंने यह भेद तुमसे कहा, अब अपने अपने घर जाओ, फिर कार्तिक महीने में आय मेरे साथ रास कीजियो।

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! इतना बचन सुन प्रसन्न हो सन्तोष कर गोपी तो अपने घर को गईं और श्रीकृष्ण वंशीबट में आय गोप गाय ग्वालबाल सखाओं को संग ले आगे चले, तिस समय चारों ओर सघन बन देख देख वृक्षों की बड़ाई करने लगे, कि देखो ये संसार में आ अपने ऊपर कितना दुःख सह लोगों को सुख देते हैं? जगत में ऐसे ही पर काजियों का आना सुफल है। यों कह आगे बढ़ यमुना निकट जा पहुँचे।

२४—द्विजपत्नी-याचन

शुकदेव जी बोले—जब कृष्ण यमुना के पास पहुँचे, रूख तले लाठी टेक खड़े हुए तब सब ग्वालबाल और सखाओं ने आय हाथ जोड़ कर कहा कि—महाराज! हमें इस समय बड़ी भूख लगी है और जो कुछ छाक लाये थे सो खाई, पर भूख न गई। कृष्ण बोले—देखो वह जो धुआं दिखाई देता, वहाँ मथुरिये कंस के डर से छिप के यज्ञ करते हैं। उनके पास जा हमारा नाम ले दण्डवत कर हाथ बाँध खड़े हो, दूर से भोजन ऐसे दीन हो माँगियो जैसे भिखारी आधीन हो माँगता है।

यह बात सुन ग्वाल चले चले वहाँ गये जहाँ माथुर बैठे यज्ञ कर रहे थे, जाते ही उन्होंने प्रणाम कर निपट आधीनता से कर जोड़

के कहा—महाराज ! आपको दण्डवत कर हमारे हाथ कृष्णचन्द्र जी ने यह कहला भेजा है, कि हमको अति भूख लगी है, कुछ कृपा कर भोजन भेज दीजै। इतनी बात ग्वालों के मुख से सुन मथुरिये क्रोध कर बोले—तुम तो बड़े मूर्ख हो, जो हमसे अभी यह बात कहते हो, बिन होम हो चुके किसी को कुछ न देंगे। सुनो जब यज्ञ कर लेंगे, और कुछ बचेगा, सो बाँट देंगे। फिर ग्वालों ने उनसे गिड़गिड़ाय के बहुतेरा कहा—कि महाराज ! घर आये भूखे को भोजन करवाने से बड़ा पुण्य होता है। पर वे इनके कहने को कुछ ध्यान में न लाये, वरन् इनकी ओर से मुँह फेर आपस में कहने लगे।

चौ० बड़े मूढ़ पशु पालक नीच। माँगत भात होम के बीच॥

तब ये वहाँ से निराश हो अछताय पछताय श्रीकृष्ण के पास आय बोले—महाराज ! भीख माँग मान महत गँवाया, तौ भी खाने को कुछ न हाथ आया। अब क्या करैं ? श्रीकृष्ण ने कहा कि, अब तुम उनकी स्त्रियों से जा माँगो, वे बड़ी दयावन्त धर्मात्मा हैं उनकी भक्ति देखियो वे तुम्हें देखते ही आदरमान से भोजन देंगी। यों सुन वे फिर वहाँ गये, जहाँ वे बैठी रसोई करती थीं। जाते ही उनसे कहा कि बन में श्रीकृष्ण को धेनु चराते क्षुधा भई है, सो हमें तुम्हारे पास पठाया है। कुछ खाने को हो तो दो। इतना बचन ग्वालों के मुख से सुनते ही वे सब प्रसन्न हो कञ्चन के थालों में षटरस भोजन भर ले ले उठ धाईं, और किसी के रोके न रुकीं। एक मथुरानी के पति ने जो जाने न दिया, तो वह ध्यान कर देह छोड़ सब से पहिले ऐसे जा मिली कि जैसे जल जल में जा मिले, और पीछे से सब चली चली वहाँ आईं, जहाँ कृष्णचन्द्र ग्वालबाल समेत वृक्ष की छाँह में सखा के काँधे पर हाथ दिये त्रिभंगी छबि किये, कमल का फूल कर लिये

खड़े थे। आते ही थाल आगे धर दण्डवत् कर हरि मुख देख देख आपस में कहने लगीं कि सखी नन्दकिशोर यही हैं। जिसका नाम सुन सुन कर ध्यान धरती थीं। अब चन्द्रमुख देख लोचन सुफल कीजै, और जीवन का फल लीजै, ऐसे बतराय हाथ जोड़ बिनती कर कृष्ण से कहने लगीं कि—कृपानाथ! आपकी कृपा बिना तुम्हारा दर्शन कब किसी को होता है। आज धन्य भाग हमारे जो दर्शन पाया और जन्म जन्म का पाप गँवाया।

चौ० मूरख बिप्र कृपण अभिमानी। श्री मद लोभ मोह मति सानी॥
ईश्वर को मानुष कर माने। माया अन्ध कहा पहिचाने॥
जप तप यज्ञ जासु हित कीजे। ताको कहा न भोजन दीजे॥

महाराज! वही धन्य हैं। धन, तन, लाजि जो आवे तुम्हारे काज, और सोई जप, तप, ज्ञान, जिसमें आवे तुम्हारा नाम। इतनी बात सुन श्रीकृष्णचन्द्र उनकी क्षेम कुशल पूँछ कहने लगे कि :—

चौ० मत तुम मुझको करो प्रणाम। मैं हूँ नन्द महर सुत श्याम॥

जो ब्राह्मण की स्त्री से आप पुजावते हैं, सो क्या संसार में कुछ बड़ाई पाते हैं। तुमने हमें भूखे जान दया कर बन में आन सुधि ली, अब हम यहाँ तुम्हारी क्या पहुनाई करैं।

चौ० वृन्दावन घर दूर हमारा। किस विधि आदर करैं तुम्हारा॥

जो वहाँ होते तो कुछ फूल फल ला आगे धरते, तुम हमारे कारण दुःख पाय जंगल में आई और यहाँ हमसे तुम्हारी टहल कुछ न बन आई। इस बात का पछतावा ही रहा, ऐसे शिष्टाचार कर फिर बोले—तुम्हें आये बड़ी बेर भई अब घर को सिधारिये क्योंकि ब्राह्मण तुम्हारे, तुम्हारी बाट देखते होंगे, इसलिये कि

स्त्री बिन यज्ञ सफल नहीं। यह बचन श्रीकृष्ण से सुन वे हाथ जोड़ बोलीं—महाराज! हमने आपके चरण कमल से स्नेह कर कुटुम्ब की माया सब छोड़ी, क्योंकि जिनका कहा न मान हम उठ धाईं तिनके यहाँ अब कैसे जाँय? जो वे घर में न आने दें तो फिर कहाँ बसैं, इससे आपकी शरण में रहें सो भला—और नाथ! एक नारि हमारे साथ तुम्हारे दर्शन की अभिलाषा किये आवती थी, उसके पति ने रोक रक्खा, तब उस स्त्री ने अकुलाकर अपना जीव दिया, इस बात के सुनते ही हँस कर कृष्णचन्द्र ने उसे दिखाया जो देह छोड़ आई थी। कहा कि सुनो जो हरि से हित करता है तिसका विनाश कभी नहीं होता, ये तुम से पहिले आ मिली है। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले—कि महाराज उसको देखते ही तो एक बार सब अचम्भे में रहीं, पीछे ज्ञान हुआ। तब हरि गुन गाने लगीं, इस बीच श्रीकृष्ण ने भोजन कर उनसे कहा कि अब स्थान को प्रस्थान कीजै तुम्हारे पति कुछ न कहैंगे। जब श्रीकृष्ण ने ऐसे बुझाय के कहा—तब वे बिदा हो, दण्डवत् कर अपने घर गईं, और उनके स्वामी सोच विचार के पछताय पछताय कह रहे थे, कि हमने कथा पुराण में सुना है कि किसी समय नन्द यशोदा ने पुत्र के निमित्त बड़ा तप किया था, तहाँ भगवान् ने आ उन्हें यह बर दिया, कि हम यदुकुल में अवतार ले तुम्हारे यहाँ जन्मेंगे, वेई जन्म ले आये हैं। उन्होंने ग्वालबालों के हाथ भोजन मँगवा भेजा था, हमने यह क्या किया जो आदि पुरुष ने माँगा और भोजन न दिया।

चौ० यज्ञ धर्म जा कारण ठयो। तिनके सन्मुख आज न भयो॥
आदि पुरुष हम मानुष जान्यो। नहीं बचन ग्वालन के मान्यो॥
हम मूरख पापी अभिमानी। कीनी दया न हरिगति जानी॥

धिक्कार है हमारी मति और इस यज्ञ करने को, जो भगवान् को पहिचान सेवा न करी। हमसे नारी ही भली कि जिन्होंने जप, तप, यज्ञ बिन किये, साहस कर जा श्रीकृष्ण के दर्शन किये, और अपने हाथों उन्हें भोजन दिया। ऐसे पछिताय मथुरियों ने अपनी स्त्रियों के सम्मुख हाथ जोड़ कहा कि धन्य भाग तुम्हारे जो हरि का दर्शन कर आईं, तुम्हारा ही जीवन सुफल है।

२५—गोबर्द्धन-पूजन

श्रीशुकदेव जी बोले—कि हे राजा! जैसे श्रीकृष्णचन्द्र ने गिर गोबर्द्धन उठाया और इन्द्र का गर्व हरा अब सोई कथा कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो, कि सब ब्रजबासी वर्षवें दिन, कार्त्तिक बदी चौदश को नहाय धोय, केसर चन्दन से चौक पुराय भाँति भाँति की मिठाई और पकवान धर धूप, दीप, कर इन्द्र की पूजा किया करैं। यह रीति उनके यहाँ परम्परा से चली आती थी। जिस समय वही दिवस आया तब नन्द जी ने बहुत सी खाने की सामग्री बनवाई, और ब्रजबासियों के भी घर घर सामग्री भोजन की हो रही थी, तहाँ श्रीकृष्ण ने आ माँ से पूँछा कि—माँ जी! आज घर घर में पकवान मिठाई जो हो रही है सो क्या है? इसका भेद मुझे समझा कर कहो, जो मेरे मन का दुविधा जाय। यशोदा बोली कि, बेटा! इस समय मुझे बात कहने का अवकाश नहीं तुम अपने पिता से जा पूछो, वे बुझाय कर कहेंगे। यह सुन नन्द उपनन्द के पास आये श्रीकृष्ण ने कहा कि—पिता! आज किस देवता के पूजने की ऐसी धूम धाम है, कि जिनके लिये घर घर पकवान मिठाई हो रही है? वे कैसे मुक्ति भुक्ति बर के दाता हैं, उनका नाम और गुण कहो जो मेरे मन का सन्देह जाय।

नन्द महर बोले कि—पुत्र! यह भेद तूने अब तक नहीं समझा कि मेघों के पति जो हैं सुरपति, तिनकी पूजा है। जिनकी कृपा से संसार में ऋद्धि सिद्धि मिलती है, और तृण, जल, अन्न होता है, बन, उपवन फूलते फलते हैं उनसे सब जीव जन्तु, पशु, पक्षी, आनन्द में रहते हैं। यह इन्द्र पूजा की रीति हमारे यहाँ पुरुषाओं के आगे से चली आती है, कुछ आज ही नई नहीं निकली। नन्द जी से इतनी बात सुन, श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे पिता! जो हमारे बड़ों ने जाने अनजाने इन्द्र की पूजा की तो की पर अब तुम जान बूझ कर धर्म्म का पन्थ छोड़ ऊबट बाट क्यों चलते हो। इन्द्र के मानने से कुछ नहीं होता, क्योंकि वह मुक्ति भुक्ति का दाता नहीं, और उससे ऋद्धि सिद्धि किसने पाई है, यह तुम्हीं कहो, उसने किसे बर दिया है।

हाँ एक बात यह कि तप, यज्ञ करने से देवताओं ने अपना राजा बनाय इन्द्रासन दे रक्खा है, इससे कुछ परमेश्वर नहीं हो सकता। सुनो जब असुरों से बार बार हारता है तब भाग के कहीं जा छिप कर अपने दिन काटता है। ऐसे कायर को क्यों मानो, अपना धर्म किस लिये नहीं पहिचानो, इन्द्र का किया कुछ नहीं हो सकता, जो कर्म में लिखा है सोई होता है। सुख, सम्पत्ति, दारा, भाई बन्धु, ये भी सब अपने धर्म कर्म से मिलते हैं। और आठ मास जो सूर्य्य जल सोखता है, सोई चार महीने बर्षता है तिससे पृथ्वी में जल तृण अन्न होता है। और ब्रह्मा ने जो चारों वर्ण बनाये हैं—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र तिनके पीछे भी एक एक कर्म लगा दिया है, कि ब्राह्मण तो वेद विद्या पढ़ें, क्षत्री सब की रक्षा करें, वैश्य खेती वाणिज्य और शूद्र उन तीनों की सेवा में रहें।

पिता ! हम वैश्य हैं, गायें बढ़ीं, इससे गोकुल हुआ, इसी से नाम गोप पड़ गया। हमारा यही कर्म है कि खेती बाणिज्य करैं। और गौ ब्राह्मण की सेवा में रहैं, वेद की आज्ञा है कि अपनी कुल रीति न छोड़िये, जो लोग अपना धर्म तज और का धर्म पालते हैं, सो ऐसे हैं जैसे कुलबधू हो, परपुरुष से प्रीति करे। इससे अब इन्द्र की पूजा छोड़ दीजे, और बन पर्वत की पूजा कीजे, क्योंकि हम बनबासी हैं, हमारे राजा वेई हैं जिनके राज्य में हम सुख से रहते हैं, तिन्हें छोड़ और का पूजना हमें उचित नहीं इससे अब सब पकवान मिठाई अन्न ले चलो और गोवर्द्धन की पूजा करो।

इतनी बात सुनते ही नन्द उपनन्द उठ कर वहाँ गये, जहाँ बड़े बड़े गोप अथाई पर बैठे थे। इन्होंने जाते ही सब श्रीकृष्ण की कहीं बातें उन्हें सुनाईं, वे सुनते ही बोले कि कृष्ण सच कहता है तुम बालक जान उसकी बात मत टालो; भला तुम ही बिचारो इन्द्र कौन है और हम किस लिये इसे मानते हैं, जो पालता है उसकी तो पूजा ही भुलाई।

चौ० हमें कहा सुरपति सों काज। पूजैं बन सरिता गिरिराज॥

ऐसे कह फिर गोपों ने कहा—

दो० भलो मतो कान्हर कियो, तजिये सिगरे देव।
गोबर्द्धन पर्वत बड़ो, ताकी कीजै सेव॥

यह बचन सुनते ही नन्द जी ने प्रसन्न हो गाँव में ढिंढोरा फिरवाय दिया, कि कल हम सारे ब्रजबासी चल कर गोबर्द्धन की पूजा करेंगे, जिसके जिसके घर में इन्द्र की पूजा के लिये पकवान मिठाई बनी है, सो सब ले ले भोर ही गोबर्द्धन पर जाइयो यह बात सुन सकल ब्रजबासी दूसरे दिन भोर के तड़के ही उठ स्नान ध्यान कर सब सामग्री झालों, परातों, थालों, डालों,

हण्डों, चरुओं में भर गाड़ों बहिंगियों पर रखवाय रखवाय गोवर्द्धन को चले, इसी समय नन्द उपनन्द भी कुटुम्ब समेत सामान ले सबके साथ हो लिये और बाजे गाजे से चले चले सब मिल गोवर्द्धन पहुँचे।

वहाँ जाय पर्वत के चरों ओर झाड़ बुहार जल छिड़क घेवर, बावर, जलेबी, लड्डू, खुरमें, इमिरती, फेनी, पेड़ा, बरफी, खाजे, गूझे, मठरा, सीरा, पूरी, कचौरी आदि पकवान और भाँति भाँति के भोजन व्यञ्जन संधान चुन चुन रख दिये। इतने कि जिनसे पर्वत छिप गया और ऊपर फूलों की माला पहराय पीत बर्ण के पाटम्बर तान दिये।

तिस समय की शोभा बरणी नहीं जाती, गिरि ऐसा सुहावना लगता था, जैसे किसी ने गहने कपड़े पहराय नख शिख से शृङ्गार की होय और नन्द जी ने पुरोहित बुलाय सब ग्वालबालों को साथ ले रोली, अक्षत पुष्प चढ़ाय, धूप, दीप, नैवेद्य कर, पान सुपारी दक्षिणा धर, वेद की विधि से पूजा की। तब श्री श्रीकृष्ण ने कहा कि अब तुम शुद्ध मन से गिरिराज का ध्यान करो तो वे आय दर्शन दे भोजन करें।

श्रीकृष्ण से यों सुनते ही नन्द यशोदा समेत सब गोपी गोप कर जोड़ नयन मूंद ध्यान लगाय खड़े हुए। तिस काल नन्दलाल उधर तो अति मोटी भरी दूसरी देह धर बड़े बड़े हाथ पांव कर कमल नयन, चन्द्रमुख, मुकुट धरे, बनमाल गरे, पीत बसन और रत्न जटित आभूषण पहरे, मुंह पसारे चुपचाप पर्वत के बीच से निकले और इधर आप ही अपने दूसरे रूप को देख सब से पुकार के कहा—देखो! गिरिराज ने प्रकट होय दर्शन दिया जिसकी पूजा तुमने जो लगाय करी है। इतना वचन सुनाय श्रीकृष्णचन्द्रजी ने गिरिराज को दण्डवत् की, उनकी देखा-

देखी सब गोपी गोप प्रणाम कर आपस में कहने लगे, कि इस भाँति इन्द्र ने कब दर्शन दिया था। हम वृथा उसकी पूजा किया किये। और क्या जानिये पुरुषाओं ने ऐसे प्रत्यक्ष देव को छोड़ क्यों इन्द्र को माना था? यह बात समझी नहीं जाती।

यों सब बतराय रहे थे कि श्रीकृष्ण बोले—अब देखते क्या हो? जो भोजन लाये हो सो खिलाओ। इतना बचन सुनते ही गोपी गोप षटरस भोजन थाल परातों में भर भर उठाय उठाय देने लगे, और गोबर्द्धननाथ हाथ बढ़ाय बढ़ाय ले ले भोजन करने लगे। निदान जितनी सामग्री नन्द समेत सब ब्रजबासी ले गये थे सो खाई; तब वह मूरत पर्वत में समाई। इस भाँति अद्भुत लीला कर श्रीकृष्णचन्द्र सब को साथ ले पर्वत की परिक्रमा दे दूसरे दिन गोबर्द्धन से खेलते बृन्दाबन आये, तिस काल घर घर आनन्द मंगल बधाये होने लगे, और ग्वालबाल सब गाय बछड़ों को रँग रँग उनके गले में घण्टे घण्टियाँ घुँघरू बाँध बाँध न्यारे ही कौतूहल कर रहे थे।

२६—ब्रज-रक्षा

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले :—

दो० सुरपति की पूजा तजी, करि पर्वत की सेव।
तबहिं इन्द्र मन कोपि कै, सबै बुलाये देव॥

जब सारे देवता इन्द्र के पास गये, तब वह उनसे पूँछने लगा कि तुम मुझे समझा कर कहो? कल ब्रज में पूजा किसकी थी। इस बीच नारद जी आय पहुँचे, तो इन्द्र से कहने लगे कि—सुनो महाराज! तुम्हें सब कोई मानता है। पर एक ब्रजबासी नहीं मानते, क्योंकि नन्द के एक बेटा हुआ है, तिसका कहा सब

करते हैं। उन्होंने तुम्हारी पूजा मेट कल सब से पर्वत पुजवाया। इतनी बात के सुनते ही इन्द्र क्रोध कर बोला—कि ब्रजबासियों के धन बढ़ा है, इसी से उन्हें अति गर्व हुआ है।

चौ० जप तप यज्ञ तज्यो इन मेरो। काल दरिद्र बुलायो नेरो॥
मानुष कृष्ण देव कै माने। ताके बातैं साँची जाने॥
वह बालक मूरख अज्ञान। बहु बादी राखै अभिमान॥
अब उनके गर्वहिं परिहरिहौं। पशू खोय लक्ष्मी बिन करिहौं॥

ऐसे बक झक खिसयाय कर सुरपति ने मेघपति को बुलाय भेजा, वह सुनते ही डरता काँपता हाथ जोड़ सन्मुख आ खड़ा हुआ। उसे देखते ही इन्द्र क्रोध कर बोला कि तुम अभी अपना सब दल साथ ले जाओ, गोबर्द्धन पर्वत समेत ब्रजमण्डल को वर्षा कर बहाओ। ऐसा कि कहीं गिरि-चिन्ह और ब्रजबासियों का नाम न रहे।

इतनी आज्ञा पाय मेघपति दण्डवत् कर राजा इन्द्र से बिदा हुआ और उसने अपने स्थान पर आय बड़े मेघों को बुलाय के कहा—सुनो महाराज की आज्ञा है कि तुम अभी जाय ब्रजमंडल को बर्ष के बहा दो। यह बचन सुन सब मेघ अपने अपने दलबादल ले ले मेघपति के साथ हो लिये, उसने आते ही ब्रजमंडल को घेर लिया और गरज गरज बड़ी बूँदों से लगा मूसलाधार जल वर्षा करने और अँगुली से गिरि को बताबने।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि--महाराज! जब ऐसे चहुँ ओर के घनघोर घटा अखण्ड जल बर्षाने लगी, तब नन्द यशोदा समेत सब गोपी ग्वालबाल भय खाय भागते थर थर काँपते श्रीकृष्ण के पास जाय पुकारे कि—

हे कृष्ण ! इस महाप्रलय के जल से कैसे बचेंगे ? तब तो तुमने इन्द्र की पूजा मेट पर्वत पुजवाया। अब बेग उसको बुलाइये जो आय रक्षा करे, नहीं तो क्षण भर में नगर समेत सब बूड़े मरते हैं। इतनी बात सुन और सबको भयातुर देख कृष्णचन्द्र बोले कि—तुम अपने जी में किसी बात की चिन्ता मत करो गिरिराज अभी आय तुम्हारी रक्षा करते हैं। यों कहि गोबर्द्धन को तेज से तपाय अग्नि सम किया और बायें हाथ की छुँगली पर उठाय लिया। उस काल सब ब्रजबासी अपने ढोटों समेत आ उसके नीचे खड़े हुए और कृष्णचन्द्र को देख देख अचरज कर आपस में कहने लगे :—

चौ० है कोउ आदि पुरुष अवतारी। देवन हूँ को देव मुरारी॥
मोहन मानुष कैसो भाई। अँगुली पर क्यों गिरि ठहराई॥

इतनी कथा कह शुकदेव मुनि राजा परीक्षित से कहने लगे, कि उधर तो मेघपति अपना दल लिये क्रोध कर मूसलाधार बर्षाता था। और इधर पर्वत पै गिरते ही छनाक तवे की बूँद हो जाता था। यह समाचार सुन इन्द्र भी कोप कर आप चढ़ आया, और लगातार उसी भाँति सात दिन वर्षा, पर ब्रज में हरि प्रताप से एक बूँद भी न पड़ी जब सब जल निबड़ा तब मेघों ने आ हाथ जोड़ कहा कि—हे नाथ ! जितना महाप्रलय का जल था सब का सब हो चुका। अब क्या करें ? यों सुन इन्द्र ने अपने ज्ञान ध्यान से विचारा कि आदि पुरुष ने अवतार लिया, नहीं तो किसमें इतनी सामर्थ्य थी, जो गिरि धारण कर ब्रज की रक्षा करता। ऐसे सोच समझ पछता पछता मेघों समेत इन्द्र अपने स्थान को गया। और बादल उघड़ उघड़ प्रकाश हुआ, तब सब ब्रजबासियों ने प्रसन्न हो कृष्णचन्द्र से कहा—महाराज !

अब गिरि उतार धरिये मेघ जाता रहा। यह वचन सुनते ही कृष्णचन्द्र ने पर्वत जहाँ का तहाँ रख दिया।

२७--गोपी-कृष्ण लीला वर्णन

शुकदेव जी बोले कि जब हरि ने गिरि कर से उतार धरा तिस समय सब बड़े बड़े गोप तो इस अद्भुत चरित्र को देख यों कह रहे थे, कि जिसकी शक्ति ने इस महाप्रलय से आज ब्रजमंडल बचाया तिसे हम नन्द सुत कैसे कहैंगे? हाँ किसी समय नन्द यशोदा ने महातप किया था, इसीसे भगवान् ने आ इनके घर जन्म लिया है। और ग्वालबाल आय आय कृष्ण के गले मिल मिल पूछने लगे कि—भैया! तूने इस कोमल कमल से हाथ पर कैसे ऐसे भारी पर्वत का बोझ सँभाला? और नन्द यशोदा करुणा कर पुत्र को हृदय लगाय हाथ दाब अँगुली चटकाय कहने लगे कि सात दिन गिरि कर पर रक्खा, हाथ दुखता होगा। और गोपी यशोदा के पास पिछली सब कृष्ण की लीला आय कहने लगीं।

चौ० यह जो बालक पुत्र तिहारो। चिरंजीव ब्रज को रखवारो॥
दानव दैत्य असुर संहारे। कहाँ कहाँ ब्रज जनन उबारे॥
जैसी कही गर्ग ऋषिराई। सोई सोई बात होति है आई॥

२८--इन्द्रस्तुति-करण

शुकदेव मुनि बोले कि—महाराज! भोर होते ही सब गाय और ग्वालबालों का संग कर अपनी अपनी छाक ले कृष्ण बलराम बेणु बजाते और मधुर मधुर सुर से गाते, जो धेनु

चरावन बन को चले तो राजा इन्द्र सकल देवताओं को साथ लिये कामधेनु को आगे किये ऐरावत हाथी पर चढ़ा सुरलोक से चला चला वृन्दाबन में आय बन की बाट रोक खड़ा हुआ, जब कृष्णचन्द्र उसे दूर से दिखाई दिये तब गज से उतर कर नंगे पाँवों गले में कपड़ा डाले थर थर काँपता आ श्रीकृष्ण के चरणों पर गिरा और पछताय पछताय रो रो कहने लगा कि—हे ब्रजनाथ ! मुझ पर दया करो।

चौ० मैं अभिमान गर्व अति किया। राजस तामस में मन दिया॥
धन मद कर सम्पति सुख माना। भेद न कछू तुम्हारा जाना॥
तुम परमेश्वर सब के ईश। और दूसरों को जगदीश॥
ब्रह्मा रुद्र आदि घरदाई। तुम्हरी दई सम्पदा पाई॥
जगत पिता तुम निगम निवासी। सेवत तुमहिं कलाभइ दासी॥
जग के हेत लेत अवतार। तब तब हरत भूमि के भार॥
दूर करो सब चूक हमारी। अभिमानी मूरख हौं भारी॥

जब ऐसे दीन हो स्तुति इन्द्र ने करी तब कृष्णचन्द्र दयाल हो बोले कि, अब तो तू कामधेनु के साथ आया इससे तेरा अपराध क्षमा किया, पर फिर गर्व्व मत कीजो क्योंकि गर्व्व करने से ज्ञान जाता है और कुमति बढ़ती है उसी से अपमान होता है।

इतनी बात कृष्ण के मुख से सुनते ही इन्द्र ने उठ के वेद की विधि से पूजा की और गोबिन्द नाम धर चरणामृत ले परिक्रमा करी, तिस समय गन्धर्व्व भाँति भाँति के बाजे बजा कृष्ण का यश गाने लगे। और देवता अपने विमानों में बैठे आकाश से फूल बर्षावने लगे, उस काल ऐसा समय हुआ कि, मानो फेर कृष्ण ने जन्म लिया। जब पूजा से निश्चिन्त हो इन्द्र हाथ जोड़ सन्मुख खड़ा हुआ तब कृष्ण ने आज्ञा दी कि अब तुम कामधेनु समेत

अपने पुर जाओ। आज्ञा पाते ही कामधेनु और इन्द्र बिदा होय दण्डवत् कर इन्द्रलोक को गये और कृष्णचन्द्र गौ चराय साँझ हुए सब ग्वालबालों को लिये वृन्दाबन आये। उन्होंने अपने घर घर जाय जाय कहा आज हमने हरि प्रताप से इन्द्र का दर्शन बन में किया।

इतनी कथा सुनाय शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा—राजा! यह जो गोविन्द कथा मैंने तुम्हें सुनाई, इसके सुनने और सुनाने से संसार में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ मिलते हैं।

२६-वरुणलोकगमन, वैकुण्ठ चरित्र

शुकदेव जी बोले कि—महाराज! एक दिन नन्द जी ने संयम कर एकादशी व्रत किया, दिन तो स्नान, ध्यान, भजन, जप, पूजा में काटा और रात्रि जागरण में बिताई। जब छः घरी रात रही और द्वादशी भई तब उठ के देह शुद्ध कर भोर हुआ जान धोती अँगौछा झारी ले यमुना नहाने चले तिनके पीछे कई एक ग्वाला भी हो लिए तीर जाय प्रणाम कर कपड़े उतार नन्द जी जो नीर में पैठे तो वरुण के सेवक जो जल की चौकी देते थे कि कोई रात को नहाने न पावे उन्होंने जा वरुण से कहा कि—महाराज! कोई इस समय यमुना में नहाय रहा है हमें क्या आज्ञा होती है? वरुण बोला—उसे अभी पकड़ लाओ। आज्ञा पाते ही सेवक फिर वहाँ आए जहाँ नन्द जी स्नान कर जल में खड़े जप करते थे। आते ही अचानक नाग फाँस डाल नन्द जी को वरुण के पास ले गये, तब नन्द जी के साथ जो ग्वाल गये थे तिन्होंने आय कृष्ण से कहा कि—महाराज! नन्दराय जी को वरुण के गण

यमुना तीर से पकड़ वरुणलोक को ले गये। इतनी बात के सुनते ही श्रीगोविन्द क्रोध कर धाये और पल भर में वरुण के पास जा पहुँचे, इन्हें देखते ही वह उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ विनती कर बोला :—

चौ० सुफल जन्म है आज हमारेा। पायेा यदुपति दरश तुम्हारेा॥
कीजै दोष दूर सब मेरे। नन्द पिता इस कारण घेरे॥
तुमको सबके पिता बखाने। तुम्हरे पिता नहीं हम जाने॥

रात को नहाते देख अनजाने गण पकड़ लाये, भला इसी मिस मैंने आपका दर्शन पाया। अब दया कीजै, मेरा दोष चित्त में न लीजै। ऐसे अति दीनता कर बहुत सी भेंट लाय नन्द और कृष्ण के आगे धर जब बरुण हाथ जोड़ शिर नाय सन्मुख खड़ा हुआ तब कृष्ण भेंट ले पिता को साथ कर वहाँ से चल वृन्दाबन आये, इनको देखते ही सब व्रजवासी आय मिले। तिस समय बड़े गोपों ने नन्दराय से पूँछा कि, तुम्हें वरुण के सेवक कहाँ ले गये थे? नन्द जी बोले—सुनेा, जेा वे वहाँ से पकड़ मुझे वरुण के पास ले गये योंही यहाँ से कृष्ण पहुँचे इन्हें देखते ही वह सिंहासन से उतर पाँवों पर गिर बिनती कर कर कहने लगा—नाथ! मेरा अपराध क्षमा कीजै मुझसे अनजाने यह दोष हुआ, सेा चित्त में न लीजै, इतनी बात नन्द जी के मुख से सुनते ही गेाप आपस में कहने लगे—कि भाई! हमने तेा यह तभी जाना था, जब कृष्णचन्द्र ने गेाबर्द्धन धारण कर व्रज की रक्षा करी कि नन्द महर के घर में आदि पुरुष ने आ अवतार लिया है।

ऐसे आपस में बतराय फिर सब गेापों ने हाथ जेाड़ कृष्ण से कहा कि—महाराज! आपने हमें बहुत दिन भरमाया पर अब सब तुम्हारा भेद पाया, तुम्हीं जगत के करता दुःखहर्ता हौ,

त्रिलोकीनाथ दया कर यह हमें वैकुण्ठ दिखाइये। इतना वचन सुन कृष्ण जी ने क्षण भर में वैकुण्ठ रच उन्हें ब्रज ही को दिखाया। देखते ही ब्रजवासियों को ज्ञान हुआ, तो कर जोड़ सिर झुकाय के बोले—हे नाथ! तुम्हारी महिमा अपरम्पार है। हम नहीं कह सकते, पर आपकी कृपा से आज हमने यह जाना कि तुम नारायण हो, भूमि का भार उतारने को संसार में जन्म ले आये हो, शुकदेव जी बोले कि—महाराज! जब ब्रजवासियों ने इतनी बात कही तभी कृष्णचन्द्र ने सब को मोहित कर जो वैकुण्ठ की रचना रची थी सो उठाय ली, और अपनी माया फैला दी, तो सब गोपों ने अपना सा जान और नन्द जी ने माया के बश हो कृष्ण को अपना पुत्र ही कर माना।

३०—रासक्रीड़ारम्भ

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले :—

दो० जैसे हरिगोपिन सहित, कीन्हों रास बिलास।
अब पञ्चाध्यायी कहौं, जैसो बुद्धि प्रकास॥

जब श्रीकृष्ण जी ने चीर हरे थे, तब गोपियों को यह बचन दिया था, कि हम कार्त्तिक महीने में तुम्हारे साथ रास करेंगे। तभी से गोपी रास की आश किये मन में उदास रहैं, और नित उठ कार्त्तिक मास ही को मनाया करैं, देवी उनके मनाते मनाते सुखदायी शरद ऋतु आई।

चौ० लाग्यो जब ते कार्त्तिक मास। घाम शीत वर्षा को नाश॥
निर्मल जल सरवर भर रहे। फूले कञ्ज होयँ डहडहे॥
कुमुद चकोर कन्त कामिनी। फूलहिं देख चन्द्र यामिनी॥
चकई मलिन कमल कुम्हिलाने। जे निज मित्र भानु को माने॥

ऐसे कह श्रीशुकदेव मुनि फिर बोले कि—पृथ्वीनाथ! एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र कार्तिक पूनो की रात को घर से निकल बाहर आये, देखें तो निर्मल आकाश में तारे छिटक रहे हैं। चाँदनी दशों दिशा में फैल रही है, शीतल सुगन्ध सहित मन्द गति पवन बह रही है, और एक ओर सघन बन की छवि अधिक ही शोभा दे रही है। ऐसा समय देखते ही उनके मन में आया कि, हमने गोपियों को यह वचन दिया था कि शरद ऋतु में तुम्हारे साथ रास करेंगे, सो पूरा किया चाहिये। यह विचार वन में जाय कृष्ण ने बाँसुरी बजाई। बंशी की धुनि सुन सब व्रजयुवती बिरह की मारी कामातुर अति घबराई, निदान कुटुम्ब की माया छोड़ कुल कान पटक गृह काज तज हड़बड़ाय उलटा पुलटा शृङ्गार कर उठ धाई। एक गोपी जो अपने पति के पास से उठ चली, तो उसके पति ने बाट में रोका और फेर कर घर ले आया, जाने न दिया, तब वह हरि का ध्यान कर देह छोड़ सब से पहिले जा मिली उसके चित्त की प्रीति देख कृष्णचन्द्र ने तुरन्त मुक्ति गति दी।

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से कहा कि, कृपानाथ! गोपी ने कृष्ण जी को ईश्वर जान के तो नहीं माना। केवल विषय की बासना कर भजा वह मुक्त कैसे हुई? सो मुझे समझा के कहो, जो मेरे मन का संदेह जाय, श्रीशुकदेव मुनि बोले—धर्मावतार! जो जन कृष्णचन्द्र की महिमा अनजाने भी गुण गाते हैं सो भी निसन्देह भुक्ति मुक्ति पाते हैं। जैसे कोई बिन जाने अमृत पियेगा, वह भी अमर हो जायगा। व जान कर पियेगा, उसे भी वही गुण होगा। यह सब जानते हैं कि पदार्थ का गुण और फल बिन हुए रहता नहीं ऐसे ही हरि भजन का प्रताप है, कोई किसी भाव से भजे भक्त होयगा, कहा है :—

दो० जप माला छापा तिलक, सरे न एकौ काम।
मन काचे नाचे वृथा, साचे राचे राम॥

और सुनो जिनने जैसे भाव से श्रीकृष्ण को मान के मुक्ति पाई सो कहता हूँ कि नन्द यशोदा ने तो पुत्र कर भजा। गोपियों ने पति जान कर समझा, कंस ने भय कर भजा, ग्वालबालों ने मित्र कर जपा, पाण्डवों ने प्रीतम कर जाना, शिशुपाल ने शत्रु कर माना, यदुबंशियों ने ईश्वर कर ध्याया, पर अन्त में मुक्ति पदार्थ सब ही ने पाया जो एक गोपी प्रभु का ध्यान कर तरी तो क्या अचरज हुआ।

यह सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव मुनि से कहा, कि कृपानाथ! मेरे मन का सन्देह गया, अब कृपा कर आगे कथा कहिये। श्रीशुकदेव जी बोले—कि महाराज! जिस काल सब गोपियाँ अपने अपने झुण्ड लिये श्रीकृष्णचन्द्र जगत् उजागर रूपसागर से धाय कर जाय मिलीं कि जैसे चौमासे की नदियाँ बह कर समुद्र में जाय मिलें, उस समय के बनाव की शोभा बिहारीलाल की कुछ बरणी नहीं जाती कि वह शृंगार करे नटवर वेष धरे, ऐसे मनभावने सुन्दर सुहावने लगते थे कि ब्रज युवती हरि छबि देखते ही छक रहीं। तब मोहन बिनती क्षेम कुशल पूँछ रूखे हो बोले—कहो रात समय भूत प्रेत की बिरियाँ भयावनी बाट काट उलटे पुलटे वस्त्र आभूषण पहने अति घबराई कुटुम्ब की माया तज इस महा बन में तुम कैसे आईं? ऐसा साहस करना नारी को उचित नहीं, स्त्री को कहा है कि कायर, कुमत, मूढ़, कपटी, कुरूप, कोढ़ी, काना, अन्धा, लँगड़ा, दरिद्री कैसा ही पति हो पर उसे उसकी सेवा करनी योग्य है, इसी में उसका कल्याण है। और जगत में बड़ाई है, कुलवन्ती पतिव्रता का धर्म है कि पति को क्षण भर न छोड़े।

और जो स्त्री अपने पुरुष को छोड़ परपुरुष के पास जाती है, सो जन्म जन्म नरक पाती है, ऐसे कह फिर बोले कि सुनो तुमने आय सघन बन निर्मल चाँदनी और यमुना तीर की शोभा देखी अब घर जाय मन लगाय, कन्त की सेवा करो इसी में तुम्हारा सब भांति भला है इतना बचन श्रीकृष्ण के मुख से सुनते ही सब गोपी एक बार तो अचेत हो अपार शोच सागर में पड़ीं पीछे :—

चौ० नीचे चितै उसासे लईं। पद नखतें भू खोदत भईं॥
यों दृग सों छूटी जल धारा। मानों टूटे मोती हरा॥

निदान दुःख से घबराय रो रो कहने लगीं कि अहो—कृष्ण! तुम बड़े ठग हो, पहले तो बंशी बजाय अचानक हमारा ज्ञान ध्यान, मन, धन हर लिया, अब निर्दय होय कपट कर कर्कस बचन कह प्राण लिया चाहते हो, यों सुनाय पुनि बोलीं :—

दो० जोग कुटुम्ब घर पति तजे, तजी लोक की लाज।
हैं अनाथ कोऊ नहीं, राखि शरण ब्रजराज॥

और जो जन तुम्हारे चरणों में रहते हैं, सो धन, तन, लाज, बड़ाई नहीं चाहते उनके तो तुम्हीं हो जन्म जन्म के कन्त, हे प्राण रूप भगवन्त।

चौ० करिहैं कहा जाय हम गेह। अरझे प्राण तुम्हारे नेह॥

इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र ने मुस्कराय सब गोपियों को निकट बुला कहा—जो तुम राजी हो इस रंग, तो खेलो रास हमारे संग, यह बचन सुन दुःख तज गोपी प्रसन्नता से चारों ओर घिर आईं और हरि मुख निरख निरख लोचन सुफल करने लगीं।

दो० ठाढ़े बीच जु श्याम घन, इह छबि कामिन केलि।
मनहुँ नील गिरि तरे तें, उलही कञ्चन बेलि॥

आगे श्रीकृष्ण जी ने अपनी माया को आज्ञा दी कि हम रास करैंगे, उसके लिये तू एक अच्छा स्थान रच और यहाँ खड़ी रह। जो जो जिस वस्तु की आज्ञा करे सो सो ला दीजो—महाराज! उसने सुनते ही यमुना तीर जाय एक कञ्चन का मण्डलाकार बड़ा चौतरा बनाय मोती हीरे जड़ उसके चारों ओर सपल्लव केले के खम्भ लगा, तिन में बन्दनवार भाँति भाँति के फूलों की माला बाँध आय श्रीकृष्णचन्द्र से कहा, ये सुनते ही वे प्रसन्न हो सब व्रज युवतियों को साथ ले यमुना तीर को चले। वहाँ जाय जाय देखें तो चन्द्र मण्डल से रास मण्डल के चौतरे की चमक चौगुनी शोभा दे रही है, उसके चारों ओर रेती चाँदनी सी फैल रही है। सुगन्ध समेत शीतल मीठी मीठी पवन चल रही है, और एक ओर सघन बन की हरियाली उजियाली रात में अधिक छबि दे रही है।

इस समय को देखते ही सब गोपी मगन हो उसी स्थान के निकट मान-सरोवर नाम एक सरोवर था, तिसके तीर जाय मन मनाते सुथरे वस्त्र आभूषण पहन नख शिख शृंगार कर अच्छे बाजे वीणा पखावज आदि सुर बाँध ले आईं, और लगीं प्रेम मदमाती हो सोच संकोच तज श्रीकृष्ण के साथ मिल बजाने गाने नाचने, उस समय श्रीगोबिन्द गोपियों की मण्डली के मध्य ऐसे सुहावने लगते थे, जैसे तारा मण्डल में चन्द्रमा।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले—सुनो महाराज! जब गोपियों ने ज्ञान विवेक छोड़ रास में हरि को विषयी पति कर माना और अपने आधीन जाना तब कृष्णचन्द्र ने मन में विचारा कि:—

अब मोहिं इन अपने वश जान्यो। पति विषयी सम मन में मान्यो॥
भई अज्ञान लाज तजि देह। लपटैं पकरैं कन्त सनेह॥
ज्ञान ध्यान मिलिकै बिसरायो। छाँड जाउँ इन गर्व बढ़ायो॥

देखूँ मुझ बिन पीछे बन में क्या करती हैं, और कैसे रहती हैं। ऐसे विचार राधिका को साथ ले श्रीकृष्ण अन्तर्द्धान हुए।

३१—गोपी-विरह वर्णन

शुकदेव मुनि बोले कि महाराज! एकाएकी कृष्णचन्द्र को न देखते ही गोपियों की आँखों के आगे अँधेरा हो गया, और अति दुःख पाय ऐसे अकुलाईं जैसे मणि खोय सर्प घबराता है इसमें एक गोपी कहने लगी।

दो० कहो सखी मोहन कहाँ, गये हमें छिटकाय।
मेरे गरे भुजा धरे, रहे हते उर लाय॥

अभी तो हमारे संग मिले मिले रास विलास कर रहे थे, इतने ही में कहाँ गये, तुम में से किसी ने भी जाते न देखा, यह वचन सुन सब गोपी बिरह की मारी निपट उदास हो हाथ मार बोलीं :—

दो० कहाँ जायँ कैसी करैं, कासों कहैं पुकारि।
हैं कित कछु नहिं जानिये, क्योंकर मिलैं मुरारि॥

ऐसे कह हरि मदमाती होय सब गोपी लगीं चारों ओर ढूँढ़ ढूँढ़ गुण गाय गाय रो रो यों पुकारने :—

चौ० हमको क्यों छाड़ी ब्रजनाथ। सरबस दिया तुम्हारे साथ॥

जब वहाँ न पाया तब आगे जाय आपस में बोलीं—सखी यहाँ तो हम किसी को नहीं देखतीं, किससे पूँछें कि हरि किधर गये, यों सुन एक गोपी ने कहा—सुनो आली! एक बात मेरे जी में आई है, कि ये जितने इस बन में पशु पक्षी और वृक्ष हैं सो सब ऋषि मुनि हैं। ये कृष्ण-लीला देखने को अवतार ले यहाँ आये हैं। इन्हीं से पूछो ये यहाँ खड़े देखते हैं, जिधर हरि गये होंगे तिधर बता देंगे, इतना बचन सुनते ही सब गोपी बिरह से व्याकुल हो क्या जड़ क्या चैतन्य लगीं एक एक से पूँछने।

चौ० हे बड़ पीपल पाकड़ बीर। लही पुण्य कर उच्च शरीर॥
पर उपकारी तुम्हीं भये। वृक्ष रूप पृथ्वी पर लये॥
घाम शीत वर्षा दुख सहौ। काज पराये ठाढ़े रहौ॥
बकला फूल मूल फल डार। तिनसों करत पराई सार॥
सबका मन धन हर नन्दलाल। गये किधर क्यों कहो दयाल॥
हे कदम्ब अम्ब कचनार। तुम कहुँ देखे जात मुरार॥
हे अशोक चम्पा करबीर। जात लखे तुमने बलबीर॥
हे तुलसी अति हरि की प्यारी। तन तें कहूँ न राखत न्यारी॥
फूली आज मिले हरि आय। हमहूँ को किन देत बताय॥
जाती जुही मालती माई। इत हैं निकसे कुँवर कन्हाई॥
मृगनि पुकारि कहैं ब्रजनारी। इत तुम जात लखे बनवारी॥

इतना कह श्रीशुकदेव जी बोले कि—महाराज! इस रीति से सब गोपी पशु पक्षी द्रुम बेलि से पूँछती पूँछती श्रीकृष्णमय हो लगी पूतना भय आदि सब श्रीकृष्ण की करी हुई बाललीला करने और ढूँढने। निदान ढूँढते ढूँढते कितनी एक दूर जाय देखें तो श्रीकृष्णचन्द्र के चरण चिह्न कमल, बज्र, ध्वज, अँकुश समेत रेत पर जगमगाय रहे हैं, देखते ही ब्रजयुवतियाँ जिस रज को सुर

नर मुनि खोजते हैं, तिस रज को दण्डवत् कर शिर चढ़ाय हरि के मिलने की आश धर वहाँ से बढ़ीं तो देखा कि उन चरण चिह्नों के पास पास एक नारी के भी पाँव उपड़े हुए हैं, उन्हें देख अचरज कर आगे जाय देखैं तो एक ठौर केामल पात के बिछौने पर सुन्दर जड़ाऊ दर्पण पड़ा है।

लगी उससे पूँछने जब विरह भरा वह भी न बेाला—तब आपस में पूँछा, कहो आली? यह क्यों कर लिया उसी समय जेा पिया प्यारी के मन की जानती थी, उसने उत्तर दिया कि सखी! जब पीतम प्यारी की चेाटी गूथन बैठे और सुन्दर बदन विलोकने में अन्तर हुआ, तिस बिरियाँ प्यारी ने दर्पण हाथ में ले प्रिया केा दिखाया तब श्रीमुख का प्रतिविम्ब सन्मुख आया। यह बात सुन गेापियों ने कुछ न केाप किया वरन् कहने लगीं कि उसने शिव पार्बती केा अच्छी रीति से पूजा है; और बड़ा तप किया है जेा प्राणपति के साथ एकान्त में निधड़क बिहार करती है। महाराज! सब गेापी तेा इधर उधर मदमाती बन बन झक झक ढूँढ़ती फिरती थीं, कि उधर श्रीराधिका जी हरि के साथ अधिक सुख मान प्रीतम केा अपने वश जान आप केा सबसे बड़ा ठान, मन में अभिमान आन बेालीं—प्यारे! अब मुझसे चला नहीं जाता, काँधे चढ़ाय ले चलिये। इतनी बात के सुनते ही गर्व प्रहारी अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र ने मुस्कुराय बैठ कर कहा—आइये हमारे काँधे चढ़ लीजिये। जब वह हाथ बढ़ाय चढ़ने केा हुई तब श्रीकृष्ण अन्तर्द्धान हुये। जेा हाथ बढ़ाये थे तेा हाथ पसारे खड़ी रह गईं ऐसे कि जैसे घन से प्रान कर दामिनि बिछुर रही हेा, कै चन्द्र से चन्द्रिका रूप पीछे रह गई, कहेा और गेारे तन की ज्येाति छूटि छिति पर छाय यों छवि दे रही थी कि मानेां सुन्दर कंचन की भूमि पै खड़ी

है, नयनों से जल की धार बह रही है और सुवास के वश जे मुख पास भँवर आय आय बैठे थे, उन्हें भी उड़ाय न सकती थीं और हाय हाय कर बन में बिरह की मारी इस भाँति रो रही थीं अकेली कि जिसके रोने की धुनि सुनि सब रोते थे, पशु पक्षी और द्रुम बेली और यों कह रही थीं।

चौ० हा हा नाथ परम हितकारी। कहाँ गये स्वछन्द बिहारी॥
चरण शरण दासी मैं तेरी। कृपासिंधु लीजै सुधि मेरी॥

कि इतने में सब गोपी भी ढूँढ़ती ढूँढ़ती उसके पास जा पहुँचीं और उसके गले लग लग सबों ने मिल मिल ऐसा सुख माना कि जैसे कोई महा धन खोय आधा धन पाय सुख मानै, निदान सब गोपी भी उसे अति दुःखित जान साथ ले महा बन में पैठीं और जहाँ लग चाँदनी देखी तहाँ लग गोपियों ने बन में कृष्णचन्द्र को ढूँढ़ा। जब सघन बन के अँधेरे में बाट न पाई तब वे सब वहाँ से धीर्य्य धर मिलने की आश कर यमुना के उसी तीर पर आय बैठीं, जहाँ कृष्णचन्द्र ने अधिक सुख दिया था।

३२—गोपीजन-विरह वर्णन

श्रीशुकदेव जी बोले कि—महाराज! सब गोपी यमुना के तीर बैठ प्रेम मदमाती हो हरि के चरित्र और गुण गाने लगीं, कि—प्रीतम! जब से तुम ब्रज में आये तब से नये नये सुख यहाँ आन कर छाये। लक्ष्मी ने करी तुम्हारे चरण की आश, किया है अचल आय के बास, हम गोपी हैं दासी तुम्हारी बेग सुधि लीजै दया कर हमारी, जब से सुन्दर साँवली सलोनी मूर्त्ति है हेरी, तब से हुई हैं बिन मोल की चेरी, तुम्हारे नयन बाणों ने हते हैं हिय हमारे, सो प्यारे लखे बिन तुम्हारे जीव जाते हैं हमारे,

अब करुणा कीजै, तजकर कठोरता बेग दर्शन दीजै। जेा तुम्हें मारना ही था तेा हमकेा विषधर, आग और जल से किसलिये बचाया? तभी मरने क्यों न दिया? तुम केवल यशोदा-सुत नहीं हेा। तुम्हें ब्रह्मा, रुद्र इन्द्रादि सब देवता विनती कर लाये हैं संसार की रक्षा के लिये।

हे प्राणनाथ! हमें एक अचरज बड़ा है, जेा अपनी ही केा मारोगे तेा रखवाली किसकी करोगे। प्रीतम तुम अन्तर्यामी होय हमारे दुःख हर, मन की आशा क्यों नहीं पूरी करते? क्या अबलाओं पर ही शूरता धरी है—हे प्यारे! जब तुम्हारी यह मुस्कान युत प्यार भरी चितवन और भृकुटी की मरेार नयनों की मटकन, ग्रीवा की लटक, और बातों की चटक, हमारे जी में आती है, तब क्या क्या दुःख पाती हैं, और जिस समय तुम गौ चरावन जाते थे बन में तिस समय तुम्हारे केामल चरण का ध्यान करने से बन के कंकर काँटे आ कसकते थे हमारे मन में, भेार के गये साँझ केा फिर आते थे, तिस पर भी हमें चार पहर चार युग से जनाते थे, जब सन्मुख सुन्दर बदन निहारती थीं, तब अपने जी में विचारती थीं कि ब्रह्मा केाई बड़ा मूर्ख है। जेा पलक बनाई है, हमारे इकटक देखने में बाधा डालने केा।

इतनी कथा कह शुकदेव जी बेाले कि महाराज! इसी रीति से सब गेापी विरह की मारी कृष्णचन्द्र के गुण और चरित्र अनेक अनेक प्रकार से गाय गाय हारीं, तिस पर भी न आये बिहारी, तब तेा निपट निरास हेा मिलने की आशा तज जीने का भरेासा छेाड़ अति अधीरता से अचेत हेा गिर कर ऐसे रेाय पुकारीं कि सुन कर चर अचर भी दुःखित भये भारी।

३३—गोपी-कृष्ण-सम्वाद

शुकदेव जी बोले—कि महाराज ! जब श्रीकृष्णचन्द्र अन्तर्यामी ने जाना कि अब ये गोपियाँ मुझ बिना जीती न रहेंगी।

छप्पै—तब तिनहीं में प्रकट भये, नंदनन्दन यौं ॥
दृष्टि बन्ध कर छिपे फिरे प्रकटे नटबर ज्यौं ॥
आये हरि देखे जबै, उठीं सबै यों चेत ॥
प्राण परे ज्यों मृतक में, इन्द्री जगे अचेत ॥
बिन देखे सबको मन व्याकुल हो भयो ॥
मानो मनमथ भुजंग सबनि डसि कै गयो ॥
पीर खरी प्रिय जान पहुँचे आय कै ॥
अमृत बेलनि सींच लई सब ज्याय कै ॥

दो० मनहुँ कंज निशि मलिन है, ऐसे ही ब्रजबाल।
कुण्डल रवि छवि देखि कै, फूले नयन विशाल ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले—कि महाराज ! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द को देखते ही सब गोपियाँ एकाएकी विरह सागर से निकल उनके पास जाय ऐसे प्रसन्न हुईं कि जैसे कोई अथाह समुद्र में डूब थाह पाय प्रसन्न होय, और चारों ओर से घेर कर खड़ी भईं। तब श्रीकृष्ण उन्हें साथ लिये वहाँ आये जहाँ पहिले रास विलास किया था। जाते ही एक गोपी ने अपनी ओढ़नी उतार के श्रीकृष्ण के बैठने को बिछा दी। जो वे उस पर बैठे, तो कई एक गोपी क्रोध कर बोलीं—कि महाराज ! तुम बड़े कपटी हो; बिराना मन, धन, लेने जानते हो पर किसी का गुण कुछ नहीं मानते, इतना कह आपस में कहने लगीं :—

दो० गुण छाँड़े औगुण गहे, रहे कपट मन छाय।
देखो सखी बिचारि कै, तासों कहा बसाय ॥

यह सुन एक उनमें से बोली कि सखी तुम अलगी रहो, अपने कहे कुछ शोभा नहीं पाती, देखो मैं कृष्ण ही से कहती हूँ, यों कह उसने मुस्कुराय के श्रीकृष्ण से पूँछा कि, महाराज ! बिन गुण किये गुण मान ले, दूसरा किये गुण का पलटा दे, तीसरा गुण के पलटे औगुण करे, चौथा किसी के किये गुण को भी मन में न धरे; इन चारों में कौन भला है और कौन बुरा, यह तुम हमें समझाय के कहो। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, तुम सब मन दे सुनो, भला और बुरा मैं बुझा कर कहता हूँ। उत्तम तो वह है, जो बिन किये करै, जैसे पिता पुत्र को चाहता है, और किये पर करने से कुछ पुण्य नहीं, सो ऐसे हैं, जैसे बाँट के हेतु गौ दूध देती है। गुण को औगुण माने तिसे शत्रु जानिये, सब से बुरा कृतघ्न जो किये को मेटै।

इतना वचन सुनते ही, सब गोपियाँ आपस में एक एक का मुँह देख हँसने लगीं। तब तो कृष्णचन्द्र घबराकर बोले कि सुनो मैं इन चार की गिनती में नहीं, जो तुम जान के हँसती हो, वरन् मेरी तो यह रीति है कि जो मुझ से जिस बात की इच्छा रखता है, तिसके मन की बाँछा पूरी करता हूँ, कदाचित् तुम कहो कि जो तुम्हारी यह चाल है, तो हमें बन में ऐसे क्यों छोड़ गये। इसका कारण यह है कि मैंने तुम्हारी प्रीति की परीक्षा ली, इस बात का मत बुरा मानो, मेरा कहा सच्चा ही जानो, यों कह फिर बोले :—

चौपाई

अब हम परचो लियो तुम्हारो। कीनों सुमिरण ध्यान हमारो॥
मोंही सों तुम प्रीति बढ़ाई। निर्द्धन मनो सम्पदा पाई॥
ऐसे आई मेरे काज। तजि कै लोक वेद की लाज॥

ज्यों वैरागी छाँड़ै गेह। मन दे हरि सों करै सनेह॥
कहा तिहारी करों बड़ाई। हम पै पलटो दियो न जाई॥
जो ब्रह्मा के सौ वर्ष जियें तो भी हम तुम्हारे ऋण से उऋण न होयँगे।

३४—पंचाध्यायी, रासलीला-वर्णन

श्रीशुकदेव मुनि बोले—राजा! जब श्रीकृष्णचन्द्र ने इस ढब से रस के वचन कहे, तब तो सब गोपियाँ रिस छोड़ प्रसन्न हो उठ हरि से मिल भाँति भाँति सुख मान आनन्द में मगन हो कुतूहल करने लगीं, तिस समय,

दो० कृष्ण जोग माया ठई, भये अंग बहु देह।
सब को सुख चाहत दियो, लीला परम सनेह॥

जितनी गोपियाँ थीं, तितने ही शरीर कृष्णचन्द्र ने धर उसी रासमण्डल के चौतरे पर सब को साथ ले फिर रास विलास को आरम्भ किया।

चौपाई

द्वै द्वै गोपी जोरे हाथ। तिनके बीच बीच हरि साथ॥
अपनी अपनी ढिग सब जाने। नहीं दूसरे को पहिचाने॥
अँगुरिन में अँगुरी कर दिये। प्रमुदित फिरैं संग हरि लिये॥
बिच गोपी बिच नन्दकिशोर। सघन घटा दामिनि चहुँ ओर॥
श्याम कृष्ण गोरी ब्रजबाला। मानहुँ कनक नील मणि माला॥

महाराज! इसी रीति से खड़े होय गोपी और कृष्ण लगे अनेक अनेक प्रकार के यंत्रों के सुर मिलाय मिलाय कठिन कठिन राग अलाप अलाप बजाय बजाय गाने और तीखी, चोखी, आड़ी, ज्योढ़ी, दुगुन, तिगुन की तानैं उपजें, ले ले बोल बताय बताय

नाचने, और आनन्द में ऐसे मगन हुए, कि उनको तन मन की भी सुधि न थी। कहीं इनका अँचल उघड़ जाता था, कहीं उनका मुकुट खिसक जाता था; इधर मोतियों के हार टूट टूट गिरते थे उधर बनमाल टूट पड़ती थी। पसीने की बूँदें माथों पर मोतियों की लड़ी सी चमकती थीं, और गोपियों के गोरे गोरे मुखड़ों पर अलकें यों बिखर रही थीं कि जैसे अमृत के लोभ से सपोलिये उड़ उड़ कर चाँद को जा लगे होयँ। कभी कोई गोपी कृष्ण की मुरली के साथ मिलकर झील में गाती थी, कभी कोई अपनी तान अलग ही ले जाती थी, और जो कोई बंशी को छेक उसकी तान समूची ज्यों की त्यों गले से निकालती थी। तब हरि ऐसे भूल रहे थे कि ज्यों बालक दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देख भूल रहैं।

इसी ढब से गाय गाय नाच नाच अनेक अनेक प्रकार के हाव भाव कटाक्ष कर कर सुख लेते थे, और परस्पर रीझ रीझ हँस, कण्ठ लगाय लगाय वस्त्र आभूषण निछावर कर रहे थे। उस काल ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, आदि सब देवता और गन्धर्व अपनी अपनी स्त्रियों समेत बिमानों में बैठ रासमण्डली का सुख देख देख आनन्द से फूल बर्षावते थे, और उनकी स्त्रियाँ वह सुख लख हँस कर मन में कहती थीं कि जो जन्म ले व्रज में जातीं तो हम भी हरि के साथ रास बिलास करतीं, और रागनियों का ऐसा सम बँधा हुआ था कि जिसे सुन के पवन-पानी भी न बहता था। और तारामण्डल समेत चन्द्रमा थकित हो किरणों से अमृत बर्षाता था, इसमें रात बढ़ी तो छः महीने बीत गये। और किसी ने न जाना। तभी से उस रैन का नाम ब्रह्मरात्रि हुआ।

इतनी कथा सुनाय शुकदेव जी बोले—पृथ्वीनाथ! रासलीला करते करते जो कुछ श्रीकृष्णचन्द्र के मन में तरङ्ग आई

तो गोपियों को लिए यमुना तीर पै जाय नीर में पैठ जल क्रीड़ा कर, श्रम मिटाय बाहर आय, सबके मनोरथ पूरे कर बोले कि अब चार घड़ी रात रही है, तुम सब अपने घर जाओ। इतना बचन सुन उदास हो गोपियों ने कहा—आपके चरण कमल छोड़ के घर कैसे जायँ। हमारा लालची मन तो कहा मानता ही नहीं। कृष्णचन्द्र बोले कि सुनो, जैसे योगी जन मेरा ध्यान धरते हैं, तैसे तुम भी ध्यान कीजियो, मैं तुम्हारे पास जहाँ रहोगी तहाँ रहूँगा। इतनी बात के सुनते ही सन्तोष कर सब बिदा हो अपने अपने घर गईं, और यह भेद उनके घर वालों में से किसी ने न जाना कि ये यहाँ न थीं।

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव मुनि से पूँछा कि—दीनदयाल! यह मुझे तुम समझा कर कहो। जो कृष्णचन्द्र असुरों को मार पृथ्वी का भार उतारने, और साधु सन्तों को सुख दे, धर्म का पन्थ चलाने के लिये अवतार ले आये थे। तो उन्होंने पराई स्त्रियों के साथ रासविलास क्यों किया? यह तो कुछ लम्पट का कर्म है, जो बिरानी नारी से भोग करे, शुकदेव जी बोले :—

चौ० सुन राजा यह भेद न जान्यो। मानुष सम परमेश्वर मान्यो॥
जिनके सुमिरे पातक जात। तेजवन्त पावन है गात॥
जैसे अग्नि माँझ कछु परे। सोई अग्नि होइ कै जरै॥

सामर्थी क्या नहीं करते, क्योंकि वे तो करके कर्म को हानि करते हैं। जैसे शिव जी ने विष लिया और खाके कण्ठ को भूषण दिया, और काला साँप का किया हार, कौन जाने उनका व्यवहार, वे तो अपने लिये कुछ भी नहीं करते, जो उनका भजन स्मरण कर कोई वर माँगता है, तैसा ही उसको देते हैं।

उनकी तो यही रीति है कि सब में मिले दृष्टि आते हैं, और ध्यान कर देखिये तो सब ही से अलग जताते हैं। जैसे जल में कमल का पात। और गोपियों की उत्पत्ति तो मैं तुम्हें पहले ही सुना चुका हूँ, कि वेद और वेद की ऋचायें हरि का दरश परश करने को ब्रज में जन्म ले आई हैं। और इसी भाँति श्रीराधिका भी ब्रह्मा से बर पाय श्रीकृष्णचन्द्र की सेवा करने को जन्म लें आईं, और प्रभु की सेवा में रहीं।

इतना कह श्रीशुकदेव जो बोले—महाराज! कहा है कि हरि के चरित्र मान लीजे, पर उनके करने में मन न दीजे। जो कोई गोपीनाथ का यश गाता है, सो निर्भय अटल परमपद पाता है, और जैसा फल होता है अड़सठ तीर्थ के नहाने में तैसा ही फल मिलता है।

३५—विद्याधर मोक्ष, शंखचूड़बध

श्रीशुकदेव मुनि कहने लगे कि—राजा! जैसे श्रीकृष्ण जी ने विद्याधर को तारा, और शङ्खचूड़ को मारा सो प्रसङ्ग कहता हूँ, तुम जी लगाय सुनो। एक दिन नन्द जी ने सब गोप ग्वालों को बुलाय के कहा कि—भाइयो! जब कृष्ण का जन्म हुआ था, तब, मैंने कुलदेवी अम्बिका की यह मानता करी थी कि जिस दिन कृष्ण बारह वर्ष का होयगा, तिस दिन नगर समेत बाजे गाजे से जाकर पूजा करूँगा। सो दिन उनकी कृपा से आज देखा अब चल कर पूजा किया चाहिये।

इतना बचन नन्द जी के मुख सुनते ही सब गोप ग्वाल उठ धाये, और झटपट ही अपने अपने घरों से पूजा की सामग्री ले आये, तब तो नन्दराय पुजापा और दूध-दही-माखन छकड़ों

बहँगियों पर रखवाय कुटुम्ब समेत उनके साथ हो लिये, और चले चले अम्बिका के मन्दिर पहुँचे, वहाँ जाय सरस्वती नदी में न्हाय नन्द जी ने पुरोहित बुलाय सब को साथ ले देवी के मन्दिर में जाय शास्त्र की रीति से पूजा की, और जो पदार्थ चढ़ाने को ले गये, सो आगे धर परिक्रमा दे हाथ जोड़ विनती कर कहा कि—माँ ! आपकी कृपा से कान्ह बारह वर्ष का हुआ।

ऐसे कह दण्डवत् कर मंदिर के बाहर आय सहस्र ब्राह्मण जिवाँये, इनमें अबेर जो हुई तो सब ब्रजवासियों समेत नन्द जी तीर्थ व्रत कर वहाँ ही रहे, रात को सोते थे, कि एक अजगर ने आय नन्दराय का पाँव पकड़ा और लगा निगलने, तब तो वे देखते ही भय खाय घबराय के पुकारने लगे—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! बेग सुधि ले, नहीं तो यह मुझे निगले जाता है। उनका शब्द सुनते ही सारे ब्रजबासी स्त्री पुरुष नींद से चौंक नन्द जी के निकट जाय, उजाला कर देखें तो एक अजगर उनका पाँव पकड़े पड़ा है। इतने में श्रीकृष्णचन्द्र जी ने पहुँच सब के देखते ज्योंही उसकी पीठ में चरण लगाया, त्योंही वह अपनी देह छोड़ सुन्दर पुरुष हो प्रणाम कर सन्मुख हाथ जोड़ खड़ा हुआ। तब श्रीकृष्ण ने उससे पूँछा कि तू कौन है ? और किस पाप से अजगर हुआ था सो कह। वह शिर झुकाय विनती कर बोला—अन्तर्यामी तुम सब जानते हो, मेरी उत्पत्ति कि मैं सुदर्शन नाम विद्याधर हूँ, सुरपुर में रहता था, और अपने रूप गुण के आगे गर्व से किसी को कुछ न गिनता था।

एक दिन विमान में बैठ फिरने को निकला तो जहाँ अंगिरा ऋषि बैठे तप करते थे, तिनके ऊपर हो सौ बेर आया गया। जब उन्होंने विमान की परछाहीं देखी तो ऊपर देख क्रोध कर मुझे शाप दिया कि—रे अभिमानी ! तू अजगर साँप हो।

इतना वचन उनके मुख से निकला कि मैं अजगर हो नीचे गिरा तिस समय ऋषि ने कहा था, कि तेरी मुक्ति श्रीकृष्णचन्द्र के हाथ होगी। इसलिये मैंने नन्दराय जी के चरण आन पकड़े थे कि आप आय के मुझे मुक्त करें सो कृपानाथ! आपने आय कृपा कर मुझे मुक्ति दी। ऐसे कह विद्याधर तो परिक्रमा दे हरि से आज्ञा ले दण्डवत् कर बिदा हो, विमान पर चढ़ सुरलोक को गया, और यह चरित्र देख सब ब्रजवासियों को अचरज हुआ। निदान भोर होते ही देवी का दर्शन कर सब वृन्दाबन आये।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—पृथ्वीनाथ! एक दिन हलधर और गोविन्द गोपियों समेत चाँदनी रात को आनन्द से बन में गाय रहे थे, कि इस बीच कुबेर का सेवक शंखचूड़ नाम यक्ष जिसके शीश में मणि और अति बलवान था, सो आ निकला। देखा तो एक ओर सब गोपियाँ कुतूहल कर रही हैं। और एक ओर कृष्ण बलदेव मगन हो मत्तवत् गाय रहे हैं। कुछ इसके जी में जो आई, तो सब ब्रजयुवतियों को घेर आगे धर ले चला, तिस समय वे भय खाय पुकारीं, ब्रजनाथ! अब रक्षा करो।

इतना बचन गोपियों के मुख से निकलते ही सुन कर, दोनों भाई रूख उखाड़ हाथों में ले यों दौड़ आये, कि मानों गज माते सिंह पर उठ धाये। और वहाँ जाय गोपियों से कहा कि तुम किसी से मत डरो, हम आन पहुँचे इनको काल समान देखते ही यक्ष भय मान गोपियों को छोड़ अपना प्राण ले भागा। उस काल नन्दलाल ने बलदेव जी को तो गोपियों के पास छोड़ा, और आप जाय उसके ढाढ़े पकड़ पछाड़ा, निदान तिरछा हाथ कर उसका शिर काट मणि ले बलराम जी को दिया।

३६—गोपीगीत-वर्णन

शुकदेव मुनि बोले—राजा ! जब तक हरि बन में धेनु चरावें, तब तक सब ब्रजयुवतियाँ नन्दरानी के पास आय बैठ कर प्रभु का यश गावैं। जो लीला कृष्णचन्द्र बन में करें सो गोपियाँ घर बैठे उच्चरें।

चौ० सुनो सखो बाजत है बैन। पशु पक्षी पावत हैं चैन॥
पति सँग देवी थको विमान। मगन भईं हैं धुनि सुनि कान॥
करते परहीं चूरी मूँदरी। विह्वल मन तन की सुधि हरी॥
तबही एक कहै ब्रजनारी। गर्ज्जनि मेघ तजी अति हारी॥
गावत हरि आनन्द अडोल। भौंह नचावत पाणि कपोल॥
पियसँग मृगी थकी सुनि बेनु। यमुना फिरो घिरी तहँ धेनु॥
मोहित बादर छाया करैं। मानों छत्र कृष्ण पर धरैं॥
अब हरि सघन कुंज को धाये। पुनि सब बंशी वट तर आये॥
गायन पाछे डोलत भये। घेर लई जल प्यावन गये॥
साँझ भई अब उलटे हरी। राँभति गाय बेणु धुनिकरी॥

इतनी कथा सुनाय शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज ! इसी रीति से नित्य गोपियाँ दिन भर हरि के गुण गावें और साँझ समय आगे जाय कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द से मिल सुख मान ले आवें, और तिस समय यशोदा रानी भी रज मण्डित पुत्र का मुख प्यार से पोंछ कण्ठ लगाय सुख मानें।

३७—कंस-नारद संवाद

शुकदेव जी बोले कि—महाराज ! एक दिन कृष्णचन्द्र बलराम साँझ समय धेनु चराय बन से घर को आते थे, इस बीच एक असुर अति बड़ा बैल बन आय गायों में मिला।

चौ० आकाश लौं देह तिह धरी। पीठ कड़ी पाथर सी करी॥
बड़े सींग तीक्षण दोउ खरे। रक्त नयन अति ही रिस भरे॥
पूँछ उठाय डकारत फिरै। रहि रहि भूतल गोबर करै॥
फड़के कन्ध हिलावै कान। भजे देव सब छोड़ि विमान॥
खुर सों खोदे नदी करारे। पर्वत उथल पीठ सों डारे॥
सब को त्रास भयो तिहिं काल। काँपै लोक पाल दिग पाल॥
पृथ्वी हलै शेष शर हरैं। त्रिय औ धेनु गर्भ भू परैं॥

उसे देखते ही सब गायें जिधर तिधर फैल गईं, और व्रजवासी दौड़ वहाँ आये, जहाँ सब से पीछे कृष्ण बलराम चले आते थे, प्रणाम कर कहा—महाराज! आगे एक बड़ा बैल खड़ा है। उससे हमें बचाओ, इतनी बात के सुनते ही अन्तर्य्यामी श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, तुम कुछ मत डरो उससे, वह नीच हमसे अपनी मीच चाहता है, वृषभ का रूप बनकर आया है। इतना कह आगे जाय उसे देख बोले बनमाली, कि आव हमारे पास, तू और किसी को क्यों डराता है, मेरे निकट किसलिये नहीं आता है। जो बैरी सिंह का कहावता है सो मृग पर नहीं धावता। देख मैं हूँ कालरूप गोबिन्द, मैंने तुझ से बहुतों को मार दिया है।

यों कह फिर ताल ठोंक ललकारे, आ मुझसे संग्राम कर यह वचन सुनते ही असुर ऐसा क्रोध कर धाया कि मानो इन्द्र का बज्र आया। ज्यों ज्यों हरि उसे हटाते थे, त्यों त्यों वह सँभल सँभल बढ़ा आता था। एक बार ज्योंही उन्होंने उसे दे पटका, त्योंही खिजला कर उठा और दोनों सींगों में उसने हरि को दबाया, तब तो श्रीकृष्ण जी ने भी फुरती से निकल झट पाँव पर पाँव दे उसके सींग पकड़ यों मड़ोरा कि जैसे कोई भीगे चीर को निचोड़े। निदान वह पछाड़ खाय गिरा और

उसका जी निकल गया। तिस समय सब देवता लगे अपने अपने बिमानों में बैठ आनन्द से फूल बर्षाने और गोपी गोप कृष्ण यश गाने। इस बीच राधिका जी ने आ हरि से कहा कि—महाराज! वृषभ रूप जो तुमने मारा इसका पाप हुआ। इससे अब तुम तीर्थ नहाय आवो, तब किसी को हाथ लगाओ। इतनी बात के सुनते ही प्रभु बोले कि, सब तीर्थों को मैं ब्रज ही में बुलाय लेता हूँ। यों कह गोबर्द्धन के निकट जाय दो ओंड़े कुण्ड खुदवाये, तहीं सब तीर्थ देह धर आये, और अपना अपना नाम कह उनमें जल डाल डाल चले गये। तब कृष्णचन्द्र उसमें स्नान कर बाहर आ अनेक गोदान दे बहुत से ब्राह्मण जिमाय शुद्ध हुये। और उसी दिन से कृष्णकुण्ड राधाकुण्ड करके वे प्रसिद्ध हुए।

यह प्रसंग सुनाय शुकदेव मुनि बोले कि—महाराज! एक दिन नारद मुनि जो कंस के पास आये और उसका कोप बढ़ाने को जब उन्होंने बलराम और श्याम के होने और माया के आने और कृष्ण के जाने का भेद समझा कर कहा, तब कंस क्रोध करके बोला—नारद जी तुम सत्य कहते हो। :—

दो० प्रथम दियो सुत आनि कै, मन परतीत बढ़ाय।
ज्यों ठग कछू दिखाइ कै, सर्वस ले भजि जाय॥

इतना कह बसुदेव को बुलाय पकड़ बाँधा और खाँड़े पर हाथ रख अकुला कर बोला :—

चौ० मिला रहा कपटी तू मुझे। भला साधु जाना मैं तुझे॥
दिया नन्द को कृष्ण पठाय। देवी हमें दिखाई आय॥
मन में कछू कहौ मुख और। आज अवशि मारूँ यहि ठौर॥
मित्र सगा सेवक हितकारी। करै कपट सो पापी भारी॥

दो० मुख मीठा मन विष भरा, रहै कपट के हेत।
आप काज परद्रोहिया, उससे भला जो प्रेत॥

ऐसे बक झक फिर कंस नारद जी से कहने लगा कि—महाराज! कुछ इनके मन का भेद हमने न पाया, लड़का हुआ और कन्या को ला दिखाया। जिसे कहा अधूरा गया, सोई जा गोकुल में बलदेव भया। इतना कह क्रोध कर होठ चबाय खड्ग उठाय जो चाहा कि बसुदेव को मारूँ, तो नारद मुनि ने हाथ पकड़ कर कहा—राजा! बसुदेव को तो तू आज रख, और जिसमें कृष्ण बलदेव आवें सो काज कर, ऐसे समझाय बुझाय जब नारद मुनि चले गये, तब कंस ने बसुदेव देवकी को तो एक कोठरी में मूँद दिया, और आप भयातुर हो केशी नाम राक्षस को बुला के बोला :—

चौ० महाबली तू साथी मेरा। बड़ा भरोसा मुझको तेरा।
एक बार तू ब्रज में जा। राम कृष्ण हति मुझे दिखा॥

इतना बचन सुनते ही, केशी तो आज्ञा पा बिदा हो दंडवत् कर वृन्दाबन को गया, और कंस ने शल, तोशल, चाणूर, अरिष्ट, व्योमासुर आदि जितने मंत्री थे सबको बुलाय भेजा। वह आय तिन्हें समझा कर कहने लगा कि मेरा बैरी पास आय बसा है। तुम अपने जी में सोच विचार करके मेरे मन का शूल जो खटकता है निकालो। मंत्री बोले—पृथ्वीनाथ! आप महाबली हो किससे डरते हो, राम कृष्ण का मारना क्या बड़ी बात है? कुछ चिन्ता मत करो। जिस छल बल से ये यहाँ आवें सोई हम मता बतावें।

पहिले तो यहाँ भली भाँति से एक ऐसी सुन्दर रङ्गभूमि बनवावें, कि जिसकी शोभा सुनते ही देखने को नगर नगर गाँव गाँव के लोग उठ धावें। पीछे महादेव का यज्ञ कराओ, होम के

लिये बकरे भैंसे मँगवाओ, यह समाचार सुन सब व्रजबासी भेंट लावेंगे, जिनके साथ राम कृष्ण भी आवेंगे। तभी कोई मल्ल पछाड़ेगा, कै कोई और ही बली पौर पै मार डालेगा, इतनी बात के सुनते ही,

सो० कहै कंस मन लाय, भली मतो मंत्री दियो।
लीने मल्ल बुलाय, आदर कर बीरा दियो॥

फिर सभा कर अपने बड़े बड़े राक्षसों से कहने लगा कि, जब हमारे भानजे रामकृष्ण यहाँ आवें तब तुममें से कोई उन्हें मार डालियो, जो मेरे जी का खटका जाय। उन्हें यों समझाय पुनि महावत को बुलाय के बोला कि तेरे वश में मतवाला हाथी है तू द्वार पर लिये खड़ा रहना। जब वे दोनों आवें द्वार में पाँव दें तब तुम हाथी से चिरवा डालियो। किसी भाँति भागने न पावें, जो दोनों को मारेगा सो मुह माँगा धन पावैगा।

ऐसे सबको सुनाय समझाय बुझाय, कार्त्तिक बदी चौदस को शिव का यज्ञ ठहराय, कंस ने साँझ समय अक्रूर को बुलाय अति भाव भक्ति कर घर भीतर ले जाय एक सिंहासन पर अपने पास बैठाय, हाथ पकड़ अति प्यार से कहा कि तुम यदुकुल में सब से बड़े ज्ञानी धर्मात्मा धीर हो, इसलिये तुम्हें सब जानते मानते हैं, ऐसा कोई नहीं जो तुम्हें देख सुखी न होय। इससे जैसे इन्द्र का काज बामन ने जा किया, जो छल कर बलि का सारा राज्य ले लिया। और राजा बलि को पाताल पठाया, तैसे तुम हमारा काम करो, तो एक बेर वृन्दाबन जाओ और देवकी के दोनों लड़कों को जैसे बने तैसे छल बल कर यहाँ ले आओ। कहा है जो बड़े हैं, सो आप दुःख सह पराया काज करते हैं, तिसमें तुम्हें तो सब बात की लाज हमारी है, अधिक क्या कहैं, जैसे बने तैसे उन्हें ले आओ, तो यहाँ सहज ही में मारे जायँगे।

कै तो चाणूर पछाड़ेगा, कै कुबलयापीड़ गज पकड़ चीर डालेगा। नहीं तो मैं ही उठ मारूँगा अपना काज अपने हाथ सवाँरूँगा, और उन दोनों को मार पीछे उग्रसेन को हनूँगा, क्योंकि वह बड़ा कपटी है। मेरा मरना चाहता है, फिर देवकी के पिता देवक को आग से जलाय पानी में डुबोऊँगा, साथ ही उसके बसुदेव को मार हरिभक्तों को जड़ से खोऊँगा, तब निष्कण्टक राज्य कर जरासन्ध जो मेरा प्रचण्ड मित्र है उसके त्रास से नवखण्ड काँपते हैं और नरकासुर, बाणासुर आदि बड़े बड़े महाबली राक्षस जिसके सेवक हैं, तिससे जा मिलूँगा। जो तुम राम कृष्ण को ले आओ।

इतनी बातें कह कंस फिर अक्रूर को समझाने लगा कि, तुम वृन्दाबन में जाय नन्द के यहाँ कहियो कि शिव का यज्ञ है, धनुष धरा है, और अनेक अनेक प्रकार के कुतूहल वहाँ होयँगे। यह सुन नन्द उपनन्द गोपों समेत बकरे भैंसे ले भेंट देने आवेंगे, तिनके साथ देखने को कृष्ण बलदेव भी आवेंगे। यह तो मैंने तुम्हें उनके लाने का उपाय बताय दिया। आगे तुम सज्ञान हो जो और उचित बनि आवै सो करियो, अधिक तुम से क्या कहें, कहा :—

सो० होय बिचित्र बसीठ, जाहि बुद्धिबल आपनो।
पर कारज पर दीठ, करहिं भरोसो ताहि को॥

इतनी बात के सुनते ही पहिले तो अक्रूर ने अपने जी में बिचारा कि जो मैं अब इसे कुछ भली बात कहूँगा, तो यह न मानेगा। इससे उत्तम यही है कि इस समय इसके मनभाती सुहाती बात कहूँ, ऐसे और भी ठौर कहा है, कि वही कहिये जो जिसे सुहाय। यों सोच बिचार अक्रूर हाथ जोड़ शिर झुकाय बोला—महाराज! तुमने भला मता किया, यह बचन

हमने भी शिर चढ़ाय मान लिया, होनहार पर कुछ वश नहीं चलता। मनुष्य अनेक मनोरथ कर धावता है, पर कर्म का लिखा ही फल पावता है। सोचते कुछ हैं और होता कुछ है, और किसी के मन का चेता होता नहीं। आगम बाँध तुमने यह बात विचारी है, न जानिये कैसी होय, मैंने तुम्हारी बात मान ली। कल भोर को जाऊँगा, और रामकृष्ण को ले आऊँगा, ऐसे कह कंस से बिदा हो अक्रूर अपने घर आया।

३८—व्योमासुर-बध

श्रीशुकदेव जी बोले, कि महाराज ! ज्यों श्रीकृष्णचन्द्र ने केशी को मारा और नारद ने जाय स्तुति करी, पुनि हरि ने व्योमासुर को हना, सो सब चरित्र कहता हूँ तुम चित्त दे सुनो, कि भोर होते ही केशी अति ऊँचा भयानक घोड़ा बन वृन्दाबन में आया, और लगा लाल लाल आँखें कर नथुने चढ़ाय कान पूँछ उठाय टापों से भूमि खोदने और हींस हींस काँधा कँपाय कँपाय लातें चलाने।

उसे देखते ही, ग्वाल बालों ने भय खाय भाग, कृष्ण से जा कहा, वे सुन के वहाँ आये जहाँ वह था, और उसे देख लड़ने को फेंट बाँध ताल ठोंक सिंह की भाँति गरज कर बोले—अरे जो तू कंस का बड़ा प्रीतम है, और घोड़ा बन कर आया है, तो और के पीछे क्यों फिरता है, आ मुझसे लड़, जो तेरा बल देखूँ, दीप पतंग की भाँति कब तक फिरेगा, तेरी मृत्यु तो निकट आन पहुँची है। यह वचन सुन केशी ने कोप कर अपने मन में कहा कि आज इसका बल देखूँगा, और पकड़ ईख की भाँति चबाय कंस का कार्य कर जाऊँगा।

इतना कह मुँह बाय के ऐसा दौड़ा कि मानों सारे संसार को खा जायगा। आते ही पहले ज्यों उसने कृष्ण पर मुँह चलाया तो उन्होंने एक बेर तो ढकेल कर पीछे को हटाया। जब दूसरी बेर वह फिर सँभल के मुख फैलाय धाया, तब श्रीकृष्ण ने अपना हाथ उसके मुँह में डाल लोह लाट सा कर ऐसा बढ़ाया कि जिसने उसको दशों द्वार जा रोके। तब तो केशी घबरा कर जी में कहने लगा कि अब देह फटती है। यह कैसी भई, अपनी मृत्यु आप मुँह में ली, जैसे मछली बंशी को निगल प्राण देती है तैसे मैंने भी अपना जीव खोया।

इतना कह उसने बहुतेरे उपाय हाथ काढ़ने को किये, पर एक भी काम न आया। निदान साँस रुक कर पेट फट गया, तो पछाड़ खाकर गिरा, तब उसके शरीर से लोहू नदी की भाँति बह निकला। तिस समय ग्वाल बाल आय आय देखने लगे, और श्रीकृष्णचन्द्र आगे जाय बन में एक कदम्ब की छाँह में खड़े हुए।

इस बीच बीणा हाथ में लिये नारद मुनि जी आन पहुँचे। प्रणाम कर खड़े होय बीणा बजाय भगवान् की भूत भविष्य सब लीला और चरित्र गाय के बोले कि—कृपानाथ! तुम्हारी लीला अपरम्पार है, इतनी किसमें सामर्थ्य है, जो आपके चरित्रों को बखाने। पर तुम्हारी दया से मैं इतना जानता हूँ, आप भक्तों को सुख देने के अर्थ और साधुओं की रक्षा के निमित्त और दुष्ट असुरों के नाश करने के हेतु बार बार अवतार ले संसार में प्रकट हो भूमि का भार उतारते हो।

इतना वचन सुनते ही प्रभु ने नारद मुनि को तो बिदा दी वे दण्डवत् कर सिधारे, और आप सब ग्वाल बाल सखाओं को साथ लिये बड़ के तले बैठ, पहले तो किसी को प्रधान मंत्री,

किसी को सेनापति बनाय आप राजा हो राजनीति से लगे खेल खेलने, और पीछे आँखि मिचौली। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि पृथ्वीनाथ !

दो० मारेा केशी भोर ही, सुनेा कंस यह बात।
व्योमासुर सों कहत हैं, व्याकुल कम्पत गात॥

चौ० अरि कन्दन व्योमासुर बली। तेरी जग में कीरति भली॥
ज्यों राम के पवन केा पूत। त्योंही मेरो तू यमदूत॥
बसुदेव के पूत हति ल्याव। आज काज मेरेा करि आव॥

यह सुन हाथ जेाड़ व्योमासुर बोला—महाराज ! जेा बसायगी सेा करूँगा आज, मेरी देह है आप ही के काज, जेा जी के लोभी हैं तिन्हें स्वामी के अर्थ जी देते आती है लाज, सेवक और स्त्री को तेा इसी में यश धर्म है। जेा स्वामी के निमित्त प्राण दें। ऐसे कह श्रीकृष्ण बलदेव पर बीड़ा उठाय, कंस को प्रणाम कर, व्योमासुर बृन्दाबन केा चला। बाट में जाय ग्वाल का भेष बनाय चला चला वहाँ पहुँचा जहाँ हरि ग्वाल बाल सखाओं के साथ आँख मिचौली खेल रहे थे, जाते ही दूर से उसने हाथ जोड़ श्रीकृष्णचन्द्र से कहा—महाराज ! मुझे भी अपने साथ खिलाओ, तब हरि ने उसे पास बुलाकर कहा—तू अपने जी में किसी बात की होंस मत रख, जेा तेरा मन माने सेा खेल हमारे संग खेल। येां सुन वह प्रसन्न हो बोला—कि वृक मेढ़े का खेल भला है। श्रीकृष्ण-चन्द्र ने मुस्कराय के कहा—बहुत अच्छा तू बन भेड़िया, और सब ग्वाल बाल होंगे मेढ़े। सुनते ही फूल कर व्योमासुर तेा ल्यारी हुआ। और ग्वाल बाल बने मेढ़े, सब मिल कर खेलने लगे।

तिस समय वह असुर एक एक को उठाय ले जाय और पर्वत की गुफा में रख उसके मुँह पर आड़ी शिला धर मूँद के चला

आवे, ऐसे जब सब को वहाँ रख आया, और अकेले श्रीकृष्ण रहे तब ललकार कर बोला, कि आज कंस का काज करूँगा, और सब यदुबंशियों को मारूँगा। यों ग्वाल का भेष छोड़ सचमुच भेड़िया बन, ज्यों हरि पर झपटा त्यों उन्होंने उसको पकड़ गला घोंट मारे घूँसों के मार पटका कि जैसे यज्ञ के बकरे को मार डालते हैं।

३६—अक्रूर-वृन्दाबन गमन

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—महाराज! कार्त्तिक बदी द्वादशी को तो केशी और व्योमासुर मारा गया, और त्रयोदशी को भोर के तड़के ही अक्रूर कंस के पास आय बिदा हो रथ पर चढ़ अपने मन में यों बिचारता वृन्दाबन को चला कि ऐसा मैंने क्या जप, तप, यज्ञ, तीर्थ, व्रत किया है, कि जिसके पुण्य से यह फल पाऊँगा, अपने जान तो इस जन्म भर कभी हरि का नाम नहीं लिया, सदा कंस की संगति में रहा भजन का भेद कहाँ पाऊँ। हाँ अगले जन्म कोई बड़ा पुण्य किया हो उस धर्म के प्रताप का यह फल हो तो हो। जो कंस ने मुझे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द-कन्द के लेने को भेजा है, तो अब जाय उनका दर्शन पाय जन्म सुफल करूँगा।

चौ० हाथ जोरि कै पायन परिहौं। पुनि पग रेणु शीश पर धरिहौं॥
पाप हरण जोई पग आहि। सेवत श्री ब्रह्मादिक ताहि॥
जे पग काली के शिर परे। जे पग कुच चन्दन से भरे॥
नाचें रासमण्डली आहें। जिन पग ढोलें गायन पाहें॥
जा पग रेणु अहिल्या तरी। जा पग तें गंगा जी निसरी॥
बलि छलि कियो इन्द्र को काज। ते पग हौं देखों गो आज॥
मोकों सगुन होत हैं भले। मृग के झुण्ड दाहिने चले॥

महाराज ! ऐसे विचार फिर अक्रूर अपने मन में कहने लगा कि, कहीं मुझे वे कंस का दूत न समझें ? फिर आप ही सोचा कि जिनका नाम अन्तर्यामी है वे तो मन की प्रीति मानते हैं, और सब मित्र शत्रु को पहिचानते हैं। ऐसा कभी न समझेंगे, वरन् मुझे देखते ही गले लगाय दया कर अपना कोमल कमल सा कर मेरे शरीर पर धरेंगे। और मैं उस चन्द्र बदन की शोभा इकटक निरख अपने नयन चकोरों को सुख दूँगा, कि जिसका ध्यान ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि सब देवता सदा करते हैं।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज ! इस भाँति सोच विचार करते रथ हाँक इधर से तो अक्रूर जी गये। और उधर बन से गौ चराय ग्वाल बालों समेत कृष्ण बलदेव भी आये तो इनसे उनसे बृन्दावन के बाहर ही भेंट भई, हरि छवि दूर से देखते ही, अक्रूर रथ से उतर अति अकुलाय दौड़ उनके पाँवों पर जा गिरा। और ऐसा मगन हुआ कि मुँह से बोल न आया, महा आनन्द कर नयनों से जल बर्षावने लगा। तब श्रीकृष्ण जी उसे उठाय अति प्यार से मिल हाथ पकड़ घर लिवाय ले गये। वहाँ नन्दराय अक्रूर जी को देखते ही प्रसन्न हो उठकर मिले, और बहुत सा आदर मान किया, पाँव धुलवाय आसन दिया।

चौ० लिये तेल मर्दनियाँ आये। उबटि सुगन्ध चुपरि अन्हवाये॥
चौका पटा यशोदा दियो। षट्रस रुचि सों भोजन कियो॥

जब अचवाय के पान खाने बैठे, तब नन्द जी उनको कुशल क्षेम पूँछ बोले कि, तुम तो यदुबंशियों में बड़े साधु हो, सदा अपनी बड़ाई से रहे हो। कहो अब कंस दुष्ट के पास कैसे रहते

हो, और वहाँ के लोगों की क्या गति है सो सब भेद कहो, अक्रूर जी बोले :—

चौ० जबतें कंस मधुपुरी भयो। तब तें सब ही को दुख दयो॥
पूँछौ कहा नगर कुशलात। परजा दुखी होत हैं गात॥
जौलों है मथुरा में कंस। तौलों कहाँ बचैं यदुबंस॥

दो० पशु मेढ़े छेरीन कों, ज्यों खटीक रिपु होइ।
त्यों परजा को कंस है, दुख पावै सब कोइ॥

इतना कह फिर बोले कि, तुम तो कंस का व्यौरा जानते हो हम अधिक क्या कहैंगे।

४०--अक्रूर-दर्शन

श्रीशुकदेव जी बोले कि पृथ्वीनाथ! जब नन्द जी बातैं कर चुके तब अक्रूर को कृष्ण बलराम शैन से बुलाय अलग ले गये।

चौ० आदर कर पूँछी कुशलात। कहौ कका मथुरा की बात॥
हैं बसुदेव देवकी नीके। राजा बैर परयो तिनहीं के॥
अति पापी है मामा कंस। जिन खोयो सिगरो यदुबंस॥

कोई यदुकुल का महारोग जन्म ले आया है, तिसी ने सब यदुबंशियों को सताया है। और सत्य पूँछो तो बसुदेव देवकी हमारे लिये इतना दुःख पाते हैं, जो हमें न छिपाते तो वे इतना दुःख न पाते, यों कह कृष्ण फिर बोले :—

चौ० तुमसों कहा चलत उन कह्यो। तिनको सदा ऋणी हौं रह्यो॥
करत होयँगे सुरत हमारी। संकट में पावत दुख भारी॥

यह सुन अक्रूर जी बोले कि—कृपानाथ ! तुम सब जानते हो क्या कहूँगा कंस की अनीति, उसकी किसी से नहीं है प्रीति, बसुदेव और उग्रसेन को नित्य मारने का विचार किया करता है। पर वे आज तक अपने प्रारब्ध से बच रहे हैं, और जब से नारद मुनि आय आपके होने का सब समाचार बुझाय के कह गये हैं, तब से बसुदेव जी को बेड़ी हथकड़ी दे महादुःख में रक्खा है, और कल उसके यहाँ महादेव का यज्ञ है और धनुष धरा है, सब कोई देखने को आवेंगे, सेा तुम्हें बुलाने को मुझे भेजा है। यह कह कर कि तुम जाय राम कृष्ण समेत नन्दराय को यज्ञ की भेंट समेत लिवाय लाओ, सेा मैं तुम्हें लेने को आया हूँ। इतनी बात अक्रूर जी से सुन राम कृष्ण ने आय नन्द से कहा :—

चौ० कंस बुलायो है सुन तात। कहि अक्रूर कथा यहि बात॥
गोरस मेढ़े छेरी लेऊ। धनुष यज्ञ है ताको देऊ॥
सब मिलि चलो साथ आपने। राजा बोले रहत न बने॥

जब ऐसे समझाय बुझाय कर श्रीकृष्णचन्द्र जी ने नन्द जी से कहा—तब नन्दराय जी ने उसी समय ढंढोरिये को बुलवाय सारे नगर में यों कह डोंडी फिरवा दी, कि कल सबेरे ही सब मिल मथुरा को जायँगे। राजा ने बुलाया है, इस बात के सुनने से भोर होते ही भेंट ले ले सकल ब्रजवासी आन पहुँचे और नन्द जी भी दूध, दही, माखन, मेढ़े, बकरे, भैंसे ले सकट जुतवाय उनके साथ हो लिये और कृष्ण बलदेव भी अपने ग्वाल बाल सखाओं को साथ ले रथ पर चढ़े।

चौ० आगे भये नन्द उपनन्द। सब पाछे हलधर गोबिन्द॥

श्रीशुकदेव जी बोले कि—पृथ्वीनाथ ! एकाएकी श्रीकृष्णचन्द्र का चलना सुन सब ब्रज की गोपियाँ अति घबराय व्याकुल

हो घर छोड़ हड़बड़ाय उठ धाईं और कुढ़ती झुकती गिरती पड़ती वहाँ आईं; जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र का रथ था, आते ही रथ के चारों ओर खड़ी हो हाथ जोड़ विनती कर कहने लगीं—हमें किस लिये छोड़ते हो ब्रजनाथ! सर्वस्व दिया तुम्हारे हाथ। साधु की तो प्रीति कभी घटती नहीं, कर की सी रेखा सदा रहती है, और मूढ़ की प्रीति नहीं ठहरती है, जैसे बालू की भीति; ऐसा तुम्हारा क्या अपराध किया है? जो हमें पीठ दिये जाते हो। यों श्रीकृष्णचन्द्र को सुनाय फिर गोपियाँ अक्रूर की ओर देख बोलीं :—

चौ० यह अक्रूर क्रूर है भारी। जानी कछू न पीर हमारी॥
जा बिन छण सब होत अनाथ। तेहि ले चले आपने साथ॥
कपटी क्रूर कठिन मन भयेा। वृथा अक्रूर नाम किन दियेा॥
हे अक्रूर कुटिल मति हीन। क्यों दाहत अबला आधीन॥

ऐसी कड़ी कड़ी बातें सुनाय सोच संकोच छोड़ हरि का रथ पकड़ आपस में कहने लगीं—मथुरा की नारियाँ अति चंचल चतुर रूप गुण भरी हैं। उनसे प्रीति कर गुण और रस के बश हो वहाँ ही रहेंगे बिहारी. तब काहे को करेंगे सुरति हमारी; उन्हीं के बड़े भाग हैं जो प्रीतम संग रहेंगी, हमारे जप तप करने में क्या ऐसी चूक पड़ी थी जिससे श्रीकृष्णचन्द्र बिछुड़ते हैं। यों आपस में कह फिर हरि से कहने लगीं कि तुम्हारा तो नाम है गोपीनाथ, किसलिये नहीं ले चलते हमें अपने साथ।

चौ० तुम बिन छण छण कैसे कटे। पलक ओट भय छाती फटै।
हित लगाय क्यों करत बिछोह। निठुर निर्दयी धरत न मोह॥
ऐसे तहाँ जपैं सुन्दरी। सोचैं दुःख समुद्र में तरी॥
चाहि रहीं इकटक हरि ओर। ठगी मृगी सी चन्द्र चकोर॥
परहिं नयन से आँसू टूट। रहीं बिथुर लट मुख पर छूट॥

श्रीशुकदेव मुनि बोले—राजा ! उस समय गोपियों की तो यह दशा थी, जो मैंने कही। और यशोदा रानी ममता कर पुत्र को कण्ठ लगाय रो रो अति प्यार से कहती थी कि बेटा जै दिन में तुम वहाँ से फिर आओ तै दिन के लिये कलेऊ ले जाओ। तहाँ जाय किसी से प्रीति मत कीजो, वेग आय अपनी जननी को दर्शन दीजो इतनी बात सुन श्रीकृष्ण रथ से उतर सब को समझाय बुझाय माँ से बिदा होय दण्डवत कर अशीश ले फिर रथ पर चढ़ चले, तिस काल इधर से तो गोपियों समेत यशोदा जी अति अकुलाय रो रो कृष्ण कृष्ण कर पुकारती थीं और उधर से श्रीकृष्ण रथ पर खड़े पुकार पुकार कहते जाते थे कि तुम घर जाओ, किसी बात की चिन्ता मत करो, हम पाँच चार दिन में हो, फिर कर आते हैं।

ऐसे कहते कहते और देखते देखते जब रथ दूर निकल गया, और धूलि आकाश तक छाई तिस में रथ की ध्वजा भी न दिखाई दी। तब निराश हो एक बेर तो सब की सब नीर बिन मीन की भाँति तड़फड़ाय मूर्छा खाय गिरीं। पीछे कितनी एक बेर में चेत कर उठीं, और अवधि की आशा मन में धर धैर्य कर, इधर यशोदा जी तो सब गोपियों को ले वृन्दाबन को गईं और उधर श्रीकृष्णचन्द्र सब समेत चले चले यमुना तीर आ पहुँचे। तहाँ ग्वाल बालों ने जल पिया और हरि ने भी एक बड़ की छाँह में रथ खड़ा किया। जब अक्रूर जी नहाने का विचार कर रथ से उतरे तब कृष्णचन्द्र ने नन्दराय से कहा कि आप सब ग्वाल बालों को ले आगे चलिये, चचा अक्रूर स्नान कर लें तो पीछे से हम भी आमिलते हैं।

यह सुन सब को ले नन्द जी आगे बढ़े और अक्रूर जी कपड़े खोल हाथ पाँव धोय आचमन कर तीर पर जाय नीर में

पैठ डुबकी ले पूजा, तर्पण, जप, ध्यान कर, फिर डुबकी मार आँख खोल जल में देखैं तो वहाँ रथ समेत श्रीकृष्ण दृष्टि आये।

चौ० पुनि उन देख्यो शीश उठाय। तिहिठाँ बैठे हैं यदुराय॥
करैं अचम्भो हिये विचारि। वे रथ ऊपर दूरि मुरारि॥
बैठे दोऊ बड़ की छाँह। तिनहीं को देखौं जल माँह॥
बाहर भीतर भेद न लहौं। साँचो रूप कौन को कहौं॥

महाराज! अक्रूर जी तो एक ही मूर्त्ति बाहर भीतर देख देख सोचते थे, कि इस बीच पहले तो श्रीकृष्णचन्द्र जी ने चतुर्भुज हो शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण कर सुर, मुनि, किन्नर, गन्धर्व आदि सब भक्तों समेत जल में दर्शन दिया और पीछे शेषशायी हो तो अक्रूर देख और भी भूल रहा।

४१—अक्रूर-स्तुति करण

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! पानी में खड़े खड़े अक्रूर को कितनी एक बेर में प्रभु का ध्यान करने से ज्ञान हुआ तो हाथ जोड़ प्रणाम कर कहने लगा कि, कर्त्ता हर्त्ता तुम्हीं हो भगवन्त! भक्तों के हेतु संसार में आय धरते हो भेष अनन्त; और सुर, नर, मुनि तुम्हारे अंश हैं। तुम्हीं से प्रकट हो तुम्हीं में ऐसे समाते हैं जैसे जल सागर से निकल सागर में समाता है। तुम्हारी महिमा है अनूप, कौन कह सके सदा रहते हो विराट स्वरूप, शिर स्वर्ग, पृथ्वी पाँव, समुद्र पेट, नाभि आकाश, बादल केश, वृक्ष रोम, अग्नि मुख, दशो दिशा कान, नयन चन्द्र और भानु, इन्द्र भुजा, बुद्धि ब्रह्मा, अहंकार रुद्र, गरजन बचन, प्राण पवन, जल वीर्य, पलक लगाना रात दिन, इस रूप से सदा बिरा-

जते हो, तुम्हें कौन पहिचान सके। इस भाँति स्तुति कर अक्रूर ने प्रभु के चरण का ध्यान धर कहा—कृपानाथ! मुझे अपनी शरण में रक्खो।

४२—मथुरापुरी-प्रवेश

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! जब श्रीकृष्णचन्द्र ने नट माया की भाँति जल में अनेक रूप दिखाय हर लिये, तब अक्रूर जी ने नीर से निकल तीर पर आ हरि को प्रणाम किया तिस काल नन्दलाल ने अक्रूर से पूँछा कि कका शीत समय जल के बीच इतनी बेर क्यों लगी? हमें यह अति चिन्ता थी तुम्हारी, कि चचा ने किस लिये बाट चलने की सुधि बिसारी, क्या कुछ अचरज तो जाकर नहीं देखा, यह समझाय के कहो जो हमारे मन की दुबिधा जाय।

चौ० सुनि अक्रूर कह जोरे हाथ। तुम सब जानत हौ ब्रजनाथ॥
भली दरश दीनों जल माँहीं। कृष्ण चरित को अजरज नाहीं॥
मोहिं भरोसो भयो तिहारो। बेग नाथ मथुरा पग धारो॥

अब यहाँ विलम्ब न करिये शीघ्र चल कार्य कीजै, इतनी बात के सुनते ही हरि झट रथ पर बैठ अक्रूर को साथ ले चल खड़े हुए, और नन्द आदि जो सब गोप ग्वाल आगे गये थे इन्होंने जाय मथुरा के बाहर डेरे किये। और कृष्ण बलदेव की बाट देख देख अति चिन्ता कर आपस में कहने लगे, इतनी अबेर न्हाते क्यों लगी और किसलिये अब तक नहीं आये हरी? कि इस बीच चले चले आनन्द कन्द श्रीकृष्णचन्द्र जाय मिले। उस समय हाथ जोड़ शिर झुकाय बिनती कर अक्रूर जी बोले कि ब्रजराज अब

चल के मेरा घर पवित्र कीजै और अपने भक्तों का दर्श दिखाय सुख दीजै, इतनी बात सुनते ही हरि ने अक्रूर से कहा :—

चौ० पहिले सोध कंस को देहु। तब अपनो दिखराघो गेहु।
सब की बिनती कहो जु जाय। सुनि अक्रूर चले शिरनाय॥

चले चले कितनी एक बेर में रथ से उतर कर वहाँ पहुँचे जहाँ कंस सभा किये बैठा था। इनको देखते ही सिंहासन से उठ नीचे आय अति हित कर मिला, और बड़े आदर मान से हाथ पकड़ ले जाय सिंहासन पर अपने पास बैठाय इनकी कुशल क्षेम पूँछ बोला, जहाँ गये थे वहाँ की बात कहो।

चौ० सुन अक्रूर कह्यो समझाय। ब्रज की महिमा कही न जाय॥
कहा नन्द की करौं बड़ाई। बात तुम्हारी शीश चढ़ाई॥
राम कृष्ण दोऊ हैं आये। भेंट सबै ब्रजबासी लाये॥
डेरा किये नदी के तीर। उतरे गाड़ा भारी भीर॥

यह सुन कंस प्रसन्न हो बोला—अक्रूर तुमने आज हमारा बड़ा काज किया जो रामकृष्ण को ले आये, अब घर जाय बिश्राम करो।

इतनी कथा कह शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! कंस की आज्ञा पाय अक्रूर जी तो अपने घर गये, और वह सोच बिचार करने लगा। और जहाँ नन्द उपनन्द बैठे थे, तहाँ उनसे हलधर और गोविन्द ने पूँछा, जो हम आप की आज्ञा पावें तो नगर देख आवें। यह सुन पहिले तो नन्दराय जी ने कुछ खाने को मिठाई निकाल दी, उन दोनों भाइयों ने मिलकर खाय ली। पीछे बोले अच्छा जाओ देख आओ, पर बिलम्ब मत कीजो।

इतना बचन नन्द महर के मुख से निकलते ही आनन्द कर दोनों भाई अपने ग्वाल बाल सखाओं को साथ ले, नगर देखने

चले। आगे बढ़ देखें तो नगर के बाहर चारों ओर बन उपबन फूल फल रहे हैं, तिन पर पक्षी बैठे अनेक अनेक भाँति की मन भावन बोलियाँ बोलते हैं। और बड़े बड़े सरोवर निर्मल जल से भरे हैं, उसमें कमल खिले हुए जिन पर भौंरों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे, और तीर में हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे, शीतल सुगन्ध सनी मन्द पवन बह रही, और बड़ी बड़ी बाड़ियों की बाड़ों पर पनवाड़ियाँ लगी हुईं, बीच बीच वर्ण वर्ण की फूलों की क्यारियाँ कोसों तक फूली हुई, ठौर ठौर इन्दारों बावड़ियों पर रहट हरोहे चल रहे, माली मीठे मीठे स्वरों से गाय गाय जल सींच रहे हैं।

यह शोभा बन उपबन की निरख हर्ष प्रभु सब समेत मथुरापुरी में पैठे, वह पुरी कैसी है कि जिसके चारों ओर ताँबे की कोट और पक्की चुआँन चौड़ी खाईं, स्फटिक के चार फाटक तिन में अष्टधाती किवाड़ कञ्चन खचित लगे हुए और नगर में वर्ण वर्ण के राते, पीते, हरे, धोले पचखने, सतखने, मन्दिर ऊँचे ऐसे कि घटा से बातें कर रहे। जिनके सोने के कलश कलशियों की ज्योति बिजली सी चमक रही, ध्वजा पताका फहराय रही, जाली झरोखों मोखों से धूप की सुगन्ध आय रही। द्वार द्वार पर केले के खम्भ और सुवर्ण के कलश सपल्लव धरे हुए, तोरण बन्दनवार बँधी हुई, घर घर बाजन बाज रहे और एक ओर भाँति भाँति के मणिमय कञ्चन के मन्दिर राजा के न्यारे ही जगमगाय रहे। तिनकी शोभा कुछ बरणी नहीं जाती ऐसी जो सुन्दर सुहावनी मथुरापुरी, तिसे श्रीकृष्ण बलदेव ग्वालबालों को साथ लिये देखने चले।

दो० परी धूम मथुरा नगर, आवत नन्द-कुमार।
सुन धाये पुर लोग सब, गृह को काज बिसार॥

चौ० और जो मथुरा की सुन्दरीं। सुनत कान अति आतुर खरी॥
कहैं परस्पर बचन उचारी। आवत हैं बल भद्र मुरारी॥
तिन्हें अक्रूर गये हैं लेन। चलहु सखी अब देखिय नेन॥
कोऊ खात नहात ते भजैं। गुहत शीश कोऊ उठि तजैं॥
काम केलि पिय की बिसरावैं। उलटे भूषण बसन बनावैं॥
जैसे ही तैसे उठि धाईं। कृष्ण दरश देखन को आईं॥

सो० लाज कान डर डार, कोऊ खिरकिन कोउ अटन।
कोऊ खड़ी दुआर, कोउ दौरी गलियन फिरत॥

ऐसे जहाँ तहाँ खड़ि नारी। प्रभुहिं बतावें बाँह पसारी॥
नील बरन गोरे बलराम। पीताम्बर ओढ़े घनश्याम॥
ये भानजे कंस के दोऊ। इनते असुर बच्यो नहिं कोऊ॥
सुनत हती पुरुषारथ जिनको। देखो रूप नयन भरि तिनको॥
पूरब जन्म सुकृत कछु कीनो। सो बिधि पद-दर्शन फल दीनो॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—महाराज! इसी रीति से सब पुरबासी क्या स्त्री क्या पुरुष अनेक अनेक प्रकार की बातें कह कह दर्शन कर मग्न होते थे। और जिस हाट बाट चौहट्टे में हो सब समेत कृष्ण बलराम निकलते थे, तहीं अपने कोठों पर खड़े इन पर चोवा चन्दन छिड़क छिड़क आनन्द से वे फूल बर्षाते थे। और ये नगर की शोभा देख देख ग्वालबालों से यों कहते जाते थे, भैया! कोई भूलियो मत और जो कोई भूलै तो पिछले डेरों पर जाइयो। इसमें कितनी एक दूर जाय के देखते क्या हैं कि कंस के धोबी धोये कपड़ों की लादियाँ लादे पोटें मोटें लिये, मद पिये, रंग राते, कंस यश गाते, नगर के बाहर से चले आते हैं। उन्हें देख कृष्णचन्द्र ने बलदेव जी से कहा कि—भैया! इनके सब चीर छीन लो और आप लीजिये

पहिर, ग्वालबालों को पहिराय बचे सो लुटाय दीजिए। भाई को यों सुनाय सब समेत धोबियों के पास जाय हरि बोले :—

चौ० हमको उज्ज्वल कपड़ा देहु। राजहिं मिलि आवैं फिर लेहु॥
जो पहिरावनि नृप सों पैहैं। तामें ते कुछ तुमको दैहैं॥

इतनी बात के सुनते ही उनमें से जो बड़ा धोबी था सो हँस कर कहने लगा :—

सो० राखैं खरी बनाय, ह्वै आवौ नृप द्वार लौं।
तब लीजा पट आय, जो चाहो सो दीजियो॥

चौपाई

बन बन फिरत चरावत गैया। जात अहिर कामरी उढ़ैया॥
नट को भेष बनाये आये। नृप अम्बर पहिरन मन भाये॥
जुरि के चले नृपति के पास। पहिरावन लेवे की आस॥

यह बात धोबी की सुन कर हरि ने फिर मुसकराय कहा—हम तो सूधी चाल से माँगते हैं, तुम उलटी क्यों समझते हौ। कपड़े देने से कुछ तुम्हारा न बिगड़ेगा वरन् यश लाभ होगा। यह वचन सुन रजक झुँझलाय कर बोला—राजा के बागे पहिरने का मुँह तो देखो, अरे आगे से जा, नहीं अभी मार डालता हूँ। इतनी बात के सुनते ही क्रोध कर श्रीकृष्णचन्द्र ने तिरछा कर एक हाथ मारा कि उसका शिर भुट्टा सा उड़ गया। तब जितने उसके साथी और टहलुए थे, सब के सब पोटें मोटें लादियाँ छोड़ अपना जीव ले भागे और कंस के पास जा पुकारे। वहाँ श्रीकृष्ण जी ने सब कपड़े ले लिये, और आप पहिन भाई को पहनाय ग्वालबालों को बाँट बचे सो लुटाय दिये। जिस समय ग्वालबाल अति प्रसन्न हो हो लगे उलटे पुलटे बस्त्र पहिरने।

दो० कटि कस पग पहिरे झँगा, सूथन मेले बाँह।
बसन भेद जाने नहीं, हँसत कृष्ण मन माँह॥

जो वहाँ से आगे बढ़े तो एक सूची ने आय दण्डवत् कर खड़े होय कर जोड़ कर कहा—महाराज! मैं कहने को तो कंस का सेवक कहलाता हूँ, पर मन में सदा आप ही का गुण गाता हूँ, दया कर कहो तो बागे पहराऊँ जिससे तुम्हारा दास कहाऊँ।

इतनी बात उसके मुख से निकलते ही अन्तर्यामी श्रीकृष्ण ने उसे अपना भक्त जान निकट बुलाय के कहा, तू भले समय आया, अच्छा पहराय दे। तब तो उसने झटपट ही खोल उधेड़ कतर छाँट सी कर ठीक ठाक बनाय चुन चुन रामकृष्ण समेत सब को बागे पहिराय दिये। उस काल नन्दलाल उसे भक्ति दे साथ ले आगे चले।

चौ० तहाँ सुदामा माली आयो। आदर कर अपने घर लायो॥
सब ही को माला पहिराई। माली के घर भई बधाई॥

४३—कंस-स्वप्नदर्शन

श्रीशुकदेव जी बोले कि—पृथ्वीनाथ! माली की लगन देख मगन हो श्रीकृष्णचन्द्र उसे भक्ति पदार्थ दे वहाँ से आगे जाय देखें तो, सोही गली में एक कुबड़ी केशर चन्दन से कटोरियाँ भरे थाली के बीच धरे हाथ में लिये खड़ी है। उससे हरि ने पूँछा तू कौन है? और यह कहाँ ले चली है। वह बोली—दीनदयाल मैं कंस की दासी हूँ। मेरा नाम है कुबड़ी नित

चन्दन घिस कंसको लगाती हूँ, और मन से तुम्हारे गुण गाती हूँ, तिसी के प्रताप से आज आपका दर्शन पाय जन्म स्वार्थ किया और नयनों का फल लिया, अब दासी का मनोर्थ यह है जेा प्रभु की आज्ञा पाऊँ, तेा चन्दन अपने हाथों चढ़ाऊँ।

उसकी अति भक्ति देख हरि ने कहा—जेा तेरी इसी में प्रसन्नता है तेा लगाव। इतना बचन सुनते ही कुब्जा बड़े चाव भाव से चित्त लगाय, जब रामकृष्ण को चंदन चरचा, तब कृष्णचन्द्र ने उसके मन की लगन देख दया कर पाँव पर पाँव धर दे। उङ्गली ठोढ़ी के तले लगाय उचकाय उसे सीधा किया। हरि का हाथ लगते ही वह महा सुन्दरी हुई, और निपट विनती कर प्रभु से कहने लगी कि, कृपानाथ! जैसे आपने कृपा कर इस दासी की देह सूधी की, तैसे ही दया कर अब चल के घर पवित्र कीजै, और विश्राम ले दासी को सुख दीजै। यह सुन हरि उसका हाथ पकड़ मुस्कराय के कहने लगे :—

चौ० तैं श्रम दूर हमारेा कियो। मिलके शीतल चन्दन दियेा॥
रूपशील गुण सुन्दर नीकी। तोसों प्रीति निरन्तर जी की॥
आय मिलौंगेा कंसहि मारि। यों कह आगे चले मुरारि॥

और कुब्जा अपने घर जाय केशर चन्दन से चौक पुराय हरि के मिलने की आशा मन में रख, मंगलाचार करने लगी।

चौ० आय तहाँ मथुरा की नारि। करैं अचम्भौ कहैं निहारि॥
धनि धनि कुब्जा तेरो भाग। जाको विधना दियो सुहाग॥
ऐसो कहा कठिन तप कियो। गोपीनाथ भेंट भुज लियो॥
हम नीके नहिं देखे हरी। तोकों मिले प्रीति अति करी॥
ऐसे तहाँ कहैं सब नारी। मथुरा देखत फिरैं मुरारी॥

इस बीच नगर देखते देखते सब समेत प्रभु धनुष पौर पर जा पहुँचे। इन्हें अपने रंगराते माते जाते देखते ही, पौरिये रिसाय के बोले—इधर किधर चले आते हो गँवार, दूर खड़े रहो, यह है राजद्वार। द्वारपालों की बात सुनी अनसुनी कर हरि सब समेत दर्राने वहाँ चले गये, जहाँ तीन ताड़ लम्बा अति मोटा भारी महादेव का धनुष धरा था। जाते ही झट उठाय चढ़ाय सहज स्वभाव ही खैंच यों तोड़ डाला कि ज्यों हाथी गाँडा तोड़ता है।

इसमें सब रखवाले जो कंस को बैठाये धनुष की चौकी देते थे चढ़ आये, प्रभु ने उन्हें मार भी गिराया। तिस समय पुरबासी तो यह चरित्र देख बिचार कर निश्शंक हो, आपस में यों कहने लगे कि, देखो राजा ने घर बैठे अपनी मृत्यु आप बुलाई है। इन दोनों भाइयों के हाथ से अब जीता बचेगा नहीं, और धनुष टूटने का अति शब्द सुन कंस भय खाय अपने लोगों से पूँछने लगा कि यह महाशब्द काहे का हुआ। इस बीच कितने एक लोग राजा के जो दूर खड़े देखते थे मूड़ फिकार यों जा पुकारे कि महाराज की दुहाई! रामकृष्ण ने आय नगरी में बड़ी धूम मचाई, शिव का धनुष तोड़ सब रखवालों को मार डाला।

इतनी बात के सुनते ही कंस ने बहुत से योद्धाओं को बुला के कहा—तुम इनके साथ जाओ और कृष्ण बलदेव को छल बल कर अभी मार आओ। इतना बचन कंस के मुख से निकलते ही, ये अपने अपने अस्त्र शस्त्र ले वहाँ गये जहाँ वे दोनों भाई खड़े थे, इन्होंने जो ललकारा तो उन्होंने इन सब को भी आय मार डाला; जब हरि ने देखा कि यहाँ कंस का सेवक अब कोई नहीं रहा तब बलराम जी से कहा कि, भाई! हमें आये बड़ी बेर हुई डेरों पै चला चाहिये, क्योंकि बाबा नन्द हमारी बाट देख देख भावना करते होयँगे। यों कह सब ग्वालबालों को साथ

ले प्रभु बलराम समेत चलकर वहाँ आये जहाँ डेरे पड़े थे, आते ही नन्दमहर से तो कहा कि पिता हम नगर में जाय भला कुतूहल देख आये, और गोप ग्वालों को अपने बागे दिलवा लाये।

चौ० तहँ लखि नन्द कहैं समुझाय। कान्ह तुम्हारी टेव न जाय॥
ब्रज-बन नहीं हमारो गाँव। यह है कंस राय को ठाँव॥
यहँ जनि कछू उपद्रव करो। मेरी सीख पूत मन धरो॥

जब नन्दराय जी ऐसे समुझाय चुके तब नन्दलाल बड़े लाड़ से बोले कि पिता भूख लगी है, जो हमारी माता ने खाने को साथ कर दिया है सो दीजिये। इतनी बात के सुनते ही उन्होंने जो पदार्थ खाने का साथ आया सो निकाल दिया। कृष्ण बलदेव ने ले ग्वालबालों के साथ मिल कर खा लिया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज! इधर तो ये आय परमानन्द से ब्यालू कर सोये, और उधर श्रीकृष्ण की बातें सुन सुन कंस के चित्त में अति चिन्ता हुई, तो न उसे बैठे चैन था न खड़े, मन ही मन कुढ़ता था, अपनी पीर किसी से न कहता था, कहा है :—

दो० ज्यों काठहि घुन खात है, कोउ न जाने पीर।
त्यों चिन्ता चित में भये, बुधि-बल घटत शरीर॥

निदान अति घबराय तब मन्दिर में जाय सेज पर सोया, पर उसे मारे डर के नींद न आई।

चौ० तीन पहर निशि जागत गई। लागी पलक नींद क्षण भई॥
तब सपनो देख्यो मन माहिं। फिरै शीश बिन धड़ की छाहिं॥
कबहुँ नग्न रेत में न्हाय। धावै गदहा चढ़ विष खाय॥
बसे मसान भूत संग लिये। रक्त फूल की माला हिये॥
बरत रूख देखे चहुँ ओर। तिन पर बैठे बालकिशोर॥

महाराज ! जब कंस ने ऐसा स्वप्न देखा तब तो वह अति व्याकुल हो चौंक पड़ा, और सोच विचार करता उठ कर बाहर आया और अपने मंत्रियों को बुलाय बोला—तुम अभी जाओ रंगभूमि को जड़वाय छिड़कवाय सँवारो, और नन्द उपनन्द समेत सब वृजबासियों को और बसुदेव आदि यदुवंशियों को रंगभूमि में बुलाय बिठाओ। और सब देश देश के जो राजे आये हैं तिन्हें भी, इतने में मैं भी आता हूँ।

कंस की आज्ञा पाय मंत्री रंगभूमि में आये, उसे झड़वाय छिड़कवाय तहाँ पाटम्बर छाय बिछाय ध्वजा, पताका, तोरण, वन्दनवार बँधवाय, अनेक अनेक भाँति के बाजे बजवाय, सबको बुलाय भेजा, वे आये, और अपने अपने मंच पर जाय जाय बैठे। इसी बीच राजा कंस भी अति अभिमान भरा अपने मचान पर आय बैठा। उस काल देवता विमानों में बैठे आकाश से देखने लगे।

४४-कुबलया-बध

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—महाराज ! भोर ही जब नन्द उपनन्द सब बड़े बड़े गोप रंगभूमि की सभा में गये, तब श्रीकृष्ण-चन्द्र जी ने बलदेव जी से कहा कि भाई ! सब गोप आय गये, अब विलम्ब न करिये, शीघ्र ग्वालबाल सखाओं को साथ ले रंगभूमि देखने चलिये।

इतनी बात के सुनते ही बलराम जी उठ खड़े हुए, और सब ग्वालबाल सखाओं से कहा कि भाइयो ! चलो, रंगभूमि की रचना देख आवें। यह बचन सुनते ही तुरन्त सब साथ हो

लिये, निदान श्रीकृष्ण बलराम नटवर वेष किये, ग्वालबाल सखाओं को साथ लिये, चले चले रंगभूमि की पौर पर आय खड़े हुए। जहाँ दश सहस्र हाथियों का बल वाला गज कुबलयापीड़ खड़ा झूमता था।

चौ० देखि मतंग द्वार मतवारो। गजपालहिं बलराम पुकारो॥
सुनों महावत बात हमारी। लेहु द्वार तें गज तुम टारी॥
जान देहु हम को नृप पास। नातरु ह्वै है गज को नास॥
कहे देत नहिं दोष हमारो। मत जानै हरि को तू बारो॥

ये त्रिभुवनपति हैं, दुष्टों को मार भूमि का भार उतारने को आये हैं, यह सुन महावत क्रोध कर बोला—मैं जनता हूँ, गौ चराय के त्रिभुवनपति भये हैं, इसी से यहाँ आय बड़े शूर की भाँति अड़े खड़े हैं। धनुष का तोड़ना न समझियो, मेरा हाथी दस सहस्र हाथियों का बल रखता है जब तक इससे न लड़ोगे तब तक भीतर न जाने पाओगे, तुमने तो बहुत बली मारे हैं, पर आज इसके हाथ से बचोगे, तब मैं जानूँगा कि तुम बड़े बली हो।

दो० तबहिं कोपि हलधर कह्यो, सुन रे मूढ़ कुजात;
गज समेत पटकों अबहिं, मुख सँभार कहु बात॥
सो० नेकु न लगि है बार, हाथी मरि जैहे अबहिं।
तोसों कहत पुकार, अबहुँ मान मोरो कह्यो॥

इतनी बात के सुनते ही झुँझला कर गजपाल ने गज पेला ज्यों वह बलदेव जी पर टूटा, त्यों इन्होंने हाथ घुमाय एक थपेड़ा ऐसा मारा कि वह सूँड़ सिकोड़ चिंघार मार पीछे हटा। यह चरित्र देख कंस के बड़े बड़े योद्धा जो खड़े देखते थे सो अपने जी में यों हार मान मन ही मन कहने लगे कि इन महा बलवानों से कौन जीत सकेगा, और महावत भी हाथी को

पीछे हटा जान अति भय मान जी में बिचार करने लगा कि जो यह बालक न मारे जायँ तो कंस भी मुझे जीता न छोड़ेगा। यों सोच समझ उसने फिर अंकुश मार हाथी को तत्ता किया और इन दोनों भाइयों पर हूल दिया, उसने आते ही सूँड़ से हरि को पटक पछाड़ खुनसाय ज्यों दाँतों से दबाया, त्यों प्रभु सूक्ष्म शरीर बनाय दाँतों के बीच बच रहे।

दो० डरपि उठे तिहि काल सब, सुर मुनि पुर नर नारि।
दुहूँ दशन बिच ह्वै कढ़े, बल निधि प्रभु दै तारि॥

सो० उठे गजहिं के साथ, बहुरि ख्याल हो हाँक दे।
तुरतहि भये सनाथ, देखि चरित सब श्याम के॥

चौपाई

हाँक सुनत अति कोप बढ़ायो। झटकि सूँड़ बहुरों गज धायो॥
रहे उदर तर दबकि मुरारी। गयो जान गज रह्यो निहारी॥
पाछे प्रकट फेर हरि टेरो। बलदाऊ आगे तें घेरो॥
लागे गजहिं खिलावन दोऊ। भौचक रहे देख सब कोऊ॥

महाराज! उसे कभी बलराम सूँड़ पकड़ खैंचते थे कभी श्याम पूँछ पकड़, और जब वह इन्हें पकड़ने को आता था, तब ये अलग हो जाते थे। कितनी एक बेर ताईं उससे ऐसे खेलते रहे जैसे बछड़ों के साथ बालपन में खेलते थे। निदान हरि ने पूँछ पकड़ फिराय उसे दे पटका और मारे घूँसों के मार डाला, दाँत उखाड़ लिये, तब उसके मुँह से लोहू नदी की भाँति बह निकला। हाथी के मरते ही महावत ललकार कर आया प्रभु ने उसे भी हाथी के पाँव तले झट मार गिराया, और हँसते हँसते दोनों भाई नटवर भेष किये एक एक दाँत हाथी का हाथ में लिये, रंगभूमि के बीच जा खड़े हुए। उस काल नन्द-लाल को जिन जिन ने जिस जिस भाव से देखा, उस उस को

उसी उसी भाव से दृष्टि आये। मल्लों ने मल्ल माना, राजाओं ने राजा जाना, देवताओं ने अपना प्रभु बूझा, ग्वालबालों ने सखा, नन्द उपनन्द ने बालक समझा, और पुर की युवतियों ने रूप-निधान, और कंसादिक राक्षसों ने काल समान देखा। महाराज! इनको निहारते ही कंस अति भयमान हो पुकारा, अरे मल्लो! इन्हें पछाड़ मारो, मेरे आगे से टालो।

इतनी बात ज्यो कंस के मुँह से निकली त्यों सब मल्ल गुरु सुत चेले संग लिये, बर्ण बर्ण के भेष किये, ताल ठोंक ठोंक भिड़ने को श्रीकृष्ण बलराम के चारों ओर घिर आये। जैसे वे आये तैसे ये भी सँभल खड़े हुए, तब उनमें से इनकी ओर देख चतुराई कर चाणूर बोला--सुनो आज हमारे राजा कुछ उदास हैं, इससे जी बहलाने को तुम्हारा युद्ध देखा चाहते हैं, क्योंकि तुम ने बन में रह सब विद्या सीखी है और किसी बात का मन में सोच न कीजै, हमारे साथ मल्ल युद्ध कर अपने राजा को सुख दीजै। श्रीकृष्ण बोले—राजा जी ने बड़ी दया कर हमें बुलाया है। आज हम से क्या सरेगा इनका काज, तुम अति बली गुणवान, हम बालक अजान, तुम से हाथ कैसे मिलावैं। कहा है व्याह बैर और प्रीति समान से कीजै, पर राजा जी से कुछ हमारा वश नहीं चलता, इससे तुम्हारा कहा मानते हैं। हमें बचा लीजो, बलकर पटक न दीजो। अब हमें तुम्हें उचित है जिसमें धर्म रहै सेा कीजिये, और मिलकर अपने राजा केा सुख दीजिये।

चौ० तब चाणूर कहै भय खाय। तुम्हरी गति जानी नहिं जाय॥
तुम बालक मानुष नहिं दोऊ। कीन्हें कपट बली है कोऊ॥
खेलते धनुष खण्ड ह्वै करे। मारे तुरत कुबलया तरे॥
तुम से लरे हानि नहिं होय। या बातैं जानैं सब कोय॥

४५—कंसासुर-बध

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि, पृथ्वीनाथ ! कितनी एक बातैं कर ताल ठोक चाणूर तो श्रीकृष्ण के सोहीं हुआ। और मुष्टिक बलराम जी से भिड़ा, उनसे इनसे मल्ल युद्ध होने लगा।

दो० शिर सों शिर भुज सेा भुजा, दृष्टि दृष्टि सों जेारि।
चरण चरण गहि झपटि कै, लपटत झपट झकोरि॥

उस काल सब लोग इन्हें उन्हें देख देख आपस में कहने लगे कि, भाइयो ! इस सभा में अति अनीति होती है। देखो कहाँ ये बालक रूपनिधान, कहाँ है सबल मल्ल वज्र समान, जो बरजें तो कंस रिसाय, न बरजें तो धर्म जाय; इससे अब यहाँ रहना उचित नहीं क्योंकि हमारा कुछ वश नहीं चलता।

महाराज ! इधर तो ये सब लोग यों कहते थे, और उधर श्रीकृष्ण बलराम मल्लों से मल्ल युद्ध करते थे, निदान इन दोनों भाइयों ने उन दोनों मल्लों को पछाड़ मारा, उनके मरते ही सब मल्ल टूटे, प्रभु ने पल भर में तिन्हें भी मार गिराया। तिस समय हरिभक्त तो प्रसन्न हो बाजन बजाय जय जय-कार करने लगे, और देवता आकाश में अपने विमानों में बैठे कृष्ण यश गाय गाय फूल बर्षाने लगे, और कंस अति दुःख पाय व्याकुल हेा रिसाय अपने लोगों से कहने लगा—अरे बाजे वाले ! बाजे बजाते हेा, तुम्हें क्या कृष्ण की जीत भाती है ?

यों कह बोला ये दोनों बालक बड़े चञ्चल हैं, इन्हें पकड़ बाँध सभा से बाहर ले जाओ, और देवकी समेत उग्रसेन वसुदेव कपटी को पकड़ लाओ। पहिले उन्हें मार पीछे इन दोनों को भी मार डालो। इतना बचन कंस के मुख से निकलते ही भक्तों

के हितकारी मुरारी सब असुरों को क्षण भर में मार, उछल के वहाँ जा चढ़े, जहाँ अति ऊँचे मञ्च पर झिलम पहने टोप दिये, फरी खाँड़ा लिये बड़े अभिमान से कंस बैठा था। वह इनको काल समान निकट देखते ही भय खाय उठ खड़ा हुआ, और लगा थर थर काँपने।

मन से तो चाहा कि भागूँ पर मारे लाज के भाग न सका, फरी खाँड़ा सँभाल लगा चोट करने। उस काल नन्दलाल अपनी घात लगाये उसकी चोट बचाते थे। सुर नर मुनि और गंधर्व यह महा युद्ध देख देख भयमान हो यों पुकारते थे, हे नाथ! हे नाथ! इस दुष्ट को बेग मारो। कितनी एक बेर तक मञ्च पर युद्ध रहा, निदान प्रभु ने सब को दुखित जान उसके केश पकड़ मञ्चसे नीचे पटका, और ऊपर से आप भी कूदे कि उसका जीव घट से निकल सटका। तब सब सभा के लोग पुकारे श्रीकृष्णचन्द्र ने कंस को मारा, यह शब्द सुन सुर मुनि सब को अति आनन्द हुआ।

दो० करि स्तुति पुनि हरष सब, बरष सुमन सुर वृन्द।
मुदित बजावत दुन्दभी, कहि जय जय नँद नन्द॥

सो० मथुरा पुर नर नारि, अति प्रफुल्ल सब को हियेा।
मनहुँ कुमुद बन चारि, बिकसित हरि मुख शशि निरखि॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि धर्मावतार! कंस के मरते ही जो अति बलवान आठ भाई उसके थे। सेा लड़ने को चढ़ आये, प्रभु ने उन्हें भी मार गिराया। जब हरि ने देखा कि अब यहाँ राक्षस कोई नहीं रहा। तब कंस की लोथ को घसीट यमुना तीर पर ले आये और दोनों भाइयों ने बैठ विश्राम किया। तिस दिन से उस ठौर का नाम विश्राम-घाट हुआ।

आगे कंस का मरना सुन कंस की रानियाँ देवरानियों समेत अति व्याकुल हो रोती पीटती वहाँ आईं, जहाँ यमुना के तीर दोनों वीर मृतक लिये बैठे थे, और लगीं अपने पति का मुख निरख निरख सुख सुमिर गुण गाय गाय व्याकुल हो हो पछाड़ खाय खाय गिरने, कि इस बीच करुणानिधान कान्ह करुणा कर उनके निकट जा बोले:—

चौ० मामी सुनहु शोक नहिं कीजै। मामा जी को पानी दीजै॥
सदा न कोऊ जीवत रहै। झूँठो सेा जो अपनेा कहै॥
मात पिता सुत बन्धु न कोई। जन्म मरण फिरही फिर होई॥
जौलौं जो सम्बन्धी रहै। तौही लौं तासों सुख लहै॥

महाराज! जब श्रीकृष्ण ने रानियों को ऐसे समुझाया, तब उन्होंने वहाँ से उठ धीर्य धर यमुना तीर पर आ पति को पानी दिया और आप प्रभु ने अपने हाथ कंस को आग दे उसकी गति की।

४६—शंखासुर-बध

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे राजा! रानियाँ तेा देवरानियों समेत वहाँ से नहाय धोय रोय राजमन्दिर को गईं, और श्रीकृष्ण बलराम बसुदेव देवकी के पास आय, उनके हाथ पाँव की हथकड़ियाँ बेड़ियाँ काट, दण्डवत् कर हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हुए। तिस समय प्रभु का रूप देख बसुदेव देवकी को ज्ञान हुआ, तेा उन्होंने अपने जी में निश्चय कर जाना कि ये दोनों विधाता हैं, असुरों को मार भूमि का भार उतारने को संसार में अवतार ले आये हैं।

जब वसुदेव देवकी ने यों जाना, तब अन्तर्यामी हरि ने अपनी माया फैलाय दी। उसने उनकी यह मति हरि ली। फिर तो उन्होंने इन्हें पुत्रकर समझा कि इतने में श्रीकृष्णचन्द्र अति दीनता कर बोले :—

चौ० तुम बहु दिवस लह्यो दुख भारी। करत रहे अति सुरति हमारी॥

इसमें हमारा कुछ अपराध नहीं क्योंकि जब से आप हमें गोकुल में नन्द के यहाँ रख आये तब से परवश थे, हमारा वश न था, पर मन में सदा यह आता था कि जिसके गर्भ में दस महीने रह जन्म लिया, उसे कभी कुछ सुख न दिया, न हमहीं माता पिता का सुख देखा वृथा जन्म पराये यहाँ खोया। उन्होंने हमारे लिये अति विपत्ति सही हम से कुछ उनकी सेवा न भई, संसार में सामर्थी वेई हैं जो माँ बाप की सेवा करते हैं, हम उनके ऋणी रहे टहल न कर सके।

पृथ्वीनाथ! जब श्रीकृष्ण जी ने अपने मन का खेद यों कह सुनाया, तब अति आनन्द कर उन दोनों ने इन दोनों को हितकर कण्ठ लगाया, और सुखमान पिछला दुःख सब गँवाया। ऐसे माता पिता को सुख दे दोनों भाई वहाँ से चले चले उग्रसेन के पास आये, और हाथ जोड़ कर बोले :—

चौ० नाना जी अब कीजे राज। शुभ नक्षत्र नीको दिन आज॥

इतना हरि के मुख से निकलते ही राजा उग्रसेन उठ कर आ श्रीकृष्णचन्द्र के पाँवों पर गिर कहने लगे कि कृपानाथ! मेरी विनती सुन लीजिये। जैसे आपने सब असुरों समेत कंस महादुष्ट को मार भक्तों को सुख दिया, तैसे ही सिंहासन पै बैठ अब मधुपुरी का राज्य कर प्रजा पालन कीजिये। प्रभु बोले— महाराज! यदुबंशियों को राज्य का अधिकार नहीं, इस बात को

सब कोई जानता है, जब राजा ययाति बूढ़े हुए तब अपने पुत्र यदु को उन्होंने बुलाकर कहा—अपनी तरुण अवस्था मुझे दे, और मेरा बुढ़ापा तू ले। यह सुन उसने अपने जी में बिचारा कि जो मैं पिता को युवा अवस्था दूँगा तो यह तरुण हो भोग करेगा, इससे मुझे पाप होगा, इसमें नहीं करना ही भला है। यों सोच समझ के उसने कहा कि पिता यह तो मुझसे न हो सकेगा। इतनी बात के सुनते ही राजा ययाति ने क्रोध कर शाप दिया कि जा तेरे वंश में राजा कोई न होगा।

इस बीच पुरु नाम उनका छोटा बेटा सन्मुख आ हाथ जोड़ बोला—पिता! अपनी वृद्ध अवस्था मुझे दो और मेरी तरुणाई तुम लो। यह देह किसी काम की नहीं, जो तुम्हारे काम आवै तो इससे उत्तम क्या है, जब पुरु ने यों कहा तब राजा ययाति प्रसन्न हो अपनी वृद्ध अवस्था दे उसकी युवा अवस्था ले बोले—कि तेरे कुल में राजगद्दी रहेगी, इससे नाना जी हम यदुबंशी हैं, हमें राज्य करना उचित नहीं :—

सो० करौ बैठ तुम राज, दूर करो सन्देह सब।
हम करि हैं सब काज, जो आयसु देहौ हमें॥

चौपाई

जो न मानि है आनि तिहारी। ताहि दंड करिहैं हम भारी॥
और कछू चित शोच न कीजै। नीति सहित परजहिं सुख दीजै॥
यादव जिते कंस की त्रास। नगर छाँड़ि कै गये प्रवास॥
तिनको अब करि खोज मँगाओ। सुख दै मथुरा माँझ बसाओ॥
बिप्र धेनु सुर पूजन कीजै। इनकी रक्षा में चित दीजै॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि धर्मावतार! महाराजाधिराज भक्त हितकारी श्रीकृष्णचन्द्र ने उग्रसेन को अपना भक्त जान ऐसे समझाय सिंहासन पर बिठाय राज-तिलक

दिया, और छत्र फिरवाय दोनों भाइयों ने अपने हाथों चमर किया।

उस काल सब नगर के बासी अति आनन्द में मग्न हो धन्य धन्य कहने लगे, और देवता फूल बर्षाने, महाराज ! यों उग्रसेन को राजपाट पर बिठाय दोनों भाई बहुत से बस्त्र आभूषण अपने साथ लिवाय वहाँ से चले चले नन्दराय जी के पास आये, और सन्मुख हाथ जोड़ खड़े हो अति दीनता कर बोले—हम तुम्हारी क्या बड़ाई करें, जो सहस्र जीभ होयँ तो भी तुम्हारे गुण का बखान हम से न हो सके। तुमने हमें अति प्रीति कर अपने पुत्र की भाँति पाला सब लाड़ प्यार किया, और यशोदा मैया भी बड़ा स्नेह करती और अपना हित हम ही पर रखती सदा निज पुत्र समान जानती, कभी मन से भी हमें पराया कर न मानती रहीं।

ऐसे कह फिर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे पिता ! तुम यह बात सुन कर कुछ बुरा मत मानो, हम अपने मन की बात कहते हैं कि माता पिता तो तुम्हें ही कहेंगे, पर अब कुछ दिन मथुरा में रहेंगे, अपने जाति भाइयों को देख यदुकुल की उत्पत्ति सुनेंगे, और माता पिता से मिल उन्हें सुख देंगे ; क्योंकि उन्होंने हमारे लिये बड़ा दुःख सहा है, जो हमें तुम्हारे यहाँ न पहुँचा आते तो वे दुःख न पाते। इतना कह बस्त्र आभूषण नन्द महर के आगे धर प्रभु ने निर्मोही हो कहा :—

चौ० मैया सों पालागन कहियो। हम पै प्रेम करे तुम रहियो।

इतनी बात श्रीकृष्ण के मुँह से निकलते ही नन्दराय तो अति उदास हो लगे लम्बी साँसें लेने और ग्वालबाल विचार कर मन ही मन यों कहने कि यह क्या अचम्भे की बात कहते हैं, इससे ऐसा समझ में आता है कि अब ये कपट कर जाया

चाहते हैं। नहीं तो ऐसे निठुर बचन न कहते, महाराज! निदान उनमें से श्रीदामा नाम सखा बोला—भैया कन्हैया अब मथुरा में तेरा क्या काम है? जो निठुराई कर पिता को छोड़ यहाँ रहता है। भला किया कंस को मारा, सब काम सम्हारा, अब नन्द के साथ हो लीजिये, और वृन्दाबन में चल राज्य कीजिये। यहाँ का राज्य देख मन में मत ललचाओ, वहाँ का सा सुख न पाओगे।

सुनो, राज्य देख कर मूर्ख भूलते हैं, और हाथी घोड़े देख देख फूलते हैं। तुम वृन्दाबन छोड़ कहीं मत रहो, वहाँ सदा बसन्त ऋतु रहती है सघन बन और यमुना की शोभा मन से नहीं बिसरती। भाई, जो वह सुख छोड़ हमारा कहा न मान माता पिता की माया तज यहाँ रहोगे तो इसमें तुम्हारी क्या बड़ाई होगी? उग्रसेन की सेवा करोगे, और रात दिन चिन्ता में रहोगे। जिसे तुमने राज्य दिया उसी के आधीन होना होगा। यह अपमान कैसे सहा जायगा। इससे अब उत्तम यही है कि नन्दराय को दुःख न दीजै, इनके साथ हो लीजै :—

चौ० ब्रजबन नदी बिहार बिचारो। गायन को मन तें न बिसारो॥
नहीं छाँड़िहैं हम ब्रजनाथ। चलिहैं सबै तिहारे साथ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! ऐसे कितनी एक बातें कह दस बीस सखा श्रीकृष्ण बलराम जी के साथ रहे, और उन्होंने नन्दराय से बुझाकर कहा कि आप सब को ले निस्सन्देह आगे बढ़िये पीछे से हम भी इन्हें साथ लिये चले आते हैं। इतनी बात के सुनते ही,

सो० व्याकुल सबै अहीर, मानहुँ पन्नग के डसे।
हरि मुख लखत अधीर, ठाढ़े काढ़े चित्र से॥

उस समय बलदेव जी नन्दराय को अति दुःखित देख समझाने लगे कि, पिता तुम ! इतना दुःख क्यों पाते हो थोड़े एक दिन में यहाँ का काज कर हम भी आते हैं। आपको आगे इसलिये विदा करते हैं कि माता हमारी अकेली व्याकुल होती होयँगी, तुम्हारे गये से उन्हें कुछ धीर्य होगा, नन्द जी बोले कि बेटा, एक बार तुम मेरे साथ चलो फिर मिल कर चले आइयो।

दो० ऐसे कहि अति विकल हो, रहे नन्द गहि पाय।
भई क्षीण द्युति मन्द मति, नयनन जल न समाय॥

महाराज ! जब माया-रहित श्रीकृष्णचन्द्र जी ने ग्वालबालों समेत नन्दराय को महा व्याकुल देखा तब मन में बिचारा कि ये मुझसे बिछुड़ेंगे तो जीते न बचेंगे। त्योंही उन्होंने अपनी उस माया को छोड़ा, जिसने सारे संसार को भुला रक्खा है। उसने आते ही नन्द जी को सब समेत अज्ञान किया। फिर बोले कि—पिता ! तुम इतना क्यों पछताते हो, पहिले यही बिचारो कि मथुरा और बृन्दाबन में अन्तर क्या है। तुम से हम कहीं दूर तो नहीं जाते जो इतना दुःख पाते हो, बृन्दाबन के लोग दुःखी होंगे इसलिये तुम्हें आगे भेजते हैं।

जब ऐसे प्रभु ने नन्द महर को समझाया, तब वे धीर्य धर हाथ जोड़ बोले—प्रभु जो तुम्हारे ही जी में यों आया तो मेरा क्या बश है ? जाता हूँ तुम्हारा कहा टाल नहीं सकता। इतना बचन नन्द जी के मुख से सुनते ही हरि ने ग्वालबालों समेत नन्दराय को तो बृन्दाबन बिदा किया, और आप कई एक सखाओं समेत दोनों भाई मथुरा में रहे, उस काल नन्द सहित गोपग्वाल चले।

चौ० चले सकल मन सोचत भारी। हारे सर्वस मनहु जुवारी॥
काहू सुधि काहू सुधि नाहीं। लटपट चरण परत मग माहीं॥
जात वृन्दाबन देखत मधुबन। विरह बिथा बाढ़ी व्याकुल तन॥

इसी रीति से ज्यों त्यों कर वृन्दाबन पहुँचे इनका आना सुनते ही यशोदा रानी अति अकुलाय कर दौड़ी आईं, और रामकृष्ण को न देख महा व्याकुल हो नन्द जी से कहने लगीं :—

चौ० अहो कन्त सुत कहाँ गँवाये। पट आभूषण लीने आये॥
कंचन फेंक काँच घर राख्यो। अमृत छाँड़ मूढ़ विष चाख्यो॥
पारस पाय अंध ज्यों डारे। फिर गुण सुने कपारहिं फारे॥

ऐसे तुमने भी पुत्र गँवाये, और बसन आभूषण उसके पलटे ले आये अब उन बिन धन क्या करोगे? हे मूर्ख कन्त! जिनसे पलक ओट भये छाती फटे, कहो उन बिन दिन कैसे कटे। जब उन्होंने तुम से बिछुड़ने को कहा—तब तुम्हारा हिया कैसे रहा।

इतनी बात सुन नन्द जी ने बड़ा दुःख पाया और नीचा शिर कर यह बचन सुनाया कि सत्य है, ये वस्त्र अलंकार श्रीकृष्ण ने दिये, पर मुझे यह सुधि नहीं कि किसने लिये, और मैं कृष्ण की बात कहूँगा, सुनकर तू भी दुःख पावेगी।

चौ० कंस मार मोपै फिर आये। प्रीति हरण कहि बचन सुनाये॥
बसुदेव के पुत्र वे भये। कर मनुहार हँकारी गये॥
हों तब महरि अचम्भे रह्यो। पोषण भरण हमारो कह्यो॥
अब न महरि हरि सेा सुत कहिये। ईश्वर जानि भजन करि रहिये॥

उसे तो हमने पहिले ही नारायण जाना था, पर माया वश पुत्र कर माना। महाराज! जब नन्दराय जी ने सत्य बातें श्रीकृष्ण की कही यशोदा ने सुनी, तिस समय माया वश हो

यशोदा रानी कभी तो प्रभु को अपना पुत्र जान मन ही मन पङ्-ताय व्याकुल हो हो रोती थीं। और कभी ज्ञान कर ईश्वर जान उनका ध्यान धर गुण गाय गाय मन का खेद खोती थीं। और इसी रीति से सब वृन्दावनवासी क्या स्त्री क्या पुरुष हरि के प्रेम रंग राते अनेक अनेक प्रकार की बात करते थे, सो मेरी सामर्थ्य नहीं जो मैं वर्णन करूँ। इससे अब मथुरा की लीला कहता हूँ तुम चित्त दे सुनो।

जब हलधर और गोबिन्द नन्दराय को बिदा कर बसुदेव देवकी के पास आये, तब उन्होंने इन्हें देख दुःख भुलाय ऐसे सुख माना कि जैसे तपी तप कर अपना तप का फल पाय सुख माने। आगे बसुदेव देवकी ने कहा कि कृष्ण बलदेव पराये यहाँ रहे हैं, उन्होंने उनके साथ खाया पिया है, और अपनी जाति का व्यव-हार भी नहीं जानते, इसी से अब उचित है कि पुरोहित को बुलाय कर पूँछे जो वह कहैं सो करें। देवकी बोली बहुत अच्छा।

तब बसुदेव जी ने अपने कुलपूज्य गर्ग मुनि जी को बुला भेजा वे आये उनसे उन्होंने अपने मन का सन्देह कह के पूँछा कि—महाराज! अब हमें क्या करना उचित है? सो दया कर कहिये। गर्ग मुनि बोले—पहिले सब जाति भाइयों को न्योत बुलाइये, पीछे जाति कर्म कर राम कृष्ण को जनेऊ दीजै।

इतना बचन पुरोहित के मुख से निकलते ही बसुदेव जी ने नगर में न्योता भेज सब ब्राह्मण और यदुवंशियों को न्योत बुलाया। वे आये तिन्हे अति आदर मान कर बिठाया।

उस काल पहिले तो बसुदेव जी ने बिधि से जाति कर्म कर, जन्मपत्री लिखवाय, दश सहस्र गौ सोने के सींग, ताँबे की पीठ,

रूपे के खुर समेत पाटम्बर उढ़ाय ब्राह्मणों को दीं। जो श्रीकृष्ण जी के जन्म के समय संकल्पी थीं, पीछे मंगलाचार करवाय वेद की विधि से सब रीति भाँति कर, रामकृष्ण का यज्ञोपवीत किया, और उन दोनों भाइयों को कुछ विद्या पढ़ने को भेज दिया—

वे चले चले अवन्तिकापुरी के एक सांदीपन ऋषि जो महा पण्डित और बड़े ज्ञानवान काशीपुरी में थे उनके यहाँ आये दण्डवत् कर हाथ जोड़ सन्मुख हो अति दीनता कर बोले :—
चौ० हम पर कृपा करो ऋषिराय। विद्या दान देहु मन लाय॥

महाराज! जब कृष्ण बलराम जी ने सांदीपन ऋषि से यों दीनता कर कहा—तब उन्होंने इन्हें अति प्यार से अपने घर में रक्खा, और लगे बड़ी कृपा कर पढ़ावने, कितने एक दिनों में ये चार वेद, उपवेद, छः शास्त्र, नव व्याकरण, अठारह पुराण, मंत्र, यंत्र, तंत्र, आगम, ज्योतिष, वैद्यक, कोक, संगीत, पिंगल, पढ़ चौदहों विद्या निधान हुए। तब एक दिन दोनों भाइयों ने हाथ जोड़ अति विनती कर गुरू से कहा कि महाराज! कहा है, जो अनेक जन्म अवतार ले बहुतेरा कुछ दीजिये तौ भी विद्या का पलटा न दिया जाय, पर आप हमारी शक्ति देख गुरु दक्षिणा की आज्ञा कीजै तो हम यथा शक्ति दे आशीश ले अपने घर जायँ।

इतनी बात श्रीकृष्ण बलराम के मुख से निकलते ही सांदीपन ऋषि वहाँ से उठ सोच बिचार करते घर भीतर गये। और उन्होंने अपनी स्त्री से इनका भेद यों समझा कर कहा कि ये रामकृष्ण जो दोनों बालक हैं, सो आदि पुरुष अविनाशी हैं भक्तों के हेतु अवतार ले भूमि का भार उतारने को संसार में

आये हैं। मैंने इनकी लीला देख यह भेद जाना क्योंकि जो पढ़ पढ़ फिर फिर जन्म लेते हैं, सो भी विद्यारूपी सागर की थाह नहीं पाते, और देखो ये इस बाल अवस्था से थोड़े ही दिनों में ऐसे अगम अपार समुद्र के पार हो गये, वे जो किया चाहें सो पल भर में कर सकते हैं, इतना कह फिर बोले :—

चौ० इन पै कहा माँगिये नारि। सुनि कै सुन्दर कहै बिचारि॥
मृतक पुत्र माँगो तुम जाय। जो हरि हैं तो देहैं ल्याय॥

ऐसे घर में ये विचार कर सांदीपन ऋषि स्त्री सहित बाहर आय, कृष्ण बलदेव जी के सन्मुख कर जोड़ दीनता कर बोले—महाराज! मेरे एक पुत्र था तिसे साथ ले मैं कुटुम्ब समेत एक पर्व में समुद्र नहाने गया था, जो वहाँ पहुँच कपड़े उतार सब समेत तीर में नहाने लगा तो एक सागर की बड़ी लहर आई उसमें मेरा पुत्र बह गया, सो फिर न निकला किसी मगर मच्छ ने निगल लिया, उसका दुःख मुझे बड़ा है। जो आप गुरु-दक्षिणा दिया चाहते हैं तो वही सुत लाय दीजै और हमारे मन का दुःख दूर कीजै।

यह सुन श्रीकृष्ण बलराम गुरु-पत्नी और गुरु को प्रणाम कर रथ पर चढ़ उनका पुत्र लेने के निमित्त समुद्र की ओर चले और कितनी एक बेर में तीर पर जा पहुँचे, कि इन्हें क्रोधवान आते देख सागर भयमान हो मनुष्य शरीर धारण कर बहुत सी भेंट ले नीर से निकल तीर पर डरता काँपता इनके सोंहीं आ खड़ा हुआ और भेंट रख दण्डवत् कर हाथ जोड़ शिर नवाय अति विनती कर बोला :—

चौ० बड़ी भाग प्रभु दर्शन दियो। कौन काज इत आवन भयो॥

श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हमारे गुरुदेव यहाँ कुटुम्ब समेत नहाने आये थे, तिनके पुत्र को जो तू तरंग में ले गया बहाय के, तिसे ला दे, इसीलिये हम यहाँ आये हैं :—

चौ० सुन समुद्र बोल्यो शिर नाय। मैं नहिं लीनों वारि बहाय॥
तुम सबही के गुरु जगदीश। राम रूप बाँध्यो वारीश॥

तभी से मैं बहुत डरता हूँ, और अपनी मर्यादा में रहता हूँ, हरि बोले—जो तूने नहीं लिया तो यहाँ से कौन उसे ले गया। समुद्र ने कहा—कृपानाथ! मैं इसका भेद बताता हूँ कि एक शंखासुर नाम असुर शंख रूप मुझ में रहता है, सो सब जलचर जीवों को दुःख देता है। और जो कोई तीर पै नहाने को आता है उसे पकड़ ले जाता है। कदाचित् वह आपके गुरु-सुत को ले गया हो तो मैं नहीं जानता, भीतर पैठ देखिये :—

चौ० यों सुन कृष्ण धसे मन लाय। माँझ समुन्दर पहुँचे जाय॥
देखत ही शंखासुर मार्यो। पेट फाड़ के बाहर डार्यो॥
तामें गुरु को पुत्र न पायो। पछताने बलभद्र सुनायो॥

कि भैया! हमने इसे बिन काज मारा, बलराम जी बोले—चिन्ता नहीं, अब आप इसे धारण कीजै। यह सुन हरि ने उस शंख को अपना आयुध किया, आगे दोनों भाई वहाँ से चले चले यम की पुरी में पहुँचे उसका नाम संयमनी है और धर्मराज जहाँ का राजा है।

इन्हें देख धर्मराज आगे आय अति आद भक्ति कर ले गया सिंहासन पर बैठाय पाँउ धोय चरणामृत ले, बोला—धन्य यह पुरी ठौर जो प्रभु ने दर्शन दिया और कृतार्थ किया। अब आज्ञा दीजै सो सेवक पूरी करे—कृष्ण ने कहा, हमारे गुरु पुत्र को ला दे।

इतना बचन हरि के मुख से निकलते ही धर्मराज झट जाकर बालक को ले आया, और हाथ जोड़ विनती कर बोला कि, कृपानाथ! आप की कृपा से मैंने पहिले ही यह बात जानी थी कि आप गुरु-सुत लेने आवेंगे इससे मैंने योंही रक्खा। इस बालक को जन्म नहीं दिया—महाराज! ऐसे कह धर्मराज ने बालक हरि को दिया। प्रभु ने ले लिया और तुरन्त उसे रथ पर बिठाय वहाँ से चले, कितनी एक बेर में ला गुरु के सोंहीं खड़ा किया, और दोंनों भाइयें ने हाथ जोड़ के कहा—गुरुदेव अब क्या आज्ञा होती है।

इतनी बात सुन और पुत्र को देख, सांदीपन ऋषि ने अति प्रसन्न हो कृष्ण बलराम को बहुत सी अशीश देकर कहा :—

चौ० अब हौं मागौं कहा मुरारी। दीनों मोहिं पुत्र सुख भारी॥
अति यश तुम सों शिष्य हमारो। कुशल क्षेम अब घरहि पधारो॥

जब ऐसे गुरु ने आज्ञा की तब दोनों भाई बिदा हो दण्डवत कर रथ पर बैठ वहाँ से चले चले मथुरापुरी के निकट आये। उनका आना सुन राजा उग्रसेन बसुदेव समेत नगरनिवासी क्या स्त्री क्या पुरुष सब उठ धाये, और नगर के बाहर आय भेंट कर अति सुख पाय बाजे गाजे से पाटम्बर के पाँवड़े डालते प्रभु को नगर में ले गये। उस काल घर घर मङ्गलाचार होने लगे और बधाई बाजने लगीं।

४७—ऊधो-वृन्दाबन-गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि—पृथ्वीनाथ! श्रीकृष्णचन्द्र ने बृन्दाबन की सुरति करी सो मैं सब लीला कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो, कि एक दिन हरि ने बलराम जी से कहा कि, भाई!

सब वृन्दाबन-बासी हमारी सुरत कर अति दुःख पाते होंगे। क्योंकि जेा हमने उनसे अवधि की थी सेा बीत गई। इससे अब उचित है कि किसी केा वहाँ भेज दीजे, जेा जाकर उनका समाधान कर आवे।

येां भाई से मता कर हरि ने उद्धव केा बुलाय के कहा कि, अहो उद्धव! एक तेा तुम हमारे बड़े सखा हेा, दूजे अति चतुर ज्ञानवान् और धीर, इसलिये हम तुम्हें बृन्दाबन भेजा चाहते हैं कि तुम जाकर नन्द यशोदा और गेापियों केा ज्ञान दे उनका समाधान कर आओ, और माता रेाहिणी केा ले आओ। उद्धव जी ने कहा जेा आज्ञा।

फिर श्रीकृष्णचन्द्र बेाले कि, तुम प्रथम नन्द महर और यशोदा जी केा ज्ञान उपजाय उनके मन का मेाह मिटाय ऐसे समझाय कर कहियेा, जेा वे मुझे निकट जान दुःख तजें, पुत्र भाव छेाड़ ईश्वर मान भजें। पीछे उन गेापियों से कहियेा, जिन्होंने मेरे काज, छेाड़ी है लेाक वेद की लाज। रात दिन लीला यश गाती हैं और अवधि की आश किये प्राण मुट्ठी में लिये हैं कि तुम कन्त भाव छेाड़ हरि केा भगवान् जान भजेा और विरह दुःख तजेा।

महाराज! ऐसे उद्धव केा कह दोनों भाइयों ने मिल एक पाती लिखी, जिसमें नन्द यशोदा समेत गेाप ग्वालों केा तेा यथा येाग्य दण्डवत् प्रणाम आशीर्बाद, और सब ब्रज युवतियों केा येाग का उपदेश लिख उद्धव के हाथ दी। और कहा कि यह पाती तुमहीं पढ़ सुनाइयेा, जैसे बने तैसे उन सबकेा समझाय शीघ्र आइयेा।

इतना संदेशा कह प्रभु ने निज बस्त्र आभूषण मुकुट पहिराय अपने ही रथ पर बैठाय उद्धव जी केा वृन्दाबन बिदा किया।

ये रथ हाँके कितनी एक बेर में मथुरा से चलते चलते वृन्दाबन के निकट जा पहुँचे, तो वहाँ देखते क्या हैं कि सघन सघन कुञ्जों के पेड़ों पर भाँति भाँति के पक्षी मन भावन बोलियाँ बोल रहे हैं और जिधर तिधर धौली पीली भूरी काली गायें घटा सी फिरती हैं, और ठौर ठौर गोपी गोप ग्वालबाल श्रीकृष्ण यश गाय रहे हैं।

यह शोभा निरख हर्षते और प्रभु का बिहार स्थल जान प्रणाम करते उद्धव जी जो गाँव के ग्वैंड़े गये तो किसी ने दूर से हरि का रथ पहिचाना, पास आय इनका नाम पूँछा नन्द महर से जा कहा कि महाराज! श्रीकृष्ण का भेष किये उन्हीं का रथ लिये कोई उद्धव नाम मथुरा से आया है।

इतनी बात के सुनते ही नन्दराय जैसे गोप मण्डली के बीच अथाई पर बैठे थे, तैसे ही उठ धाये और तुरन्त उद्धव जी के निकट आये; राम कृष्ण जी का संगी जान अति हितकर मिले और कुशल क्षेम पूँछ बड़े आदर मान से घर लिवाय ले गये, पहिले पाँव धुलवाय आसन बैठने को दिया, पीछे षट्रस भोजन बनवा उद्धव जी की पहुनाई की, जब वे रुचि से भोजन कर चुके तब एक सुथरी उज्ज्वल फेन सी सेज बिछवा दी तिस पर पान खाय जाय उन्होंने पौढ़ कर अति सुख पाया और मार्ग का श्रम सब गँवाया। कितनी एक बेर में जो उद्धव जी सेा के उठे त्यों नन्द महर उनके पास जा बैठे और पूछने लगे कि कहो उद्धव जी! शूरसेन के पुत्र हमारे परम मित्र बसुदेव जी कुटुम्ब सहित आनन्द से हैं, और हम से कैसी प्रीति रखते हैं। यों कह फिर बोले :—

चौ० कुशल हमारे सुत की कहो। जिनके संग सदा तुम रहो॥
कबहूँ वे सुधि करत हमारी। उन बिन दुख पावत हम भारी॥
सबहीं सों आवन कह गये। बीती अवधि बहुत दिन भये॥

नित उठ यशोदा दही बिलोय माखन निकाल हरि के लिये रखती है। उसकी और ब्रजगोपियों की जो उनके प्रेम रंग में रँगी हैं, तिनकी सुरत कभी कान्ह करते हैं कि नहीं।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि पृथ्वीनाथ! इसी रीति से समाचार पूँछते और श्रीकृष्णचन्द्र की पूर्व लीला गाते गाते नन्दराय जी तो प्रेम रस भीज इतना कह प्रभु का ध्यान धर अवाक्य हुए:—

चौ० महाबली कंसादिक मारे। अब हम काहे कृष्ण बिसारे॥

कि इस बीच अति व्याकुल हो सुधि बुधि देह की बिसारे मन मारे रोती यशोदा रानी उद्धव जी के निकट आय राम कृष्ण की कुशल पूँछ बोलीं—कहो उद्धव जी! हरि हम बिन वहां कैसे इतने दिन रहे? और क्या संदेशा भेजा है। कब आय दर्शन देंगे इतनी बात के सुनते ही पहले तो उद्धव जी ने नन्द यशोदा जी को श्रीकृष्ण बलराम की पाती बाँच सुनाय पीछे समझा कर कहने लगे कि जिनके घर में भगवान् ने जन्म लिया और बाल-लीला कर सुख दिया, तिनकी महिमा कौन कह सके। तुम बड़े भाग्यवान् हौ, क्योंकि जो आदि पुरुष अविनाशी शिव विरञ्चि के कर्त्ता जिनके माता न पिता न भाई न बन्धु तिसे तुम अपना पुत्र जान मानते हो और सदा उसी के ध्यान में मन लगाये रहते हो वह तुम से कब दूर रह सकता है कहा है:—

चौ० सदा समीप प्रेम वश हरी। जिनके हेत देह जिन धरी॥
जाके बैरी मित्र न कोई। ऊँच नीच कोऊ किन होई॥
जोई भक्ति भजन मन धरे। सोई हरि सों मिल अनुसरे॥

जैसे भृङ्गी कीट को ले जाता है, और अपना रूप बनाय देता है और जैसे कमल के फूल में भौंरा मुँद जाता है, भौंरी

रात भर उसके ऊपर गूँजती रहती है, उसे छोड़ और कहीं नहीं जाती। तैसे ही जेा हरि से हित करता है और उनका ध्यान धरता है, तिसे भी आप सा बना लेते हैं, और सदा उसके पास ही रहते हैं।

यों कह फिर उद्धव बोले कि अब तुम हरि को पुत्र कर मत जानेा ईश्वर कर मानेा वे अन्तर्यामी भक्त हितकारी प्रभु आय दर्शन दे तुम्हारा मनोरथ पूरा करेंगे तुम किसी बात की चिन्ता न करेा।

महाराज! इसी रीति से अनेक अनेक प्रकार की बातें कहते कहते सुनते सुनते जब सब रात व्यतीत भई और चार घड़ी। पिछली रही, तब नन्दराय जी से उद्धव जी ने कहा—महाराज! अब दधि मथने की बिरियाँ हुई, जेा आप की आज्ञा होय तेा यमुना स्नान कर आऊँ, नन्द महर बोले—बहुत अच्छा। इतना कह वे तो वहाँ बैठे सेाच विचार करते रहे, और उद्धव जी झट रथ में बैठ यमुना तीर पर गये, पहिले बस्त्र उतार देह शुद्ध करी, पीछे नीर के निकट जाय रज शिर चढ़ाय हाथ जेाड़ कालिंदी की अति स्तुति गाय आचमन कर जल में पैठे, और नहाय धेाय सन्ध्या पूजा तर्पण से निश्चिन्त हेा लगे जप करने। उसेा समय ब्रज युवतियाँ भी उठीं और अपना अपना घर झाड़ बुहार लीप पेात धूप दीप कर लगीं दधि मथने।

चौ० दधि को मथन मेघ सों गाजैं। गावैं नूपुर की ध्वनि बाजैं॥

दो० दधि मथि के माखन लियो, कियो गेह को काम।
तब सब मिलि पानी चलीं, सुन्दर ब्रज की बाम॥

महाराज! वे गेापियाँ श्रीकृष्ण के वियेाग मद मातियाँ, उनका ही यश गातियाँ, अपने अपने झुण्ड लिये प्रीतम का ध्यान किये बाट में प्रभु की लीला गाने लगीं :—

चौ० एक कहै मोहिं मिले कन्हाई। एक कहै वे भजे लुकाई॥
पाछें तें पकरी मो बाँह। वे ठाढ़े हरि बर की छाँह॥
कहत एक गौ दूहत देखे। बोली एक भोरही पेखे॥
एक कहै वे धेनु चरावैं। सुनो कान दै बेणु बजावैं॥
या मारग हम जायँ न माई। दान माँगिहैं कुँवर कन्हाई॥
गागरि फोरि गाँठि को धरिहैं। नेक चितै के चित्त चोरिहैं॥
हैं कहुँ दुरे दौरि आइ हैं। तब हम कहाँ जान पाइ हैं॥
ऐसे कहत चलीं ब्रजनारी। कृष्ण वियोग बिकल तन भारी॥

४८—ऊधो गोपी सम्बोधन, भ्रमरगीत

श्रीशुकदेव मुनि बोले—पृथ्वीनाथ! जब उद्धव जी जप कर चुके तब नदी से निकल वस्त्र आभूषण पहन रथ पर बैठ जो कालिन्दी तीर से नन्द गेह की ओर चले तो गोपियाँ जो जल भरने को निकली थीं तिन्होंने रथ दूर से पन्थ में आते देखा देखते ही आपस में कहने लगीं कि यह रथ किसका चला आता है इसे देख लो तब आगे पाँव बढ़ाओ। यों सुन उनमें कई एक गोपी बोलीं कि सखी! कहीं वही कपटी अक्रूर तो न आया होय? जिसने श्रीकृष्णचन्द्र को ले जाय मथुरा में बसाया, और कंस को मरवाया। इतना सुन एक और उनमें से बोली यह विश्वासघाती फिर काहे को आया, एक बेर तो हमारे जीवनमूल को ले गया, अब क्या जीव लेगा? महाराज! इसी भाँति की आपस में अनेक अनेक बातें कह।

चौ० ठाढ़ी भईं तहाँ ब्रजनारी। शिर ते गागरि धरी उतारी॥

इतने में जो रथ निकट आया तो गोपियाँ कुछ एक दूर से उद्धव जी को देख कर आपस में कहने लगीं कि सखी यह तो

कोई श्याम वर्ण है, कमल नयन, मुकुट शिर दिये, बनमाल हिये पीताम्बर पहने पीत पट ओढ़े श्रीकृष्णचन्द्र सा रथ में बैठा हमारी ओर देखता चला आता है। तब इन्हीं में से एक गोपी ने कहा कि, सखी! यह तो कल से नन्द के यहां आया है उद्धव इसका नाम है और श्रीकृष्णचन्द्र ने कुछ संदेशा इसके हाथ कह पठाया है।

इतनी बात के सुनते ही गोपियाँ एकान्त ठौर देख शंक सङ्कोच छोड़ दौड़ कर उद्धव जी के निकट गईं, और हरि का हितू जान दण्डवत् कर कुशल क्षेम पूँछ हाथ जोड़ रथ को चारो ओर से घेर के खड़ी हुईं, उनका अनुराग देख उद्धव जी भी रथ से उतर पड़े तब सब गोपियाँ उन्हें एक पेड़ की छाया में बैठाय आप भी चारों ओर घिर के बैठीं, और प्यार से कहने लगीं :—

चौ० भली करी उद्धव तुम आये। समाचार माधव के लाये॥
सदा समीप कृष्ण के रहो। उनको कह्यो सँदेशा कहो॥
पठयो मात पिता के हेत। और न काहू की सुधि लेत॥
सर्वस दीनों उनके हाथ। उरझे प्राण चरण के साथ॥
अपने ही स्वारथ के भये। सब ही को अब दुख दे गये॥

और जैसे फल हीन तरुवर को पक्षी छोड़ जाता है, तैसे ही हरि हमें छोड़ गये। हमने उन्हें अपना सर्वस दिया है तौ भी वे हमारे न हुए महाराज! जब प्रेम में मग्न हो इसी ढब की बातें बहुत सी गोपियों ने कहीं तब उद्धव जी भी उनके प्रेम की दृढ़ता देख ज्यों प्रणाम करने को उठा चाहते थे त्योंही किसी गोपी ने एक भौंरे को फूल पर बैठते देख उसके मिस उद्धव से कहा।

अरे मधुकर ! तैने माधव के, चरण कमल का रस पिया है तिससे तेरा नाम मधुकर हुआ और कपटी का मित्र है इसीलिये तुझे उसने आपना दूत कर भेजा है। तू हमारे चरण मत परसे क्योंकि हम जानते हैं जितने श्याम वर्ण हैं, तितने सब कपटी हैं जैसा तू है तैसेई हैं श्याम, इससे तू हमें मत करे प्रणाम; ज्यों तू फूल फूल का रस लेता फिरता है और किसी का नहीं होता। तो वे भी प्रीति कर किसी के नहीं होते ऐसे गोपियाँ कह रही थीं। एक भौंरा और आया उसे देख ललिता नाम गोपी बोली :—

चौ० अहो भ्रमर तुम अलगै रहो। यह तुम जाय मधुपुरी कहो॥

जहाँ कुब्जा सी पटरानी और श्रीकृष्णचन्द्र विराजते हैं कि एक जन्म की हम क्या कहैं तुम्हारी जो जन्म जन्म की यही चाल है, बलि राजा ने सर्वस दिया, तिसे पाताल पठाया और सीता सती को बिन अपराध घर से निकाल जब उनकी यह दशा की तो हमारी क्या चली है, यों कह फिर सब गोपी मिल हाथ जोड़ उद्धव से कहने लगीं कि उद्धव जी हम अनाथ हैं, श्रीकृष्ण बिन तुम अपने साथ ले चलो। श्रीशुकदेव जी बोले, कि महाराज ! इतना बचन गोपियों के मुख से निकलते ही उद्धव जी ने कहा— जो संदेशा श्रीकृष्णचन्द्र ने लिख भेजा है, सो मैं समझा कर कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो लिखा है, कि तुम भोग की आश छोड़ योग करो तुम से वियोग कभी नहीं होगा। और कहा है, निशि दिन तुम करतो हो मेरा ध्यान इससे कोई नहीं है प्रिय मेरे तुम समान।

इतना कह फिर उद्धव जी बोले—जो हैं आदि पुरुष अविनाशी हरि, तिनसे तुमने प्रीति निरन्तर करी; और जिन्हें सब कोई अलख अगोचर अभेद बखाने तिन्हें तुमने अपने कन्त कर माने।

पृथ्वी, पवन, तेज, आकाश का है जैसे देह में निवास, ऐसे प्रभु तुम में विराजते हैं। पर माया के गुण से न्यारे दिखाई देते हैं उनका स्मरण ध्यान किया करो, वे सदा अपने भक्तों के वश रहते हैं, और पास रहने से होता है ज्ञान ध्यान का नाश, इसलिये हरि ने किया है दूर जाय के वास। और मुझे यह भी श्रीकृष्णचन्द्र ने समझा के कहा है, कि तुम्हें बेणु बजाय बन में बुलाया और जब देखा मदन और बिरह का प्रकाश, तब हमने तुम्हारे साथ मिल कर किया था रास।

चौ० जब तुम ईश्वरता बिसराई। अन्तर्ध्यान भये यदुराई॥

फिर जो तुमने ज्ञान कर ध्यान हरि का मन में किया, त्योंहीं तुम्हारे चित्त की भक्ति जान प्रभु ने आन दर्शन दिया। महाराज! इतना वचन उद्धव जी के मुख से निकलते ही।

चौपाई

गोपी तबै कहैं सतराय। सुनी बात अब रह अरगाय॥
ज्ञान योग बुध हमें सुनावैं। ध्यान छोड़ आकाश बतावैं॥
जिनको लीला में मन रहै। तिनको को नारायण कहै॥
बालकपन तें जिन सुख दयो। सो क्यों अलख अगोचर भयो॥
जो सब गुण युत रूप स्वरूप। सो क्यों निर्गुण होय निरूप॥
जो तन में प्रिय प्राण हमारे। तो को सुनि है बचन तिहारे॥
एक सखी उठ कहैं बिचारि। उद्धव की कीजे मनुहारि॥
इनसों सखी कछू नहिं कहिये। सुनि कै बचन देख मुख रहिये॥
एक कहति अपराध न याको। यह आयो पठयो कुब्जा को॥
अब कुब्जा जो जाहि सिखावै। सोई वाको गायो गावै॥
कबहूँ श्याम कहैं नहिं ऐसी। कही आइ ब्रज में इन जैसी॥

ऐसी बात सुनै को माई। उठत शूल सुनि सही न जाई॥
कहत भोग तजि योग अराधो। ऐसी कैसे कहि हैं माधो॥
जत तप संयम नेम अचार। यह सब विधवा को व्योहार॥
युग युग जोवहु कुँवर कन्हाई। शीश हमारे पर सुखदाई॥
अक्षत पति विभूति किन लाई। अहो कौन यह रीति चलाई॥
हमको नेम योग व्रत एहा। नन्द नँदन पद परम सनेहा॥
उद्धव तुम्हें दोष को लावै। यह सब कुब्जा नाच नचावै॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—महाराज जब गोपियों के मुख से ऐसे प्रेम सने वचन सुने, तब योग कहा और कह के उद्धव मन ही मन पछताय सकुचाय मौन साध शिर नवाय रह गये। फिर एक गोपी ने पूँछा कहो बलभद्र जी कुशल क्षेम से हैं और बालापन की प्रीति विचार कभी वे भी हमारी सुधि करते हैं कि नहीं।

यह सुन उन्हीं में से किसी और गोपी ने उत्तर दिया कि सखी तुम तो हो अहीरी गँवारी, और मथुरा की हैं सुन्दरी नारी तिनके बश हो हरि बिहार करते हैं अब हमारी सुरत क्यों करेंगे जब से वहाँ जाके छाये सखी तब से पी भये पराये, जो पहले हम ऐसा जानतीं तो काहे को जाने देतीं, अब पछताये कुछ हाथ नहीं आता, इससे उचित है कि सब दुख छोड़ अवधि की आश कर रहिये। क्योंकि जैसे आठ महीने पृथ्वी, बन, पर्वत, मेघ की आशा किये तपन सहते हैं और तिन्हें आय वह ठंढा करता है, तैसे हरि भी आय मिलैंगे :—

चौपाई

एक कहति हरि कीनों काज। बैरी मारयो लीनों राज॥
काहे को वृन्दाबन आवैं। राज छोड़ क्यों गाय चरावैं॥

छोड़हु सखी अवधि की आश। चिन्ता जैहै भये निराश॥
एक त्रिया बोली अकुलाय। कृष्ण आश क्यों छोड़ी जाय॥

बन पर्वत और यमुना के तीर में जहाँ जहाँ श्रीकृष्ण बलबीर ने लीला करी, वहाँ वहाँ ठौर देख सुधि आती है खरी, प्राणपति! हरि को यों कह फिर बोलीं :—

दो० दुख सागर यह ब्रज भयो, नाम नाव बिच धार।
बूड़हिं बिरह बियोग जल, कृष्ण करैं कब पार॥

चौ० गोपीनाथ की क्यों सुधि गई। लाज न कछू नाम की भई।

इतनी बात सुन उद्धव जी मन ही मन विचार कर कहने लगे कि धन्य हैं इन गोपियों को और इनकी दृढ़ता को जो सर्वस छोड़ श्रीकृष्णचन्द्र के ध्यान में लीन हो रही हैं। महाराज! उद्धव जी तो उनका प्रेम देख मन ही मन सराहते ही थे, कि उस काल सब गोपी उठ खड़ी हुईं और उद्धव जी को बड़े आदर मान से अपने घर लिवाय ले गईं, उनकी प्रीति देख इन्होंने भी वहाँ जाय भोजन किया, और विश्राम कर श्रीकृष्ण की कथा सुनाय उन्हें बहुत सुख दिया। तब सब गोपी उद्धव जी की पूजा कर, बहुत सी भेंट आगे धर हाथ जोड़ अति बिनती कर बोलीं— उद्धव जी! तुम हरि से जाय कहियो कि नाथ! आगे तो तुम बड़ी कृपा करते थे, हाथ पकड़ अपने साथ लिये फिरते थे, अब ठकुराई पाई नगर नारि कुब्जा के कहे योग लिख भेजा। हम अबला अपवित्र गुरुमुख भी नहीं हुई, हम ज्ञान क्या जानें।

चौ० उनसों बालापन की प्रीति। जाने कहा योग की रीति॥
वे हरि क्यों न योग दे जात। यह न संदेशे की है बात॥
उद्धव यों कहियो समुझाय। प्राण जात हैं राखैं आय॥

महाराज ! इतनी बात कह सब गोपियाँ तो हरि का ध्यान कर मन में मग्न हो रहीं। और उद्धव जी उन्हें दण्डवत् कर वहाँ से उठ रथ पर बैठ गोवर्द्धन में आये। वहाँ कई एक दिन रहे फिर वहाँ से जो चले तो जहाँ जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र जी ने लीला करी थी तहाँ तहाँ गये, और दो दो चार चार दिन सब ठौर रहे।

निदान कितने एक दिवस पीछे फिर वृन्दावन में आये, और नन्द यशोदा जी के पास जा हाथ जोड़ कर बोले कि आपकी प्रीति देख मैं इतने दिन ब्रज में रहा। अब आज्ञा पाऊँ तो मथुरा को जाऊँ।

इतनी बात के सुनते ही यशोदा रानी दूध दही माखन और बहुत सी मिठाई घर में जाय ले आई, और उद्धव जी को दे के कहा कि तुम यह श्रीकृष्ण बलराम प्यारे को देना, और बहिन देवकी से यों कहना कि मेरे कृष्ण बलराम को भेज दें बिरमाय न रक्खें।

इतना संदेशा कह नन्दरानी अति व्याकुल हो रोने लगीं, तब नन्द जी बोले कि, उद्धव जी ! हम तुम से अधिक क्या कहैं तुम आप चतुर गुणवान महाज्ञानी हो, हमारी ओर हो प्रभु से ऐसे जाय कहियो, जो वे ब्रजवासियों का दुःख बिचार वेग आय दर्शन दें और हमारी सुधि न बिसारें।

इतना कह जब नन्दराय ने आँसू भर लिये, और जितने ब्रजबासी क्या स्त्री क्या पुरुष वहाँ खड़े थे, सो भी सब लगे रोने तब उद्धव उन्हें समझाय बुझाय आशा भरोसा दे ढाढ़स बँधाय बिदा हो रोहिणी को साथ ले मथुरा को चले, और कितनी एक बेर में चले चले श्रीकृष्णचन्द्र के पास

आ पहुँचे, इन्हें देखते ही श्रीकृष्ण बलदेव उठ कर मिले, और बड़े आदर भाव से इनकी कुशल क्षेम पूँछ वृन्दाबन के समाचार पूँछने लगे कहो उद्धव जी ! नन्द यशोदा समेत सब ब्रजबासी आनन्द से हैं, और कभी हमारी सुरत करते हैं कि नहीं ? उद्धव जी बोले—महाराज ! ब्रज की महिमा और ब्रजबासियों का प्रेम मुझ से कुछ कहा नहीं जाता उनके तो तुम्हीं प्राण, निश दिन करते वे तुम्हारा ही ध्यान, और ऐसी देखी गोपियों की प्रीति, जैसी होती है पूर्ण भजन की रीति ; आपका कहा योग का उपदेश जा सुनाया, पर मैंने भजन का भेद उनही से पाया ।

इतना समाचार कह उद्धव जी बोले कि दीनदयाल ! मैं अधिक क्या कहूँ, आप अन्तर्यामी घट घट की जानते हैं, थोड़े ही में सभी समझिये कि ब्रज में क्या जड़ क्या चैतन्य सब आपके दर्श पर्श बिन महा दुखी हैं, केवल अवधि की आश कर रहे हैं।

इतनी बात के सुनते ही जब दोनों भाई उदास हो रहे, तब उद्धव जी तो श्रीकृष्णचन्द्र से बिदा हो नन्द यशोदा का संदेश बसुदेव देवकी को पहुँचाय अपने घर गये, और रोहिणी जी कृष्ण बलराम से मिल अति आनन्द कर निज मन्दिर में रहीं ।

४६—कुब्जा-केलिबर्णन

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—महाराज ! एक दिन श्रीकृष्ण बिहारी भक्त हितकारी कुब्जा की प्रीति विचार अपना बचन प्रति पालने को उद्धव को साथ ले उसके घर गये ।

चौपाई

जब कुब्जा जान्यो हरि आये । पाटम्बर पांवड़े बिछाये ॥

अति आनंद लये उठि आगे। पूरब पुण्य पुंज सब जागे॥
उद्धव को आसन बैठारि। मंदिर भीतर धसे मुरारि॥

वहाँ जाय देखैं तो चित्रशाला में उजला बिछौना बिछा है, उस पर एक फूलों से सँवारी अच्छी सेज बिछी है। तिसी पर हरि जा बिराजे, और कुब्जा एक ओर मन्दिर में सुगन्ध उबटन लगाय, नहाय धोय कंघी चोटी कर, सुथरे कपड़े गहने पहर, नख शिख से शृङ्गार कर पान खान सुगन्ध लगाय, ऐसे चाव भाव से श्रीकृष्ण के निकट आई कि जैसे रति अपने पति के पास आई होय। और लाज से घूँघट किये प्रथम मिलन का भय उर लिये चुपचाप एक ओर खड़ी हो रही है। देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद ने उसे हाथ पकड़ अपने पास बिठा लिया और उसका मनोरथ पूर्ण किया।

चौपाई

तब उठि उद्धव के ढिग आये। भई लाज हँसि नयन नवाये॥

महाराज! यों कुब्जा को सुख दे उद्धव जी को साथ ले श्रीकृष्णचन्द्र फिर अपने घर आये। और बलराम जी से कहने लगे कि, भाई! हमने अक्रूर जी से कहा था कि तुम्हारा घर देखने जायँगे। सो पहिले तो वहां चलिये, पीछे उन्हें हस्तिनापुर को भेज के समाचार मँगवाइये।

इतना कह दोनों भाई अक्रूर के घर गये, वह प्रभु को देखते अति सुख पाय प्रणाम कर, चरण रज शिर चढ़ाय, हाथ जोड़ बिनती कर बोला—कृपानाथ! आपने बड़ी कृपा की जो आय दर्शन दिया, और मेरा घर पवित्र किया। यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र बोले—कका इतनी बड़ाई क्यों करते हो, हम तो आपके लड़के हैं। यों कह फिर सुनाया कि कका जी आपके पुण्य से असुर तो सब मारे गये, पर एक ही चिन्ता हमारे जी में है, जो सुनते हैं

पाण्डु बैकुण्ठ सिधारे और दुर्योधन के हाथ से पाँचों भाई हैं दुखी हमारे :—

चौपाई

कुन्ती फुफू अधिक दुख पावै। तुम बिन जाय कौन समझावै॥

इतनी बात के सुनते ही अक्रूर जी ने हरि से कहा कि आप इस बात की चिन्ता न कीजे मैं हस्तिनापुर जाऊँगा, और उन्हें समझाय वहाँ की सुध ले आऊँगा।

५०—अक्रूर-हस्तिनापुर गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, पृथ्वीनाथ! जब ऐसे श्रीकृष्ण जी ने अक्रूर के मुख से सुना, तब इन्होंने उन्हें पाण्डवों की सुधि लेने को बिदा किया, वे रथ पर बैठ चले। कई एक दिन में मथुरा से हस्तिनापुर पहुँचे और रथ से उतर जहाँ राजा दुर्योधन अपनी सभा में सिंहासन पर बैठा था, वहाँ जाय जुहार कर खड़े हुए। इन्हें देखते ही दुर्योधन सभा समेत उठ कर मिला, और अति आदर मान से अपने पास बिठाय इनकी कुशल क्षेम पूँछ बोला :—

चौपाई

नीके सूरसेन बसुदेव। नीके हैं मोहन बलदेव॥
उग्रसेन राजा केहि हेत। नाहिंन काहू की सुधि लेत॥
पुत्रहि मार करत है राज। तिनहिं न काहू सों है काज॥

ऐसे जब दुर्योधन ने कहा—तब अक्रूर सुन चुप हो रहा, और मन ही मन कहने लगा कि यह पापियों की सभा है, मुझे यहाँ रहना उचित नहीं क्योंकि जो मैं रहूँगा तो यह ऐसी ऐसी

अनेक बातें कहेगा सो मुझसे सब सुनी न जायँगी, इससे यहाँ रहना भला नहीं।

यों बिचार अक्रूर जी वहाँ से उठ बिदुर को साथ ले पाण्डु के घर गये। तहाँ जाय देखैं तौ कुन्ती पति के सोच से महा व्याकुल हो रही है, उसके पास जा बैठे और लगे समझाने कि भाई! बिधना से कुछ किसी का बश नहीं चलता, और सदा कोई अमर हो जीता भी नहीं रहता, देह धर जीव दुःख सुख सहता है। इसमें मनुष्य को चिन्ता करनी उचित नहीं क्योंकि चिन्ता किये से कुछ हाथ नहीं आता, केवल चित को दुःख देना है।

महाराज! जब ऐसे समझाय बुझाय अक्रूर जी ने कुन्ती से कहा—तब वह सोच समझ चुप हो रहीं, और इनकी कुशल पूँछ बोली—अहो अक्रूर जी! हमारे माता पिता और भाई बसुदेव जी कुटुम्ब समेत भले हैं और श्रीकृष्ण बलराम कभी युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, इन अपने पाँचों भाइयों की सुधि करते हैं? ये तो यहाँ दुःख समुद्र में पड़े हैं, वे इनकी रक्षा कब आय करेंगे? हमसे अब तो इस अंध धृतराष्ट्र का द्वेष सहा नहीं जाता, क्योंकि वह दुर्योधन की मति से चलता है, इन पाँचों के मारने के उपाय में दिन रात रहता है, कई बेर तो बिष घोल दिया, सो मेरे भीमसेन ने पी लिया।

इतना कह पुनि बोली—अहो अक्रूर जी! जब सब कौरव यों बैर किये रहैं, तब ये मेरे बालक किसका मुँह चहैं, और मीच से बच कैसे होयँ सयाने, यही दुःख बड़ा है हम क्या जाने; ज्यों हरिणी झुण्ड से बिछुड़ करती है त्रास, यों मैं भी सदा रहती हूँ उदास, जिन्होंने कंसादिक असुर संहारे सोई हैं मेरे रखवारे।

चौपाई

भीम युधिष्ठिर अर्जुन भाई। इनको दुख तुम कहियो जाई॥

जब ऐसे दीन हो कुन्ती ने कहे बैन, तब सुन कर अक्रूर ने भर लिये नयन, और समझा के कहने लगा कि, माता! तुम कुछ चिन्ता मत करो। ये पाँचों पुत्र तुम्हारे हैं सो महाबली यशस्वी होंगे। शत्रु और दुष्टों को मार करेंगे निकन्द, इनके पक्षी हैं श्रीगोविन्द, यों कह फिर अक्रूर जी बोले कि, श्रीकृष्ण बलराम ने मुझे यह कह तुम्हारे पास भेजा है कि फुफू से कहियो किसी बात से दुख न पावें, हम वेग ही तुम्हारे निकट आते हैं।

महाराज! ऐसे श्रीकृष्ण की कही बातें कह अक्रूर जी कुन्ती को समझाय बुझाय आशा भरोसा दे बिदा हो बिदुर को साथ ले धृतराष्ट्र के पास गये, और उनसे कहा तुम पुरुखा होय के ऐसी अनीति क्यों करते हो? जो पुत्र के वश होय अपने भाई का राजपाट ले भतीजों को दुःख देते हो, यह कहाँ का धर्म है, जो धर्म करते हो।

चौपाई

लोचन गये न सूझै हिये। कुल बहि जाय पाप के किये॥

तुमने अच्छे भले बैठे बिठाये क्यों भाई का राज्य लिया और भीम युधिष्ठिर को दुःख दिया।

इतनी बात के सुनते ही धृतराष्ट्र अक्रूर का हाथ पकड़ बोला कि, मैं क्या करूँ मेरा कहा कोई नहीं सुनता। ये सब अपनी अपनी मति से चलते हैं। मैं तो इनके सोंहीं मूर्ख हो रहा हूँ, इससे इनकी बातों में कुछ नहीं बोलता, एकान्त में बैठ चुपचाप अपने प्रभु का भजन करता हूँ। इतनी बात जो धृतराष्ट्र ने कही तो अक्रूर जी दण्डवत् कर वहाँ से उठ रथ पर चढ़ हास्तिनापुर से चले चले मथुरा नगरी में आये।

दो० उग्रसेन बसुदेव सों, कही पाण्डु की बात।
कुन्ती के सुन महादुख, भये क्षीण अति गात॥

यों उग्रसेन बसुदेव जी से हस्तिनापुर के सब समाचार कह अक्रूर जी फिर श्रीकृष्ण बलराम जी के पास जा प्रणाम कर हाथ जोड़ बोले—महाराज! मैंने हस्तिनापुर में जाय देखा आप की फूफी और पाँचों भाई कौरवों के हाथ से महा दुखी हैं अधिक क्या कहूँगा। आप अन्तर्य्यामी हैं, वहाँ की अवस्था और बिपरीत तुम से कुछ छिपी नहीं। यों कह अक्रूर जी तो कुन्ती का कहा संदेशा सुनाय बिदा हो अपने घर गये, और सब समाचार सुन श्रीकृष्ण बलदेव जो हैं सब देवन के देव, सो लोक रीति से बैठ चिन्ता कर भूमि का भार उतारने का बिचार करने लगे।

इतनी कथा श्रीशुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित को सुनाय कर कहा कि, हे पृथ्वीनाथ! यह जो मैंने ब्रजबन मथुरा का यश गाया सो पूर्वार्द्ध कहा अब आगे उत्तरार्द्ध गाऊँगा जो द्वारिकानाथ का बल पाऊँगा।

५१—जरासन्ध पराजय

श्रीशुकदेव जी बोले—कि महाराज! ज्यों श्रीकृष्णचन्द्र दल समेत जरासन्ध को जीत कालयमन को मार, मुचकुन्द को तार, ब्रज को तज द्वारका में जाय बसे, त्यों मैं सब कथा कहता हूँ, तुम सचेत हो चित्त लगाय सुनो कि, राजा उग्रसेन तो राजनीति लिये मथुरापुरी का राज्य करते थे, और श्रीकृष्ण बलराम सेवक की भाँति उनकी आज्ञाकारी, इससे राजा राज-प्रजा सब सुखी थी, पर एक कंस की रानियाँ ही अपने पति के शोक से

महादुखी थीं, न उन्हें नींद आती थी, न भूख प्यास लगती थी, आठ पहर उदास रहती थीं।

एक दिन वे दोनों बहिन अति चिन्ता कर आपस में कहने लगीं जैसे नृप बिन प्रजा, चन्द्र बिन यामिनी शोभा नहीं पाती, तैसे कन्त बिन कामिनी भी शोभा नहीं पाती, अब अनाथ हो यहां रहना भला नहीं, इससे अपने पिता के घर चल रहिये सेा अच्छा। महाराज! वे दोनों रानियाँ ऐसे आपस में सेाच बिचार कर रथ मँगवाय उस पर चढ़ मथुरा से चली चली मगध देश में अपने पिता के यहाँ आईं, जैसे श्रीकृष्ण बलराम जी ने सब असुरों समेत कंस को मारा तैसे उन दोनों ने रो रो समाचार अपने पिता से सब कह सुनाया।

सुनते ही जरासंध अति क्रोध कर सभा में आया,और लगा कहने कि ऐसे कौन बली यदुकुल में उपजे जिन्होंने सब असुरों समेत महाबली कंस को मार मेरी बेटियों को राँड किया! मैं अभी अपना सब कटक ले चढ़ धाऊँ, और सब यदुबंशियों समेत मथुरापुरी को जलाय राम कृष्ण को जोता बाँध लाऊँ मेरा नाम जरासन्ध नहीं तो नहीं।

इतना कह उसने तुरन्त ही चारों ओर के राजाओं को पत्र लिखे कि तुम अपना दल ले ले हमारे पास आओ हम कंस का पलटा ले यदुबंशियों को निर्वंश करेंगे। जरासंध का पत्र पाते ही सब देस देस के नरेश अपना अपना दल साथ ले झट चले आये, और यहाँ जरासंध ने भी अपनी सेना सब ठीक ठाक बनाय रक्खी। निदान सब असुर दल साथ ले जरासंध ने जिस समय मगध देश से मथुरा पुरी को प्रस्थान किया, तिस समय उसके संग तेईस अक्षौहिणी सेना थी। इक्कीस सहस्र आठ सौ सत्तर रथी,

और इतने ही गजपति, एक लाख नौ सहस्र साढ़े तीन सौ पैदल, और छासठ सहस्र अश्वपति, यह अक्षौहिणी का प्रमाण है।

ऐसी तेईस अक्षौहिणी उसके साथ थीं। और उनमें से एक एक राक्षस जैसा बली था सो मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। महाराज! जिस काल जरासंध सब असुर सेना साथ ले धौंसा दे चला, उस काल दशों दिशा के दिग्पाल लगे थर थर काँपने, और सब देवता मारे डर के भागने, पृथ्वी न्यारी हो बोझ से लगी छत सी हिलने, निदान कितने एक दिनों में चला चला जा पहुँचा। और उसने चारों ओर से मथुरा पुरी को घेर लिया। तब नगर निवासी अतिभय खाय श्रीकृष्णचन्द्र के पास जा पुकारे कि, महाराज! जरासंध ने आय चारों ओर से नगर घेरा, अब क्या करैं और किधर जाँय।

इतनी बात के सुनते ही हरि कुछ सोच विचार करने लगे, इतने में बलराम जी ने जाय प्रभु से कहा कि, महाराज! आपने भक्तों का दुःख दूर करने के हेतु अवतार लिया है, अब अग्नि तन धारण कर असुर रूपी बन को जलाय भूमि का भार उतारिये। यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र उनको साथ ले उग्रसेन के पास गये और कहा कि, महाराज! हमें तो लड़ने की आज्ञा दीजै, और आप सब यदुबंशियों को साथ ले गढ़ की रक्षा कीजै।

इतना कह ज्यों माता पिता के निकट आये, त्यों सब नगर निवासी घिर आये, और लगे अति व्याकुल हो कहने कि, हे कृष्ण! अब इन असुरों के हाथ से कैसे बचें? तब हरि ने माता पिता समेत सबको भयातुर देख समझा के कहा कि तुम किसी भाँति चिन्ता मत करो यह असुर दल जो तुम देखते हो पल भर में यहाँ का यहीं ऐसे बिलाय जायगा कि जैसे पानी के बबूले पानी में बिलाय जाते हैं। यों कह सब को समझाय बुझाय

ढाड़स बँधाय उनसे बिदा हो प्रभु जो आगे बढ़े तो देवताओं ने दो रथ शस्त्र भर इनके लिये भेज दिये। वे आय इनके सोंहीं खड़े हुए, तब ये दोनों भाई उन दोनों रथों में बैठ लिये।

चौ० निकसे बीर दोऊ यदुराय। पहुँचे तुरत सुदल में जाय॥

जहाँ जरासन्ध खड़ा था तहाँ जा निकले, देखते ही जरासंध श्रीकृष्णचन्द्र से अति अभिमान कर कहने लगा—अरे! तू मेरे सोंहीं से भाग जा मैं, तुझे क्या मारूँ? तू मेरे समान का नहीं जो मैं तुझ पर शस्त्र चलाऊँ। भला बलराम को मैं देख लेता हूँ। श्रीकृष्णचन्द्र बोले—अरे मूर्ख अभिमानी! तू यह क्या बताता है? जो शूरमा होते हैं सो बड़ा बोल नहीं बोलते, सब से दीनता करते हैं। काम पड़े अपना बल दिखाते हैं और जो अपने मुँह अपनी बड़ाई मारते हैं सो क्या कुछ भले कहाते हैं। कहा है कि गर्जता है सो बरसता नहीं, इससे वृथा बकवाद क्या करता है।

इतनी बात के सुनते ही जरासंध ने जो क्रोध किया तो श्रीकृष्णचन्द्र बलदेव चल खड़े हुये। इनके पीछे वह भी अपनी सब सेना ले धाया और उसने यों पुकार के कह सुनाया, अरे दुष्टो! मेरे आगे से तुम कहाँ भाग जाओगे? बहुत दिन जीते बचे तुमने अपने मन में क्या समझा है? अब जीते न रहने पाओगे। जहाँ सब असुरों समेत कंस गया है तहाँ ही सब यदुबंशियों समेत तुम्हें भी भेजूँगा। महाराज! ऐसा दुष्ट बचन उस असुर के मुख से निकलते ही कितनी एक दूर जाय दोनों भाई फिर खड़े हुए। श्रीकृष्ण जी ने तो सब शस्त्र लिए, और बलराम जी ने हल मुशल, जो असुर दल उनके निकट गया तो दोनों बीर ललकार के ऐसे टूटे कि जैसे हाथियों के यूथ पर सिंह टूटे, और लगा लोहा बाजने।

उस काल मारू जो बाजता था सो तो मेघ सा गाजता था, और चारों ओर से राक्षसों का दल जो घिर आया था सो दल बादल सा छाया था, और शस्त्रों की झड़ी, सी लगी थी। उसके बीच श्रीकृष्ण बलराम युद्ध करते ऐसे शोभायमान लगते थे, जैसे सघन बन में दामिनी सुहावनी लगती है। सब देवता अपने अपने बिमानों पर बैठे आकाश से देख देख प्रभु का यश गाते थे, और इन्हीं की जीत मनाते थे, और उग्रसेन समेत सब यदुवंशी अति चिन्ता कर मन ही मन पछताते थे कि हमने यह क्या किया? जो श्रीकृष्णचन्द्र बलराम को असुर दल में जाने दिया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि, पृथ्वीनाथ! जब लड़ते लड़ते असुरों की बहुत सी सेना कट गई बलदेव जी ने रथ से उतर जरासन्ध को बाँध लिया। इसमें श्रीकृष्णचन्द्र जी ने जा बलराम से कहा कि, भाई! इसे जीता छोड़ दो मारो मत, क्योंकि यह जीता जायगा तो फिर असुरों को साथ ले आवेगा तिन्हें मार हम भूमि का भार उतारेंगे। और जीता न छोड़ोगे तो जो राक्षस भाग गये हैं सो हाथ न आवेंगे। ऐसे बलदेव जी को समझाय प्रभु ने जरासन्ध को छुड़वाय दिया। वह अपने उन लोगों में गया जो रण से भाग भाग के बचे थे।

चौ० चहुँ छिशि चाहि कहै पछताय। सिगरी सेना गई बिलाय॥
भयो दुःख अति कैसे जीजे। अब घर छाँड़ि तपस्या कीजे॥
मंत्री तबै कहै समझाय। तुमसों ज्ञानी क्यों पछताय॥
कबहूँ हार जीत पुनि होई। राज देश छाँड़े नहिं कोई॥

क्या हुआ जो अब की लड़ाई में हारे, फिर अपना दल जोड़ लावेंगे, और सब यदुवंशियों समेत कृष्ण बलदेव को स्वर्ग पठावेंगे तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। महाराज! ऐसे समझाय बुझाय जो असुर रण से भाग के बचे थे तिन्हें और

जरासन्ध को मंत्री ने घर ले पहुँचाया और वह फिर वहां कटक जोड़ने लगा। यहाँ श्रीकृष्ण बलराम रणभूमि में देखते क्या हैं कि लोहू की नदी बह निकली है तिसमें रथ बिना रथी नाव से बहे जाते हैं। ठौर ठौर हाथी मरे पहाड़ से पड़े दृष्टि आते हैं उनके घावों से रक्त झरना की भाँति झड़ता है। तहाँ महादेव जी भूत प्रेत संग लिये अति आनन्द कर नाच नाच गाय गाय मुण्डों की माला बनाय पहिनते हैं, भूतनी प्रेतनी योगनियाँ खप्पर भर भर रक्त पीती हैं। गिद्ध शृगाल काग लोथों पर बैठ बैठ मांस खाते हैं, और आपस में लड़ते जाते हैं।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! जितने रथ, हाथी, घोड़े और राक्षस उस खेत में मरे थे तिन्हें समेट पवन ने तो इकट्ठा किया, और अग्नि ने पल भर में सब को जला भस्म कर दिया। पञ्चतत्व में मिल गये। उन्हें आते तो सबने देखा और जाते किसी ने न देखा, कि किधर गये। ऐसे असुरों को मार भूमि का भार उतार श्रीकृष्ण बलराम भक्त हितकारी उग्रसेन के पास आय दण्डवत कर हाथ जोड़ बोले कि महाराज! आपके पुण्य प्रताप से असुर दल मार भगाया अब निर्भय राज्य कीजै, और प्रजा को सुख दीजै। इतना बचन इनके मुख से निकलते ही राजा उग्रसेन अति आनन्द मान बड़ी बधाई की और धर्म राज्य करने लगे। इसमें कितने एक दिन पीछे फिर जरासंध उतनी ही सेना ले चढ़ आया। और श्रीकृष्ण बलदेव जी ने पुनि त्योंही मार भगाया, ऐसे तेईस तेईस अक्षौहिणी ले सत्रह बेर चढ़ आया, और प्रभु ने मार मार हटाया।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! इस बीच नारद मुनि जी के जो कुछ जी में आई तो एकाएकी उठ कर कालयवन के यहाँ गये। इन्हें देखते ही वह

सभा समेत उठ खड़ा हुआ और उनसे दण्डवत् कर हाथ जोड़ पूँछा कि महाराज ! आपका आना यहाँ कैसे भया ।

चौ० सुनि के नारद कहैं बिचारि । मथुरा में बलभद्र मुरारि ॥
तो बिन तिन्हें हते नहिं कोई । जरासन्ध सेा कछु नहिं होई ॥
तू है अमर सूर अति बली । बालक हरि बलदाऊ हली ॥

यों कह फिर नारद जी बोले कि जिसे तू मेघवर्ण, कमल नयन, अति सुन्दर बदन, पीताम्बर पहरे, पीतपट ओढ़े, देखे तिसका तू पीछा बिन मारे मत छोड़ियेा । इतना कह नारद मुनि तो चले गये और कालयवन अपना दल जोड़ने लगा । उसमें कितने एक दिन बीच उसने तीन करोड़ महा मलेच्छ अति भयावने इकट्ठा किये । ऐसे कि जिनके मोटे भुज, लम्बे गले, बड़े दांत, मैले भेष, भूरे केश, नयन लाल घूँघची से, तिन्हें साथ ले डङ्का दे मथुरापुरी पर चढ़ आया, और उसे चारों ओर से घेर लिया । उस काल श्रीकृष्णचन्द्र जी ने उसका व्यवहार देख अपने जी में बिचारा कि अब यहाँ रहना भला नहीं, क्योंकि आज यह चढ़ आया है और कल को जरासन्ध भी चढ़ आवे तेा प्रजा दुःख पावेगी । इससे उत्तम यही है कि यहाँ न रहिये सब समेत अन्त जाय बसिये । महाराज ! हरि ने यों बिचार कर विश्वकर्मा को बुलाय समझाय बुझाय के कहा—कि तू अभी जा के समुद्र के बीच एक नगर बना, ऐसा कि जिसमें सब यदुबंशी सुख से रहें; पर वे यह भेद न जानैं कि ये हमारे घर नहीं और पल भर में सब को वहाँ ले पहुँचा ।

इतनी बात के सुनते ही जा विश्वकर्मा ने समुद्र के बीच सुदर्शन के ऊपर बारह येाजन का नगर जैसा श्रीकृष्ण ने कहा था तैसा ही रात भर में बनाय उसका नाम द्वारका रख आ हरि से कहा—फिर प्रभु ने उसे आज्ञा दी कि इसी समय तू सब

यदुबंशियों को वहाँ पहुँचाय दे, कि कोई यह भेद न जाने कि हम कहाँ आये और कौन ले आया।

इतना बचन प्रभु से जो निकला तो रातों रात ही उग्रसेन बसुदेव समेत बिश्वकर्मा ने सब यदुबंशियों को ले पहुँचाया। और श्रीकृष्ण बलराम भी वहाँ पधारे। इस बीच समुद्र की लहर का शब्द सुन यदुबंशी चौंक पड़े। और अति अचरज कर आपस में कहने लगे कि मथुरा में समुद्र कहाँ से आया, यह भेद कुछ जाना नहीं जाता।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, पृथ्वीनाथ! ऐसे यदुबंशियों को द्वारका में बसाय श्रीकृष्णचन्द्र ने बलदेव जी से कहा कि भाई! अब चल कर प्रजा की रक्षा कीजै और कालयबन का बध। इतना कह दोनों भाई वहाँ से चल ब्रजमंडल में आये।

५२—यमन मरण, मुचकुन्द तरण

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि, महाराज! ब्रजमण्डल में आते ही श्रीकृष्णचन्द्र ने बलराम जी को मथुरा में छोड़ा और आप रूपसागर, जगतउजागर, पीताम्बर पहिने, पीतपट ओढ़े, सब शृंगार किये कालयबन के दल में जाय उसके सन्मुख हो निकले। वह इन्हें देखते ही अपने मन में कहने लगा कि हो न हो यही कृष्ण है। नारद मुनि ने जो चिह्न बताये थे, सो सब इसमें पाये जाते हैं। इसी ने कंसादि असुर मारे जरासन्ध की सब सेना हनी, ऐसे मन ही मन बिचार,

चौ० कालयबन यों कहै पुकारि। काहे भागे जात मुरारि॥
आय परयो अब मोसों काम। ठाढ़े रहो करों संग्राम॥
जरासन्ध हौं नाहीं कंस। यादबकुल को करों बिध्वंस॥

हे राजा ! यों कह कालयवन अति अभिमान कर अपनी सब सेना को छोड़ अकेला श्रीकृष्णचन्द्र के पीछे धाया, पर उस मूर्ख ने प्रभु का भेद न पाया। आगे आगे तो हरि भागते जाते थे, और एक हाथ के अन्तर से पीछे पीछे वह दौड़ा जाता था। निदान भागते भागते जब बहुत दूर निकल गये, तब प्रभु एक पहाड़ की गुफा में बढ़ गये, वहाँ जा देखैं तो एक पुरुष सोया पड़ा है, ये झट अपना पीताम्बर उसे उढ़ाय आप अलग एक ओर छिप रहे। पीछे से कालयवन भी दौड़ता हाँफता उस अति अँधेरी कन्दरा में जा पहुँचा, और पीताम्बर ओढ़े उस पुरुष को सोता देख इसने जी में जाना कि यह कृष्ण ही छल कर सो रहा है।

महाराज ! ऐसे मन ही मन विचार क्रोध कर सोते हुए को एक लात मार कालयवन बोला—अरे कपटी ! क्या मिसकर साधु की भाँति निश्चिन्ताई से सो रहा है ? उठ मैं तुझे अबहीं मारता हूँ, यों कह इसने उसके ऊपर से पीताम्बर झटक लिया। वह नींद से चौंक पड़ा और उसने जो इसकी ओर क्रोध कर देखा तो वह जल बल कर भस्म हो गया। इतनी बात के सुनते ही राजा परीक्षित ने कहा :—

चौ० यह शुकदेव कहो समझाय। को वह रह्यो कन्दरा जाय॥
ताकी दृष्टि भस्म क्यों भयो। कौने वाहि महाबर दयो॥

श्रीशुकदेव मुनि बोले—पृथ्वीनाथ ? इक्ष्वाकुवंशी क्षत्री मान-धाता के बेटा मुचकुन्द अति बली महा प्रतापी जिसका अति दल दलन यश छाय रहा नव खंड। एक समय सब देवता असुरों के सताये, निपट घबराये मुचकुन्द के पास आये, और अति दीनता कर उन्होंने कहा—महाराज ! असुर बहुत बढ़े, अब तिनके हाथ से बच नहीं सकते, बेग हमारी रक्षा करो। यह रीति परम्परा से

चली आई है कि जब जब सुर मुनि ऋषि अबल हुये हैं तब तब उनकी सहायता क्षत्रियों ने करी है।

इतनी बात के सुनते ही मुचकुन्द उनके साथ हो लिया और जाके असुरों से युद्ध करने लगा। इसमें लड़ते लड़ते कितने ही युग बीत गये। तब देवताओं ने मुचकुन्द से कहा कि महाराज! आपने हमारे लिये बहुत परिश्रम किया, अब कहीं बैठ बिश्राम लीजिये, और देह को सुख दीजिये।

चौपाई

बहुत दिननि कीनों संग्राम। गयो कुटुम्ब राज धन धाम॥
रह्या न कोऊ तहाँ तिहारो। तातें अब निज घर पग धारो॥

और जहाँ तुम्हारा मन माने तहाँ जाओ। यह सुन मुचकुन्द ने देवताओं से कहा—कृपानाथ! मुझे कहीं कृपा कर ऐसी एकान्त ठौर बतलाइये कि जहाँ जाय मैं निश्चिन्ताई से सोऊँ, और कोई न जगावे। इतनी बात के सुनते ही प्रसन्न हो देवताओं ने मुचकुन्द से कहा कि महाराज! आप धौला गिरि पर्वत की कन्दरा में जाय शयन कीजिये, वहाँ तुम्हें कोई न जगावेगा और जो कोई जाने अनजाने वहाँ जाके तुम्हें जगावेगा तो वह देखते ही तुम्हारी दृष्टि से जल बल राख हो जावेगा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा से कहा कि महाराज! ऐसे देवताओं से बर पाय मुचकुन्द उस गुफा में सोय रहा था। इससे उसकी दृष्टि पड़ते ही कालयवन जल कर छार हो गया। आगे करुणा निधान कान्ह भक्तहितकारी ने मेघवर्ण, चन्द्रमुख, कमल नयन, चतुर्भुज हो, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल, बनमाल और पीताम्बर पहरे मुचकुन्द को दर्शन दिया। प्रभु का स्वरूप देखते ही वह साष्टांग

प्रणाम कर खड़ा हो हाथ जोड़ बोला कि—कृपानाथ ! जैसे आपने इस महा अँधेरी कन्दरा में आय उजाला कर तम दूर किया। तैसे दया कर अपना नाम भेद बताय मेरे मन का भी भ्रम दूर कीजै।

कृष्णचन्द्र बोले कि मेरे तो जन्म कर्म गुण हैं बहुत घने वे किसी भाँति गिने न जायँ कोई कितना ही गिने ; पर मैं इस जन्म का भेद कहता हूँ सो सुनो, कि अब के बसुदेव के यहाँ जन्म लिया इससे बासुदेव मेरा नाम हुआ। और मथुरा पुरी में सब असुरों समेत कंस को मैंने ही मार भूमि का भार उतारा और सत्रह बार तेईस तेईस अक्षौहिणी सेना ले जरासन्ध युद्ध करने को चढ़ आया, सो भी मुझसे हारा। और यह कालयमन तीन करोड़ म्लेच्छ की भीड़ भाड़ ले लड़ने को आया था, सो तुम्हारी दृष्टि से जल मरा। इतनी बात प्रभु के मुख से निकलते ही सुन कर मुचकुन्द को ज्ञान हुआ तो बोला कि—महाराज ! आपकी माया अति प्रबल है, उसने संसार को मोहा है इसी से किसी की कुछ सुधि बुधि ठिकाने नहीं रहती।

चौ० करत कर्म सब सुख के हेत। तातें भारी दुख सहि लेत॥

दो० चुभें हाड़ ज्यों श्वान मुख, रुधिर चचोरे आप।
जानत ताही तें चुबत, सुख मानत संताप॥

और महाराज ! जो इस संसार में आया है सो गृहरूपी अंध-कूप से बिन आपकी कृपा निकल नहीं सकता। इससे मुझे भी चिन्ता है कि मैं कैसे गृहरूप कूप से निकलूँगा ? श्रीकृष्ण जी बोले—सुन मुचकुन्द ! बात तो ऐसी ही है जैसे तूने कही ; पर मैं तेरे तरने का उपाय बता देता हूँ सो तू कर तैंने राज पाय भूमि धन स्त्री के लिये अधिक अधर्म किये हैं सो बिन तप किये न छूटेंगे ! इससे उत्तर दिशा में जाय तपस्या कर यह

अपनी देह छोड़ फिर ऋषि के जन्म लेगा, तब तू मुक्ति पदार्थ पावेगा। महाराज ! इतनी बात जो मुचकुन्द ने सुनी तो जाना कि अब कलयुग आया। यह समझ प्रभु से बिदा हो दण्डवत् कर परिक्रमा दे मुचकुन्द तो बद्रीनाथ को गया, और श्रीकृष्णचन्द्र जो ने मथुरा में आय बलराम जी से कहा।

चौ० कालयवन का कियो निकंद। बदरी बन पठयो मुचकुन्द॥
कालयवन की सेना घनी। तिन घेरी मथुरा अपनी॥
आव बहुत हौं म्लेच्छन मारैं। सकल भूमि को भार उतारैं॥

ऐसे कह हलधर को साथ ले श्रीकृष्णचन्द्र मथुरा पुरी से निकल वहाँ आये, जहाँ कालयवन का कटक खड़ा था और आते ही दोनों उनसे युद्ध करने लगे। निदान लड़ते लड़ते जब म्लेच्छ की सेना प्रभु ने सब मारी तब बलदेव जी से कहा कि भाई ! मथुरा की सब सम्पत्ति ले द्वारका को भेज दीजै, बलराम जी बोले—बहुत अच्छा। तब बलराम जी ने मथुरा का सब धन निकलवा भैंसों, छकड़ों, ऊँटों, हाथियों पर लदाय द्वारका को भेज दिया। इस बीच फिर जरासंध तेईस ही अक्षौहिणी सेना ले मथुरा पुरी पर चढ़ आया। तब श्रीकृष्ण बलराम अति घबराय के निकले, तो उसके सन्मुख जा दिखाई दे उसके मन का संताप मिटाने को भाग चले। तब मंत्री ने जरासन्ध से कहा कि महाराज ! आपके प्रताप के आगे ऐसा कौन बली है जो ठहरे, देखो वे दोनों भाई कृष्ण बलराम, छोड़ के सब धन धाम, लेके अपना प्राण, तुम्हारे त्रास के मारे नंगे पाँव भगे चले जाते हैं। इतनी बात मंत्री से सुन जरासंध भी यों पुकार कर कहता हुआ, सेना ले उनके पीछे दौड़ा।

चौ० काहे डरके भागे जात। ठाढ़े रहो करो कुछ बात॥
परत उठत कंपत क्यों भारी। आई है ढिग मीच तिहारी॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—पृथ्वीनाथ! जब श्रीकृष्ण और बलदेव जी ने भाग के लोकरीति दिखाई, तब जरासंध के मन का पिछला सब शोक गया। और अति प्रसन्न हुआ, ऐसा कि जिसका कुछ वर्णन नहीं किया जाता। आगे श्रीकृष्ण बलराम जी भागते भागते गोमंत नाम पर्वत पर जो ग्यारह योजन ऊँचा था चढ़ गये, और उसकी चोटी पर आय खड़े भये।

चौ० देख जरासंध कहै पुकारि। शिखर चढ़े बलभद्र मुरारि॥
अब किमि हमसों जायँ पलाय। या पर्वत को देहुँ जलाय॥

इतना बचन जरासंध के मुख से निकलते ही सब असुरों ने उस पहाड़ को जा घेरा। और नगर नगर गाँव गाँव से काठ कबाड़ लाय लाय उसके चारों ओर चुन दिया। तिस पर गड़ गूदड़ घी तेल से भिगोय डालकर आग लगा दी। जब वह आग पर्वत की चोटी तक लहकी, तब उन दोनों भाइयों ने वहाँ से इस भाँति द्वारका की बाट ली कि किसी ने उन्हें जाते भी न देखा, और पहाड़ जल कर भस्म हो गया। उस काल जरासन्ध श्रीकृष्ण बलराम को उस पर्वत के संग जल मरा जान अति सुख मान सब दल साथ ले मथुरा पुरी में आया। और वहाँ का राज्य ले नगर में ढिंढोरा दे उसने अपना थाना बैठाया। जितने उग्रसेन बसुदेव के पुराने मन्दिर थे सो सब ढहवाये और उसने आप अपने नये बनवाये।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा से कहा कि महाराज! इस रीति से जरासन्ध को धोखा दे, श्रीकृष्ण बलराम जी तो द्वारका में जाय बसे और जरासन्ध भी मथुरा नगरी से चल सब सेना ले अति आनन्द करता निश्शंक हो, अपने घर आया।

५३—श्रीकृष्ण प्रति रुक्मिणी संदेश

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि, महाराज ! अब आगे कथा सुनिये कि, जब कालयवन को मार, मुचकुन्द को तार, जरासन्ध को धोखा दे, बलदेव जी को साथ ले श्रीकृष्ण आनन्द कंद जो द्वारका में गये तो सब यदुबंशियों के जी में जी आया और सारे नगर में सुख छाया। सब चैन आनन्द से पुरबासी रहने लगे, इसमें कितने एक दिन पीछे एक दिन, कई एक यदुबंशियों ने राजा उग्रसेन से जा कहा कि—महाराज ! अब कहीं बलराम जी का बिवाह किया चाहिये क्योंकि ये समर्थ हुये। इतनी बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने एक ब्राह्मण को बुलाय अति समझाय बुझाय के कहा—कि देवता ! तुम कहीं जाकर अच्छा कुल घर देख, बलराम जी की सगाई कर आओ। इतना कह रोली, अक्षत, रुपया, नारियल, मँगवाया। उग्रसेन जी ने उस ब्राह्मण के तिलक कर रुपया नारियल दे बिदा किया। वह चला चला आनर्त्त देश में राजा रैवत के यहाँ गया और उसकी कन्या रेवती से बलराम जी की सगाई कर लग्न ठहराय उसके ब्राह्मण के साथ टीका लिखाय द्वारका में राजा उग्रसेन के पास ले आया। और उसने वहाँ का सब ब्योरा कह सुनाया, सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति प्रसन्न हो उस ब्राह्मण को बुलाय जो टीका ले आया था मंगलाचार करवाय टीका लिया और उसे बहुत सा धन दे बिदा किया। पीछे आप सब यदुबंशियों को साथ ले बड़ी धूमधाम से आनर्त्त देश में जाय बलराम जी का व्याह कर लाये।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि ने राजा से कहा कि, पृथ्वीनाथ ! इस रीति से तो सब यदुबंशी बलदेव जी का बिवाह कर लाये और श्रीकृष्णचन्द्र आप ही भाई को साथ ले कुण्डिनपुर

में जाय भीष्मक नरेश की बेटी रुक्मिणी, शिशुपाल की माँग को राक्षसों से युद्ध कर छीन लाये, उसे घर में लाय व्याह किया। यह सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूँछा कि, कृपासिन्धु! भीष्मक सुता रुक्मिणी को श्रीकृष्णचन्द्र कुण्डिनपुर में जाय असुरों को मार किस रीति से लाये? सो तुम समझा कर कहो। श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! आप मन लगाय सुनिये मैं सब भेद वहाँ का समझा कर कहता हूँ, कि विदर्भ देश में कुंडिनपुर नाम एक नगर है; तहाँ भीष्मक नाम नरेश, जिसका यश छाय रहा चहुँ देश, उनके घर में जाय सीता जी ने अवतार लिया, कन्या के होते ही राजा भीष्मक ने ज्योतिषियों को बुलाय भेजा इन्होंने आय लग्न साध उस लड़की का नाम रुक्मिणी धर कर कहा कि—महाराज! हमारे विचार में ऐसा आता है कि यह कन्या अति सुशील स्वभाव रूपनिधान गुणों में लक्ष्मी समान होगी, और आदि पुरुष से व्याही जायगी।

इतना बचन ज्योतिषियों के मुख से निकलते ही राजा भीष्मक ने अति सुख मान बड़ा आनन्द किया, और बहुत सा कुछ ब्राह्मणों को दिया। आगे वह लड़की चंद्रकला की भाँति दिन दिन बढ़ने लगी और बाल लीला कर माता पिता को सुख देने लगी। इसमें कुछ बड़ी हुई तो लगी सखी सहेलियों के साथ अनेक अनेक प्रकार के अनूठे अनूठे खेल खेलने। एक दिन वह मृगनयनी, पिकबयनी, चम्पक बरणी, चंद्रमुखी, सखियों के संग आँख मिचौनी खेलने गई। तो खेलती समय सब सखियाँ उससे कहने लगीं कि रुक्मिणी तू हमारा खेल खोने को आई है, क्योंकि जहाँ तू हमारे साथ अँधेरे में छिपती है तहाँ तेरे मुखचन्द्र की ज्योति से चाँदनी हो जाती है, इससे हम छिप नहीं सकतीं, यह सुन वह हँस कर चुप हो रही।

इतनी कथा कह शुकदेव जी ने कहा कि, महाराज ! इसी भाँति वह सखियों के संग खेलती थी, और दिन दिन छवि उसकी दूनी होती थी, कि इस बीच एक दिन नारद जी कुंडिनपुर में आय, रुक्मिणी को देख, श्रीकृष्णचन्द्र के पास द्वारका में जाय, उन्होंने कहा कि महाराज ! कुंडिनपुर में राजा भीष्मक के घर एक कन्या रूप गुण शील की खान, लक्ष्मी समान जन्मी है, सो तुम्हारे योग्य है। यह भेद जब नारद मुनि से सुनि पाया तभी से रात दिन हरि ने अपना मन उस पर लगाया। महाराज ! इसी रीति करके तो श्रीकृष्णचन्द्र ने रुक्मिणी का नाम गुण सुना; और जैसे रुक्मिणी ने प्रभु का नाम यश सुना सो कहता हूँ, कि एक समय देश देश के कितने एक याचकों ने जाय कुंडिनपुर में श्रीकृष्णचन्द्र का यश गाय गाय जैसे प्रभु ने मथुरा में जन्म लिया, और गोकुल में वृन्दाबन में जाय ग्वालबालों के संग बाल चरित्र किया, और असुरों को मार भूमि का भार उतार यदुवंशियों को सुख दिया था, तैसे ही गाय सुनाया। हरि के चरित्र सुनते ही सब नगर निवासी अति आश्चर्य कर आपस में कहने लगे, कि जिनकी लीला हमने कानों सुनी तिन्हें कब नयनों से देखेंगे ? इसी बीच याचक किसी ढब से राजा भीष्मक की सभा में जाय प्रभु के चरित्र और गुण गाने लगे उस काल :—

चौ० चढ़ी अटा रुक्मिणी सुन्दरी। हरि चरित्र धुनि श्रवणन परी॥
अचरज करे भूलि मन रहै। फेर उझक कर देखन चहै॥
सुनि के कुँवरि रही मन लाय। प्रेम-लता उर उपजी आय॥
भई मगन बिह्वल सुन्दरी। वाकी सुधि बुधि हरि गुण हरी॥

यों कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, पृथिवीनाथ ! इसी भाँति रुक्मिणी ने प्रभु का यश और नाम सुना तौ उसी दिन से रात

दिन आठ पहर और साठ घड़ी सोते, जागते, बैठे, खड़े, चलते, फिरते, खाते, पीते, खेलते, उन्हीं का ध्यान किये रहे और गुण गाया करे। नित भोर ही उठ स्नान कर मट्टी की गौरी बनाय रोली, अक्षत, पुष्प चढ़ाय, धूप दीप नैवेद्य कर, मनाय, हाथ जोड़ शिर नाय उनके आगे कहा करे।

चौ० मोपैं गौरि कृपा तुम करौ। यदुपति दे मम सब दुख हरौ॥

इसी रीति से सदा रुक्मिणी जी रहने लगीं। एक दिन सखियों के संग खेलती थीं, कि राजा भीष्मक उसे देख अपने मन में चिन्ता कर कहने लगा कि, अब यह हुई कन्या व्याहने योग, इसे कहीं न दीजे तो हँसेंगे लोग। कहा है जिसके घर में कन्या बड़ी होय तिसका दान, पुण्य, जप, तप, करना वृथा है। क्योंकि किये से तब तक कुछ धर्म नहीं होता, जब तक कन्या के ऋण से न उऋण होय। यों विचार राजा भीष्मक अपनी सभा में आय सब मंत्री और कुटुम्ब के लोगों को बुलाय बोला—भाइयो! कन्या व्याहन योग्य हुई, इसके लिये कुलवान, गुणवान, रूपनिधान, शीलवान, कहीं बर ढूँढ़ा चाहिये।

इतनी बात के सुनते ही उन लोगों ने अनेक अनेक देशों के नरेशों के कुल गुण रूप और पराक्रम कह सुनाये, पर राजा भीष्मक के चित्त में किसी की बात कुछ न आई। तब उनका बड़ा बेटा जिसका नाम रुक्म सेा कहने लगा कि पिता नगर चँदेली का राजा शिशुपाल अति बलवान् है, और सब भाँति से हमारी समान। तिससे रुक्मिणी की सगाई वहाँ कीजै, और जगत में यश लीजै, महाराज! जब उसकी भी बात राजा ने सुनी अनसुनी की। तब तो रुक्मकेश नाम उसका छोटा लड़का बोला :—

चौ० रुक्मिणि पिता कृष्ण को दीजै! बासुदेव सेा नाता कीजै ॥
यह सुनि भीष्मक हरषे गात। कही पूत तैं नीकी बात ॥
तू बालक सब सेा अति ज्ञानी। तेरी बात भली हम जानी ॥

दो० छोटे बड़े सों पूँछ के, कीजै मन परतीत।
सार बचन गहि लीजिये, यही जगत की रीति ॥

ऐसे कह फिर राजा भीष्मक बोला कि यह तो रुक्मकेश ने भली बात कही। यदुबंशियों में राजा शूरसेन बड़े यशस्वी और प्रतापी हुए तिनहीं के पुत्र बसुदेव जी हैं। सेा कैसे हैं, कि जिनके घर में आदि पुरुष अविनाशी सकल देवन के देव श्रीकृष्णचन्द्र जी ने जन्म ले महाबली कंसादिक राक्षसों को मारा, और भूमि का भार उतार यदुकुल को उजागर किया और सब यदुबंशियों समेत प्रजा को सुख दिया। ऐसे जो द्वारकानाथ श्रीकृष्णचन्द्र जी को रुक्मिणी दें, तो जगत में यश और बड़ाई लें। इतनी बात के सुनते ही सब सभा के लोग अति प्रसन्न हो बोले कि, महाराज! यह तो तुमने भली विचारी ऐसा बर घर और कहीं न मिलेगा। इससे उत्तम यही है कि श्रीकृष्णचन्द्र ही को रुक्मिणी ब्याह दीजै, महाराज! जब सब सभा के लोगों ने यों कहा—तब राजा भीष्मक का बड़ा बेटा जिसका नाम रुक्म सेा सुन निपट झुँझलाय के बोला।

चौ० समझ न बोलत महा गँवार। जानत नहीं कृष्ण व्यौहार ॥
सोरह वर्ष नन्द के रह्यो। तब अहीर सब काहू कह्यो ॥
कामरि ओढ़ी गाय चराई। बन में बैठ छाक तिन खाई ॥

वह तो गँवार ग्वाल है उसकी जाति पाँति का क्या ठिकाना और जिसके माँ बाप ही का भेद नहीं जाना जाता उसे हम पुत्र किसका कहैं? कोई नन्द गोप का जानता है, कोई बसुदेव का

कर मानता है, पर आज तक यह भेद किसी ने न पाया कि कृष्ण किसका बेटा है। इसी से जो जिसके मन में आता सो गाता है। महाराज ! हमें सब कोई जानता है, और यदुवंशी राजा कब भये क्या हुआ जो थोड़े दिनों से बढ़ कर उन्होंने बड़ाई पाई, पहिला कलङ्क तो अब न छूटेगा। यह उग्रसेन का चाकर कहाता है, उससे सगाई कर क्या हम कुछ संसार में यश पावेंगे। कहा है व्याह बैर और प्रीति समान से करिये तो शोभा पाइये। और जो कृष्ण को देंगे तो लोग कहेंगे ग्वाल का साला, तिससे सब जायगा नाम यश हमारा।

महाराज ! यों कह फिर रुक्म बोला कि नगर चँदेली का राजा शिशुपाल बड़ा बली और प्रतापी है। उसके डर से सब थर थर काँपते हैं, और परम्परा से उनके घर में राजगद्दी चली आती है। इससे अब उत्तम यही है कि रुक्मिणी उसी को दीजै, और मेरे आगे फिर कृष्ण का नाम भी न लीजै। इतनी बात के सुनते ही सब सभा के लोग मारे डर के मन ही मन पछताय पछताय के चुप हो रहे, और राजा भीष्मक भी कुछ न बोला। इसमें रुक्म ने ज्योतिषियों को बुलाय, शुभ दिन लग्न ठहराय, एक ब्राह्मण के हाथ राजा शिशुपाल के यहाँ टीका भेज दिया। वह ब्राह्मण टीका लिये चला चला नगर चँदेली में जाय राजा शिशुपाल की सभा में पहुँचा। देखते ही राजा ने प्रणाम कर जब ब्राह्मण से पूँछा, कहो देवता ! आपका आना कहाँ से हुआ और यहाँ किस मनोरथ के लिये आये ? तब तो उस विप्र ने अशीश दे अपने आने का सब ब्योरा कहा। सुनते ही प्रसन्न हो राजा शिशुपाल ने अपना पुरोहित बुलाय टीका लिया, और सब ब्राह्मण को बहुत कुछ दे बिदा किया। पीछे जरासन्ध आदि सब देश देश के नरेशों को न्योत बुलाया, वे सब अपने

अपने दल ले आये। तब यह भी अपना सब कटक ले व्याहन चला। उस ब्राह्मण ने जो टीका ले गया था, आ राजा भीष्मक से कहा कि, महाराज! मैं राजा शिशुपाल को टीका दे आया। वह बड़ी धूमधाम से बरात ले व्याहने को आता है, आप अपना कार्य्य कीजै।

यह सुन राजा भीष्मक पहिले तो निपट उदास हुये, पीछे कुछ सोच समझ मन्दिर में जाय उन्होंने पटरानी से कहा। वह सुन कर लगी मङ्गलामुखी और कुटुम्ब की नारियों को बुलाय, मङ्गलाचार करवाय, व्याह की सब रीति भाँति करने। फिर राजा ने बाहर आ प्रधान और मंत्रियों को आज्ञा दी कि कन्या के विवाह में हमें जो जो वस्तु चाहिये सो सो सब इकट्ठी करो। राजा की आज्ञा पाते ही मंत्री और प्रधानों ने सब वस्तु बात की बात में बनवाय मँगवाय लाय धरीं। लोगों ने देखा सुना तो यह चर्चा नगर में फैली कि रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण-चन्द्र से होता था, सो दुष्ट रुक्म ने न होने दिया, अब शिशुपाल से होगा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि पृथ्वीनाथ! नगर में तो घर घर यह बात हो रही थी, और राजमन्दिर में नारियाँ गाय बजाय के रीति भाँति करती थीं, ब्राह्मण वेद पढ़ पढ़ टेहले करवाते थे, ठौर ठौर दुन्दुभी बजाते थे, द्वार द्वार सपल्लव केले के खम्भ गाड़ सोने के कलश भर भर लोग धरते थे, और तोरण बंदनवारैं बाँधते थे, और एक ओर नगर निवासी न्यारे ही हाट बाट चौहट्टे झाड़ बुहार पट से पाटते थे, इसी भाँति घर और बाहर में धूम मच रही थी कि उसी समय दो चार सखियों ने जा रुक्मिणी से कहा :—

चौ० तोहि रुक्म शिशुपालहि दई। अब तू रुक्मिणी रानी भई॥
बोली शोच नाय कर शीश। मन बच मेरे प्रण जगदीश॥

इतनी बात कह रुक्मिणी ने अति चिन्ता कर एक ब्राह्मण को बुलाय हाथ जोड़ उसकी बहुत सी बिनती और बड़ाई कर अपना मनोरथ सब सुना के कहा कि महाराज मेरा सन्देश द्वारका ले जाओ, और द्वारकानाथ को सुनाय उन्हें साथ ले आओ। तो मैं तुम्हारा बड़ा गुण मानूँगी कि तुमने ही दया कर मुझे श्रीकृष्ण बर दिया।

इतनी कथा सुनते ही वह ब्राह्मण बोला—अच्छा तुम संदेशा कहो मैं ले जाऊँगा, और श्रीकृष्णचन्द्र को सुनाऊँगा। वे कृपानाथ हैं, जो कृपाकर मेरे संग आवेंगे तो ले आऊँगा। इतना बचन जो ब्राह्मण के मुख से निकला, त्योंही रुक्मिणी जी ने एक पाती प्रेमरँगराती लिख उसके हाथ दी और कहा कि श्री-कृष्णचन्द्र आनन्द कंद को पाती दे, मेरी ओर से कहियो कि उस दासी ने कर जोड़ अति बिनती कर कहा है, जो आप अन्तर्यामी हैं, घट घट जानते हैं अधिक क्या कहूँगी मैंने तुम्हारी शरण ली है अब मेरी लाज तुम्हें है जिसमें रहे सो कीजे; और इस दासी को आय बेग दर्शन दीजे।

महाराज! ऐसे कह सुन रुक्मिणी जी ने उस ब्राह्मण को बिदा किया, तब वह प्रभु का ध्यान कर नाम लेता द्वारका को चला। और हरि इच्छा से बात के कहते जा पहुँचा। वहाँ जाय देखा तो समुद्र के बीच वह पुरी है जिसके चहुँ ओर बड़े बड़े पर्वत और उपवन शोभा दे रहे हैं तिसमें भाँति भाँति के पशु पक्षी बोल रहे हैं, और निर्मल जल भरे सुथरे सरोवर उनमें कमल डहडहाय रहे, उन पर भौंरों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे, और तिसपै हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे, कोसों तक अनेक अनेक प्रकार के फल

फूलों की बाड़ियाँ चली गई हैं। तिनकी बाड़ों पर पनवाड़ियाँ लहलहा रही हैं। बावली इन्दारों पर खड़े मीठे मीठे स्वरों से गाय गाय माली रहट परोहे चलाय चलाय ऊँचे नीचे सींच रहे हैं, और पनघटों पर पनहारियों के ठट्ट लगे हुए हैं।

यह छबि निरख हरष वह ब्राह्मण जो वहाँ आया तो देखता क्या है कि, नगर के चारों ओर अति ऊँचा कोट उसमें चार फाटक तिनमें कञ्चन खचित जड़ाऊ केवाड़ लगे हुए हैं। और पुरी के भीतर चाँदी सोने के मणिमय पचखने, सतखने, मन्दिर ऊँचे ऐसे कि आकाश से बातें करें जगमगाय रहे हैं। तिनके कलश कलशियाँ बिजली सी चमकती हैं। वर्ण वर्ण की ध्वजा पताका फहराय रही हैं। खिड़की, झरोखों, जालियों से सुगन्ध की लपटें आय रही हैं। द्वार द्वार सपल्लव केले के खम्भ और कञ्चन कलश भरे धरे हैं। तोरण बन्दनवारें बँधी हुई हैं, और घर घर आनन्द के बाजन बज रहे हैं। ठौर ठौर कथा पुराण में हरि-चर्चा हो रही है। अठारह वर्ण सुख चैन से बास करते हैं। सुदर्शनचक्र पुरी की रक्षा करता है।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! ऐसी जो सुन्दर सुहावनी द्वारकापुरी तिसे देखता देखता वह ब्राह्मण राजा उग्रसेन की सभा में जा खड़ा हुआ, और अशीश कह वहाँ उसने पूँछा कि श्रीकृष्णचन्द्र जी कहाँ बिराजते हैं। तब किसी ने इसे हरि का मन्दिर बताय दिया, यह जो द्वार पर जाय खड़ा हुआ तो द्वारपालों ने इसे देख दण्डवत् कर पूँछा :—

चौ० को हौ आप कहाँ ते आये। कौन देश की पाती लाये॥

यह बोला ब्राह्मण हूँ, कुण्डिनपुर का रहने वाला राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी उसकी चिट्ठी श्रीकृष्णचन्द्र को

देने आया हूँ। इतनी बात के सुनते ही पैरियों ने कहा, महाराज! आप मन्दिर में पधारिये श्रीकृष्णचन्द्र सोंहीं सिंहासन पर बिराजते हैं। यह बचन सुन ब्राह्मण जो भीतर गया तो हरि ने देखते ही सिंहासन से उतर दण्डवत् कर अति आदर मान किया, और सिंहासन पर बिठाय चरण धोय चरणामृत लिया, और ऐसी सेवा करने लगे जैसे कोई अपने इष्ट की सेवा करे। निदान प्रभु ने सुगन्ध उबटन लगाय, नहलाय, धुलाय, पहले तो उसे षट्रस भोजन करवाय, पीछे बीड़ा दे केसर चन्दन से चरचे फूलों की माला पहराय, मणिमय मन्दिर में ले जाय, एक सुथरे जड़ाऊ छपर खट में लिटाया। महाराज! वह भी बाट का हारा थका तो था ही लेटते ही सुख पाय सो गया श्रीकृष्णचन्द्र जी कितनी एक बेर तक तो उसकी बातैं सुनने की अभिलाषा किये वहाँ बैठे मन ही मन कहते रहे कि अब उठे अब उठे निदान जब देखा कि न उठा, तब आतुर हो उसके पैताने बैठ लगे पाँव दबाने। इसमें उसकी नींद टूटी तो वह उठ बैठा, तब हरि ने उसकी क्षेम कुशल पूँछ पूँछा :—

चौ० नीको राज देश तुम तनो। हमसों भेद कहो तुम अपनो॥
कौन काज इत आवन भयो। दर्श दिखाइ हमें सुख दयो॥

ब्राह्मण बोला कि, कृपानिधान! आप मन दे सुनिये, मैं अपने आने का कारण कहता हूँ कि, महाराज! कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की कन्या ने जब से आपका नाम और गुण सुना है, तभी से वह निशि दिन तुम्हारा ध्यान किये रहती है, और चरण कमल की सेवा किया चाहती थी और संयोग भी आय बना था, पर बात बिगड़ गई। प्रभु बोले सो क्या? ब्राह्मण ने कहा—दीन दयाल! एक दिन राजा भीष्मक ने अपने सब कुटुम्ब और सभा के लोगों को बुलाय के कहा कि, भाइयो! कन्या ब्याहन योग्य

भई अब इसके लिये बर ठहराना चाहिये ! इतना बचन राजा के मुख से निकलते ही उन्होंने अनेक अनेक राजाओं का कुल, गुण, नाम और पराक्रम कह सुनाया, पर इनके मन में न आया। तब रुक्मकेश ने आपका नाम लिया तो प्रसन्न हो राजा ने उसका कहना मान लिया और सब से कहा कि, भाइयो ! मेरे मन में तो इसकी बात पत्थर की लकीर हो चुकी, तुम क्या कहते हो ? ये बोले—महाराज ! ऐसा घर बर जो तीनों लोक भर में ढूँढ़ियेगा तो भी न पाइयेगा। इससे अब उचित यही है कि बिलम्ब न कीजे, श्रीकृष्णचन्द्र से रुक्मिणी का बिबाह कर दीजे। महाराज ! यह बात ठहर चुकी थी। इसमें रुक्म ने भाँजी मार रुक्मिणी की सगाई शिशुपाल से की, अब वह सब असुर दल साथ ले ब्याहने को चढ़ा है।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि, पृथ्वीनाथ ! ऐसे उस ब्राह्मण ने सब समाचार कह रुक्मिणी जी की चिट्ठी हरि के हाथ दी, प्रभु ने अतिहित से पाती ले छाती से लगाय ली, और पढ़ कर प्रसन्न हो ब्राह्मण से कहा—देवता ! तुम किसी बात की चिन्ता मत करो मैं तुम्हारे साथ चल असुरों को मार उनका मनोरथ पूरा करूँगा। यह सुन ब्राह्मण को तो धीर्य हुआ, पर हरि रुक्मिणी का ध्यान कर चिन्ता करने लगे।

५४—रुक्मिणी-हरण

श्रीशुकदेव जी बोले कि हे, राजा ! श्रीकृष्णचन्द्र ने ऐसे उस ब्राह्मण को ढाढ़स बँधाय फिर कहा :—

दो० जैसे घिस के काठते, काढ़हि ज्वाला जारि।
ऐसे सुन्दरि ल्यायहौं, दुष्ट असुर दल मारि॥

इतना कह फिर सुथरे वस्त्र आभूषण मन मानते पहन राजा उग्रसेन के पास जाय प्रभु ने हाथ जोड़ कर कहा—महाराज! कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक ने अपनी कन्या देने को पत्र लिख पुरोहित के हाथ मुझे अकेला बुलाया है, जो आप आज्ञा दें तो जाऊँ और उसकी बेटी ब्याह लाऊँ।

चौ० सुनकै उग्रसेन यों कहै। दूर देश कैसे मन रहै॥
तहाँ अकेले जात मुरारि। मत काहू सों उपजे रारि॥

तब तुम्हारे समाचार हमें यहाँ कौन पहुँचावेगा। यों कह उग्रसेन बोले कि अच्छा जो तुम वहाँ जाना चाहते हो तो अपनी सब सेना साथ ले दोनों भाई जाओ, और ब्याह कर शीघ्र चले आओ। वहाँ किसी से लड़ाई झगड़ा न करना, क्योंकि तुम चिरञ्जीव हो तो सुन्दरी बहुत आय रहेंगी। आज्ञा पाते ही श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, महाराज! तुमने सत्य कहा पर मैं आगे चलता हूँ, आप कटक समेत बलराम जी को पीछे से भेज दीजियेगा।

ऐसे कह कर उग्रसेन बसुदेव से बिदा हो उस ब्राह्मण के निकट आये और रथ समेत अपने दारुक सारथी को बुलवाया। वह प्रभु की आज्ञा पाते ही चार घोड़े का रथ तुरन्त जोत लाया। तब श्रीकृष्णचन्द्र उस पर चढ़े और ब्राह्मण को पास बिठाय द्वारका से कुण्डिनपुर को चले। जो नगर के बाहर निकले तो देखते क्या हैं कि दाहिनी ओर तो मृग के झुण्ड के झुण्ड चले जाते हैं। और सन्मुख से सिंह सिंहनी अपना भक्ष लिये गर्जते आते हैं। यह शुभ सगुन देख ब्राह्मण अपने जी में बिचार कर बोला कि, महाराज! इस समय इस शकुन के देखने से मेरे बिचार में यह आता है कि जैसे ये अपना काज साध के आते हैं, तैसे ही तुम भी अपना काज सिद्ध कर आवोगे। श्रीकृष्णचन्द्र

बोले कि आपकी कृपा से, इतना कह हरि वहाँ से बढ़े और नये नये देश नगर गाँव देखते देखते कुण्डिनपुर में जा पहुँचे। तो वहाँ देखा कि ठौर ठौर ब्याह का सामान जो संयोग धरा है तिससे नगर की छबि कुछ और की और ही हो रही है।

चौ० झारें गली चौहटे छावैं। चोवा चन्दन सों छिरकावैं॥
पेाय सुपारी झौरा किये। बिच बिच कनक नारियल दिये॥
हरे पात फल फूल अपार। ऐसी घर घर बन्दनवार॥
ध्वजा पताका तोरण तने। सुढब कलश कञ्चन के बने॥

और घर घर में आनन्द हो रहा है, महाराज! यह तो नगर की शोभा थी, और राजमन्दिर में जो कुतूहल हो रहा था, उसका वर्णन कोई क्या करे? वह देखते ही बने। आगे श्रीकृष्ण-चन्द्र ने सब नगर देख आ, राजा भीष्म की बाड़ी में डेरा किया, और शीतल छाँह में बैठ ठण्ढे हो उस ब्राह्मण से कहा कि, देवता! तुम पहिले हमारे आने का समाचार रुक्मिणी जी को जा सुनाओ, जो वे धीर्य्य धरें अपने मन का दुःख हरें। पीछे वहाँ का भेद हमें आ सुनाओ, जो हम फिर उसका उपाय करें। ब्राह्मण बोला कि कृपानाथ! आज ब्याह का पहिला दिन है, राजमन्दिर में बड़ी धूमधाम हो रही है। मैं जाता हूँ, पर रुक्मिणी जी को अकेली पाय आपके आने का भेद कहूँगा। यों सुनाय ब्राह्मण वहाँ से चला, महाराज! इधर से हरि तो यों चुपचाप अकेले पहुँचे और उधर राजा शिशुपाल जरासन्ध समेत असुर दल लिये इस धूमधाम से आया कि जिसका वारापार नहीं और इतनी भीड़ संग कर लाया कि जिसके बोझ से लगा शेषनाग डगमगाने और पृथ्वी उलटने। उसके आने की सुधि पाय राजा भीष्मक अपने मंत्री और कुटुम्ब के लोगों समेत आगू बढ़ लेने गये, और बड़े

आदर मान से आगेानी कर सबको पहरावनी पहरा रत्न-जटित वस्त्र आभूषण और हाथी घोड़े दे उन्हें नगर में ले आये और जनवासा दिया। फिर खाने पीने का समान किया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि, महाराज! अब मैं अन्तर कथा कहता हूँ आप चित्त लगाय सुनिये कि जब श्रीकृष्णचन्द्र द्वारका से चले, तिसी समय सब यदुवंशियों ने जाय राजा उग्रसेन से कहा कि, महाराज! हमने सुना है कि कुण्डिनपुर में राजा शिशुपाल जरासन्ध समेत सब असुर दल ले व्याहन आया है, और हरि अकेले गये हैं। इससे हम जानते हैं कि वहाँ श्रीकृष्ण जी से और उनसे युद्ध होगा। यह बात जान के भी हम अजान हो हरि को छोड़ यहाँ कैसे रहें, हमारा मन तो मानता नहीं आगे जेा आज्ञा कीजे सेा करैं।

इस बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति भय खाय घबराय बलराम जी को निकट बुलाय समझाय के कहा, कि तुम हमारी सब सेना ले श्रीकृष्ण के न पहुँचते शीघ्र कुण्डिनपुर जाओ, और उन्हें अपने संग कर ले आओ। राजा की आज्ञा पाते ही बलदेव जी छप्पन किरोड़ यादव जोड़ ले कुण्डिनपुर को चले, उस काल कटक के हाथी काले धौले धूमरे दल बादल से जनाते थे, और उनके श्वेत श्वेत दांत बकपाँति से, धौंसा मेघ सा गर्जता था, और शस्त्र बिजली से चमकते थे, राते पीले बागे पहिने घुड़चढ़ों के टोल के टोल जिधर तिधर दृष्टि आते थे; रथों के ताँतों के ताँते झमझमाते चले जाते थे, तिनकी शोभा निरख निरख हर्ष हर्ष देवता अति हित से अपने अपने विमानों पर बैठे आकाश से फूल बर्षाय बर्षाय श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द की जय मनाते थे। इस बीच सब दल लिये चले चले कुण्डिनपुर में हरि के पहुँचते ही बलराम जी भी जा पहुँचे। यों सुनाय फिर

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! श्रीकृष्णचन्द्र रूप सागर जगत उजागर तो इस भाँति कुण्डिनपुर पहुँच चुके थे, पर रुक्मिणी ने इनके आने का समाचार न पाया।

चौ० बिकल बदन चितवै चहुँ ओर। जैसे चन्द्र मलिन भये भोर॥
अति चिन्ता सुन्दरि जिय बाढ़ी। देखे ऊँच अटा पर ठाढ़ी॥
चढ़ि चढ़ि उझकै खिरकी द्वार। नयनन तें छाड़ै जलधार॥

दो० बिलख बदन अति मलिन मन, लेत उसास निसास॥
व्याकुल वर्षत नयन जल, शोचत कहति उदास॥

कि अब तक क्यों नहीं आये हरि, उनका तो नाम है अन्तर्य्यामी ऐसे मुझ से क्या चूक पड़ी जो अब लग उन्होंने मेरी सुधि न ली? क्या ब्राह्मण वहाँ नहीं पहुँचा? कै हरि ने मुझे कुरूप जान मेरी प्रीति की प्रतीति न करी, कै जरासन्ध का आना सुन प्रभु न आये, कल व्याह का दिन है और असुर आय पहुँचा? जो वह कल मेरा कर गहेगा तो यह पापी जीव हरि बिन कैसे रहेगा? जप, तप, नेम, धर्म्म, कुछ आड़े न आये, अब क्या करूँ और किधर जाऊँ, अपनी बरात ले आया शिशुपाल, कैसे बिरमे प्रभु दीनदयाल।

इतनी बात जब रुक्मिणी के मुँह से निकली तब एक सखी ने तो कहा कि दूर देश बिन पिता बन्धु की आज्ञा कैसे हरि आवैंगे, और दूसरी बोली कि जिनका नाम है अन्तर्य्यामी दीन-दयाल वे बिन आये न रहेंगे। रुक्मिणी ! तू धीर्य धर व्याकुल न हो, मेरा मन यह हामी भरता है कि अभी आय कोई यों कहता है कि हरि आये। महाराज ! ऐसे वे दोनों आपस में बतकहाव कर रही थीं, कि वैसे में ब्राह्मण ने जाय अशीश दे कहा कि, श्रीकृष्णचन्द्र जी ने आय राजबाड़ी में डेरा किया, और सब दल लिये

बलदेव जी पीछे से आते हैं। ब्राह्मण को देखते और इतनी बात के सुनते ही रुक्मिणी जी के जी में जी आया। और उन्होंने उस काल ऐसा सुख माना कि, जैसे तपी का तप का फल पाय सुख माने।

आगे श्रीरुक्मिणी जी हाथ जोड़ शिर झुकाय उस ब्राह्मण के सन्मुख कहने लगीं, कि आज तुमने आय हरि का आगमन सुनाय मुझे प्राणदान दिया। मैं इसके पलटे क्या दूँ? जो त्रिलोकी की माया दूँ तो भी तुम्हारे धन उऋण न हूँ, ऐसे कह मनमान सकुचाय रही। तब वह ब्राह्मण अति सन्तुष्ट हो आशीर्वाद कर वहाँ से उठ राजा भीष्मक के पास गया, और उसने श्रीकृष्ण के आने का ब्योरा सब समझा के कहा। सुनते प्रमाण राजा भीष्मक उठ धाया और चला चला वहाँ आया, जहाँ बाड़ी में श्रीकृष्ण बलराम सुखधाम बिराजते थे। आते ही सष्टांग प्रणाम कर सन्मुख खड़े हो हाथ जोड़ के कहा :—

चौ० मेरे मन बच है तुम हरी। कहा कहौं जो दुष्टन करी॥

अब मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ, जो आपने आय दर्शन दिया। यों कह प्रभु के डेरे करवाय राजा भीष्मक तो अपने घर आय चिन्ता कर ऐसे कहने लगा।

चौ० हरि चरित्र जाने नहिं कोई। क्या जाने अब कैसी होई॥

और जहाँ कृष्ण बलदेव थे, तहाँ नगर निवासी क्या स्त्री क्या पुरुष आय आय शिर नाय प्रभु का यश गाय गाय सराहि सराहि आपस में यों कहते थे कि, रुक्मिणी योग्य वर श्रीकृष्ण ही हैं। बिधना करै यह जोरी जुरै और चिरञ्जीव रहै। इस बीच दोनों भाइयों के जी में जो कुछ आया तो नगर देखने चले। उस समय ये दोनों भाई जिस हाट चौहटे से हो जाते थे, तहीं नर नारियों के ठट्ट के ठट्ट लग जाते थे और इनके ऊपर चोआ

चन्दन गुलाब नीर छिड़क छिड़क फूल बर्षाय हाथ बढ़ाय बढ़ाय प्रभु को आपस में कह बताते थे :—

चौ० नीलाम्बर ओढ़े बलराम। पीताम्बर पहने घनश्याम॥
कुंडल चपल मुकुट शिर धरे। कमल नयन चाहत मन हरे॥

और यह देखते जाते थे, निदान सब नगर और राजा शिशुपाल का कटक देख ये तो अपने दल में आये और इनके आने का समाचार सुन राजा भीष्मक का बड़ा बेटा अति क्रोध कर अपने पिता के निकट आय कहने लगा कि सत्य कहो, कृष्ण यहाँ किसका बुलाया आया, यह भेद मैंने नहीं पाया, बिन बुलाये यह कैसे आया। व्याह काज है सुख का धाम, इसमें इसका है क्या काम, ये दोनों कपटी कुटिल जहाँ जाते हैं, तहाँ ही उत्पात मचाते हैं। जो तुम अपना भला चाहो तो तुम मुझ से सत्य कहो, ये किसके बुलाये आये।

महाराज! रुक्म ऐसे पिता को धमकाय उठ वहाँ से सात पाँच करता वहाँ गया जहाँ राजा शिशुपाल और जरासंध अपनी सभा में बैठे थे, और उनसे कहा कि यहाँ रामकृष्ण आये हैं, अपने सब लोगों को जता दो जो सावधानी से रहैं। इन दोनों भाइयों का नाम सुनते ही राजा शिशुपाल तो हरि चरित्र का लख व्योहार जुहार करने लगा, और मनहीं मन विचार जरासंध कहने लगा कि सुनो ये दोनों जहाँ आवते हैं तहाँ कुछ न कुछ उपद्रव मचाते हैं। ये महाबली और कपटी हैं। इन्होंने ब्रज में कंसादिक बड़े बड़े राक्षस सहज स्वभाव ही मारे, इन्हें तुम मत जानो वारे, ये कभी किसी से लड़कर नहीं हारे, कृष्ण ने सत्रह बेर मेरा दल हना जब मैं अठारहवीं बेर चढ़ आया तब यह भाग पर्वत पै जा चढ़ा जो मैंने उसमें आग लगाई तो छल कर द्वारका को चला गया।

चौ० याको काहू भेद न पायो। अब यह करन उपद्रव आयो॥
है यह छली महाछल करै। काहू पै जान्यों नहिं परै॥

इससे अब ऐसा कुछ उपाय कीजै जिससे हम सबों की पति रहै। इतनी बात जब जरासंध ने कही तब रुक्म बोला कि ये क्या वस्तु हैं, जिनके लिये तुम इतने भाषित हौ, इन्हें तो मैं भली भाँति से जानता हूँ, कि बन बन गाते, नाचते, वेणु बजाते, धेनु चराते, फिरते थे। वे ग्वाल गवाँर युद्ध विद्या की रीति क्या जानें। तुम किसी बात की चिन्ता अपने मन में मत करो हम सब यदुबंशियों समेत कृष्ण बलराम को क्षण भर में मार हटावेंगे।

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! उस दिन रुक्म तो जरासन्ध और शिशुपाल को समझाय बुझाय ढाढ़स बँधाय और अपने घर आया, और उन्होंने सात पाँच कर रात गँवाई। भोर होते ही इधर राजा शिशुपाल और जरासन्ध तो व्याह का दिन जान बरात निकालने की धूमधाम में लगे, और उधर राजा भीष्मक के यहाँ भी मंगलाचार होने लगे। इसमें रुक्मिणी जी ने उठते ही एक ब्राह्मण के मुख श्रीकृष्णचन्द्र से कहला भेजा कि कृपानिधान! आज व्याह का दिन है दो घड़ी दिन रहे नगर के पूरब देवी का मन्दिर है तहाँ मैं पूजा करने जाऊँगी। मेरी लाज तुम्हैं है जिसमें रहे सो करियेगा। आगे पहर दिन चढ़े सखी सहेली और कुटुम्ब की स्त्रियाँ आईं उन्होंने आते ही पहिले तो आँगन में गजमोतियों का चौक पुरवाय कञ्चन की जड़ाऊ चौकी बिछवाय, तिस पर रुक्मिणी को बिठाय सात सुहागिनियों से तेल चढ़वाया पीछे सुगन्ध उबटन लगाय नहलाय धुलाय उसे सोलह शृङ्गार करवाय, बारह आभूषण पहराय, ऊपर राता चोला उढ़ाय, बनी बनाय बिठाया। इतने में घड़ी चार एक दिन पिछला रह गया। उस काल रुक्मिणी बाला अपनी सब सखी सहेलियों को

साथ ले बाजे गाजे से देवी की पूजा करने को चली तो राजा भीष्मक ने अपने लोग रखवाली को उसके साथ कर दिये।

ये समाचार पाय कि राजकन्या नगर के बाहर देवी पूजने चली है। राजा शिशुपाल ने भी श्रीकृष्णचन्द्र के डर से अपने बड़े बड़े रावत सावन्त शूरबीर योधाओं को बुलाय सब भाँति ऊँच नीच समझाय बुझाय रुक्मिणी जी की चौकसी को भेज दिया। वे भी आय अपने अस्त्र शस्त्र सँभाल राजकन्या के संग हो लिये। उस बिरियाँ रुक्मिणी जी सब शृङ्गार किये, सखी सहेलियों के झुण्ड के झुण्ड लिये, अन्तर पट की ओट में, और काले काले राक्षसों के कोट में, जाते ऐसी शोभायमान लगती थीं, कि जैसे श्याम घटा के बीच तारामण्डल समेत चन्द्रमा। निदान कितने एक बेर में चली चली देवी के मन्दिर में पहुँची। वहाँ जाय पाँव धोय आचमन कर शुद्ध होय, राजकन्या ने पहिले तो चन्दन, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य कर श्रद्धा समेत देवी की वेद विधि से पूजा की। पीछे ब्राह्मणियों को इच्छा भोजन करवाय, सुथरी तीयलें, पहराय, रोला की खौर काढ़, अक्षत लगाय, उन्हें दक्षिणा दी, और उनसे अशीश ली।

आगे देवी की परिक्रमा दे, वह चन्द्रमुखी, चम्पक वरणी, मृगनयनी, पिकबयनी, गजगामिनी, सखियों को साथ ले हरि के मिलने की चिन्ता किये जो वहाँ से निश्चित हो चलने को हुई तो श्रीकृष्णचन्द्र जी भी अकेले रथ पर बैठ वहाँ पहुँचे जहाँ रुक्मिणी के साथ सब योद्धा शस्त्र अस्त्र से जकड़े खड़े थे, इतना कह शुकदेव जी बोले :—

दो० पूजि गौरि जबही चलीं, एक कहत अकुलाय।
सुन सुन्दरि आये हरी, देख ध्वजा फहराय॥

यह बात सखी से सुन, और प्रभु के रथ की बैरख देख राजकन्या अति आनन्द कर फूली अङ्ग न समाती थी। और सखी के हाथ पर हाथ दिये, मोहनी रूप किये, हरि के मिलने की आश लिये, कुछ कुछ मुस्कराती ऐसे सब के बीच मन्द गति जाती थी, कि जिसकी शोभा कुछ बरणी नहीं जाती। आगे श्रीकृष्णचन्द्र को देखते ही सब रख वाले भूले से खड़े हो रहे, और अन्तरपट उनके हाथ से छूट पड़ा। इसमें मोहनी रूप से रुक्मिणी जी को जो उन्होंने देखा तो और भी मोहित हो ऐसे शिथिल हुए कि तिन्हें अपने तन मन की सुध न थी।

सो० भृकुटी धनुष चढ़ाय, अञ्जन वरुणी पनच कै।
लोचन बाण चलाय, मारे पै जीवित रहै॥

महाराज! उस काल सब राक्षस तो चित्र के से कढ़े खड़े देखते ही रहे, और श्रीकृष्णचन्द्र सब के बीच रुक्मिणी के पास रथ बढ़ाय जाय खड़े हुए। प्राणपति को देखते ही उसने ही सकुच कर मिलने को जो हाथ बढ़ाया तो प्रभु ने बाँयें हाथ से उठाय उसे रथ पर बैठाया।

चौ० काँपत गात सकुच मन भारी। छाँड़ सबन हरि संग सिधारी॥
ज्यों बैरागी छाँड़े गेह। कृष्णचरण सों करै सनेह॥

महाराज! रुक्मिणी जी ने तो जप, तप, व्रत, पुण्य किये का फल पाया, और पिछला दुःख सब गँवाया। बैरी अस्त्र शस्त्र लिये खड़े मुख देखते रहे, प्रभु उनके बीच से रुक्मिणी को ले ऐसे चले कि—

दो० ज्यों बहु भुण्डनि स्यार के, परे सिंह बिच आय।
अपनो भक्षण लेय के, चलै निडर घहराय॥

आगे श्रीकृष्णचद्र के चलते ही बलराम जी भी पीछे से धौंसी दे सब दल साथ ले जाय मिले।

५५—रुक्मिणी-चरित्र

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! कितनो एक दूर जाय श्रीकृष्णचन्द्र ने रुक्मिणी जी को शोच सङ्कोचयुत देख कर कहा कि सुन्दरी! अब तुम किसी बात की चिन्ता मत करो, मैं शंखध्वनि कर सब तुम्हारे मन का डर हरूँगा, और द्वारका में पहुँच वेद की विधि से बरूँगा। यों कह प्रभु ने उसे अपनी माला पहराय बाँयी ओर बैठाया जो शंखध्वनि करी तो शिशुपाल और जरासन्ध के साथी सब चौंक पड़े। यह बात सारे नगर में फैल गई कि हरि रुक्मिणी को हर ले गये।

इसमें रुक्मिणी हरण अपने उन लोगों के मुख से सुन कि जो चौकसी को राजकन्या के संग गये थे, राजा शिशुपाल और जरासन्ध अति क्रोधकर झिलम टोप पहन पेटी बाँध, सब शस्त्र लगाय अपना अपना कटक ले लड़ने को श्रीकृष्ण के पीछे चढ़ दौड़े, और उनके निकट जाय आयुध सँभाल सँभाल ललकारे। अरे! भागे क्यों जाते हो खड़े रहो। शस्त्र पकड़ लड़ो, जो क्षत्री शूर वीर हैं, वे खेत में पीठ नहीं देते। महाराज! इतनी बात के सुनते ही यादव फिर सन्मुख हुए। और लगे दोनों ओर से शस्त्र चलने उस काल रुक्मिणी बाल अति भयमान घूँघट की ओट किये आँसू भर भर लम्बी साँसे लेती थीं; और प्रीतम का मुख निरख निरख मन ही मन बिचार कर यों कहती थीं कि ये मेरे लिये इतना दुःख पाते हैं। अन्तर्य्यामी प्रभु रुक्मिणी के मन का भेद जान बोले कि सुन्दरी तू क्यों डरती है, तेरे देखते ही देखते सब असुर दल

को मार भूमि का भार उतारता हूँ। तू अपने मन में किसी बात की चिन्ता मत करे। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! उस काल देवता अपने अपने बिमानों में बैठ आकाश से देखते क्या हैं कि,

दो० यादव असुरन सों लड़त, होत महा संग्राम।
ठाढ़े देखत कृष्ण हैं, युद्ध करत बलराम॥

मारू बाजता है, कड़खेत कड़खा गाते हैं, चारण यश बखानते हैं, अश्वपति अश्वपति से, गजपति गजपति से, रथी रथी से, पैदल पैदल से, भिड़ रहे हैं। इधर उधर के शूरबीर पिल पिल के हाथ मारते हैं, और कायर खेत छोड़ अपना जी ले भागते हैं, घायल खड़े घूमते हैं। कबन्ध हाथों में तलवार लिये चारों ओर घूमते हैं, और लोथ पर लोथ गिरती है, तिन से लोहू की नदी बह चली है, इससे जहाँ तहाँ हाथी जो मरे पड़े हैं, सो टापू से जनाते हैं, और सूँड़े मगर सी, महादेव भूत प्रेत पिशाच संग लिये शिर चुन चुन मुण्डमाल बनाय बनाय पहनते हैं। और गिद्ध शृगाल कूकर आपस में लड़ लड़ लोथें खैंच खैंच लाते हैं, और फाड़ फाड़ खाते हैं। कौवे आँखें निकाल निकाल धड़ों से ले जाते हैं। निदान देवताओं के देखते ही देखते बलराम जी ने सब असुर दल यों काट डाला कि ज्यों किसान खेती काट डाले। आगे जरासन्ध और शिशुपाल सब दल कटाय कई एक घायल संग लिये भाग के एक ठौर खड़े रहे, तहाँ शिशुपाल ने बहुत अछताय पछताय शिर डुलाय जरासन्ध से कहा कि अब तो अपयश पाय और कुल को कलंक लगाय, संसार में जीना उचित नहीं, इससे जो आप आज्ञा दें तो मैं रण में जा मरूँ।

चौ० नातरु हौं करिहौं बनबास। लेउँ योग छाँड़ौं सब आस॥
गई आन पत अब क्यों जीजै। राखि प्राण अपयस क्यों लीजै॥

इतनी बात सुन जरासंध बोला कि, महाराज ! आप ज्ञानवान् हैं, सब बातों में तुम्हें मैं क्या समझाऊँ। जो ज्ञानी पुरुष हैं सो हुई बात का शोच नहीं करते, क्योंकि भले बुरे का कर्त्ता और ही है। मनुष्य का कुछ वश नहीं, यह परवश पराधीन है। जैसे काठ की पुतली को नटुवा ज्यों नचाता हैं त्यों नाचती है। ऐसे ही मनुष्य कर्त्ता के वश है, वह जो चहता है सो करता है। इससे सुख दुःख में हर्ष शोक न कीजै, सब स्वप्न सा जान लीजै। मैं तेईस तेईस अक्षौहिणी ले मथुरा पुरी पर सत्रह बेर चढ़ गया और इसी कृष्ण ने सत्रह बेर मेरा सब दल हना। मैंने कुछ सोच न किया, और अठारहवीं बेर जब इसका दल मारा तब कुछ हर्ष भी न किया। यह भाग कर पहाड़ पर जा चढ़ा, मैंने इसे वहीं फूँक दिया, न जानिये क्योंकर जिया? इसकी गति कुछ जानी नहीं जाती। इतना कह फिर जरासन्ध बोला कि, महाराज ! अब उचित यही है जो इस समय को टाल दीजै, कहा कि प्राण बचें तो पीछे सब हो रहता है, जैसे हमें हुआ सत्रह बेर हार अठारहवीं बेर जीते। इससे जिसमें अपनी कुशल होय सो कीजै, और हठ छोड़ दीजै।

महाराज ! जब जरासन्ध ने ऐसे समझाय के कहा—तब उसे कुछ धीर्य हुआ, और जितने घायल योद्धा बचे थे तिनको साथ ले अछताय पछताय जरासंध के संग हो लिया। ये तो यहाँ से यों हार के चले, और जहाँ शिशुपाल का घर था, तहाँ की बात सुनो कि पुत्र का आगमन विचार शिशुपाल की माँ जो मङ्गलाचार करने लगी तो सन्मुख छींक हुई, और दाहनी आँख उसकी फड़कने लगी। ये अशकुन देख उसका माथा ठनका, कि इस बीच किसी ने आय कहा कि जो तुम्हारे पुत्र की सेना थी सब कट गई और दुलहिन भी न मिली, अब वहाँ से भाग अपना

जीव लिये आता है। इतनी बात के सुनते ही शिशुपाल की माता अति चिन्ता कर अधाक्य हो रही।

आगे शिशुपाल और जरासन्ध का भागना सुन रुक्म अति क्रोध कर अपनी सभा में आन बैठा; और सबको सुनाय कहने लगा कि, कृष्ण मेरे हाथ से बच कहां जा सकता है? अभी जाय उसे मार रूक्मिणी को ले आऊँ तो मेरा नाम रूक्म नहीं तो नहीं फिर कुण्डिनपुर में न आऊँ महाराज! ऐसे पैज कर रूक्म एक अक्षौहिणी दल ले श्रीकृष्णचन्द्र से लड़ने को चढ़ धाय और उसने यादवों का दल जा घेरा। उस काल उसने अपने लोगों से कहा कि तुम तो यादवों को मारो, और मैं आगे जाय कृष्ण को जीता पकड़ लाता हूँ। इतनी बात के सुनते ही उसके साथी यदुवंशियों से युद्ध करने लगे, और वह रथ बढ़ाय श्रीकृष्णचन्द्र के निकट जाय, ललकार बोला—अरे कपटी! गवाँर! तू क्या जाने राजव्यवहार, बालकपन में जैसे तैने दूध दही की चोरी करी, तैसे तैने यहां भी आय सुन्दरी हरी।

चौ० ब्रजबासी हम नहीं अहीर। ऐसे कह कर लीने तीर॥
बिष के बुझे लिये उन बीन। खैंच धनुष शर छोड़े तीन॥

उन बाणों को आते देख श्रीकृष्णचन्द्र ने बीच ही काटा। फिर रुक्म ने और बाण चलाये, प्रभु ने वे भी काट गिराये। और अपना धनुष सँभाल कई एक बाण ऐसे मारे कि रथ के घोड़ों समेत सारथी उड़ गया। और धनुष उसके हाथ से कट नीचे गिरा, पुनि जितने आयुध उसने लिये हरि ने सब काट काट गिरा दिये। तब तो वह अति झुँझलाय फरी खाँडा उठाय, रथ से कूद श्रीकृष्णचन्द्र की ओर यों झपटा कि जैसे बाघला गीदड़ गज पर आवे, कै ज्यों पतंग दीपक पर धावै। निदान जाते ही उसने हरि के रथ पर एक गदा, चलाई, कि प्रभु ने

झट उसे पकड़ बाँधा और चाहा कि मारें, इसमें रुक्मिणी जी बोलीं :—

चौ० मारो मत भैया है मेरो। छाँड़ो नाथ तिहारो चेरो॥
मूरख अन्ध कहा यह जाने। लक्ष्मीकन्तहि पामर माने॥
तुम योगेश्वर आदि अनन्त। भक्त हेतु प्रकटत भगवन्त॥
यह जड़ कहा तुम्हें पहिचाने। दीनदयाल कृपालु बखाने॥

इतनी कथा कह फिर कहने लगी—साधु, जड़ और बालक का अपराध मन में नहीं लाते। जैसे कि सिंह श्वान के भूँकने पर ध्यान नहीं करता। और जो तुम इसे मारोगे तो होगा मेरे पिता को शोक, यह करना तुम्हें नहीं है योग जिस ठौर तुम्हारे चरण पड़ते हैं, तहाँ के सब प्राणी आनन्द में रहते हैं। यह बड़े अचरज की बात है कि तुम सा सगा रहते राजा भीष्मक का पुत्र दुःख पावै। महाराज! ऐसे कह एक बार तो रुक्मिणी जी यों बोलीं कि, महाराज! तुमने भला हित सम्बन्धी से किया जो उसे पकड़ बाँधा और खड्ग हाथ में ले मारने को उपस्थित हुए। पुनि अति व्याकुल हो थर थराय आँखें डबडबाय बिसूर बिसूर पाँवों पर गोद पसार कहने लगीं।

चौ० बन्धु भीख प्रभु मोको देउ। इतने यश तुम जग में लेउ॥

इतनी बात के सुनने से, और रुक्मिणी जी की ओर देखने से श्रीकृष्णचन्द्र जी का सब कोप शांत हुआ। तब उन्होंने उसे जीव से तो न मारा पर सारथी को सैन करी। उसने झट इसकी पगड़ी उतार, दुगिडयाँ चढ़ाय, मूँछ दाढ़ी और शिर मूँड़, सात चोटी रख, रथ के पीछे बाँध लिया।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! रुक्म की तो श्रीकृष्ण जी ने यहाँ यह अवस्था की और बलदेव वहाँ से सब

असुरदल को मार भगाय कर भाई के मिलने को ऐसे चले कि जैसे श्वेत गज कमलदल से कमलों को तोड़ खाय बिखराय अकुलाय के भागता होय, निदान कितनी एक बेर में प्रभु के समीप जाय पहुँचे, और रुक्म को बँधा देख श्रीकृष्ण जी से अति झुँझलाय के बोले कि तुमने यह काम क्या किया जो साले को पकड़ बाँधा, तुम्हारी कुटेव नहीं जाती।

चौ० बांध्यों याहि करी बुधि थोरी। यह तुम कृष्ण सगाई तोरी॥
औ यदुकुल को लोक लगाई। अब हमसों को करै सगाई॥

जिस समय यह युद्ध करने को आपके सन्मुख आया तब तुमने इसे समझाय बुझाय के उलटा क्यों न फेर दिया। महाराज! ऐसे कह बलराम जी ने रुक्म को तो खोल समझाय बुझाय अति शिष्टाचार कर बिदा किया, फिर अति नम्र बाणी होकर बलराम सुखधाम रुक्मिणी जी से कहने लगे कि हे सुन्दरी। तुम्हारे भाई की जो यह दशा हुई, इसमें कुछ हमारी चूक नहीं यह उसके पूर्व जन्म के किये कर्म का फल है और क्षत्रियों का धर्म भी है, कि भूमि धन त्रिया के काज, करते हैं युद्ध दल परस्पर साज, इस बात का तुम बिलग मत मानो, मेरा कहा सत्य ही जानो। हार जीत भी इसके साथ ही लगी है और यह संसार दुःख का समुद्र है, यहाँ आय सुख कहाँ? पर मनुष्य माया के वश हो दुःख, सुख, भला बुरा, हार, जीत, संयोग वियोग मन ही मन से मान लेते हैं, पर इसमें हर्ष शोक जीव को नहीं होता। तुम अपने भाई के विरूप होने की चिन्ता मत करो क्योंकि ज्ञानी लोग केवल देह का नाश करते हैं। इस लेखे देह की पत गई कुछ जीव की नहीं।

इतनी कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि धर्मावतार! जब बलराम जी ने ऐसे रुक्मिणी को समझाया तब,

दो० सुनि सुन्दरि मन समझ कै, किये जेठ की लाज।
सैन मांहि पिय सेां कहत, हाँकहु रथ ब्रजराज॥

चौ० घूँघट ओट बदन की करै। मधुर बचन हरि सों उच्चरै॥
सन्मुख ठाढ़े हैं बलदाऊ। अहो कन्त रथ वेग चलाऊ॥

इतनी बात श्रीरुक्मिणी जी के मुख से निकलते ही इधर तो श्रीकृष्णचन्द्र जी ने रथ द्वारका की ओर हाँका, और उधर रुक्म अपने लोगों में जाय अति चिन्ता कर कहने लगा कि कुण्डिनपुर से यह पैज कर के आया था, कि अभी जाय कृष्ण बलराम को सब यदुबंशियों समेत मार रुक्मिणी को ले आऊँगा, सेा मेरा प्रण पूरा न हुआ और उलटी अपनी पत खेाई अब जीता न रहूँगा। इस देश और गृहस्थाश्रम केा छेाड़ बैरागी हेा कहीं जाय मरूँगा।

जब रुक्म ने ऐसे कहा, तब उसके लेागों में से केाई बेाला—महाराज! तुम महाबीर और बड़े प्रतापी हेा तुम्हारे हाथ से जेा वे जीते बच गये सेां उनके भले दिन थे, अपने प्रारब्ध के बल से निकल गये नहीं तेा आपके सन्मुख हेा शत्रु जीता कब बच सकता है? तुम सज्ञान हेा ऐसी बात क्यों बिचारते हेा कभी हार होती है कभी जीत। पर शूरवीरों का धर्म है जेा साहस नहीं छेाड़ते। भला रिपु आज बच गया फिर मार लेंगे, महाराज! जब यों उसने रुक्म केा समझाया तब वह यह कहने लगा कि, सुनेा।

चौ० हारो उनसेां औ पति गई। मेरे मन अति लज्जा भई॥
जन्म न हेा कुण्डिनपुर जाऊँ। बरन औरही गाँव बसाऊँ॥
येां कह उन इक नगर बसायेा। सुत दारा धन तहाँ मँगायेा॥
ताको धरयो भेाजकट नाम। ऐसेा रुक्म बसायेा ग्राम॥

महाराज! उधर तेा रुक्म राजा भीष्मक से बैर कर वहाँ रहा

और इधर श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव जी चले चले द्वारका के निकट पहुँचे।

चौ० उड़ी रेणु आकाश जु छाई। तबहीं पुरबासिन सुधि पाई॥

दो० आवत हरि जाने जबहिं, राख्यो नगर बनाय।
शोभा भइ तिहुँ लोक की, कहो कौन पै जाय॥

उस काल घर घर मंगलाचार हो रहा, द्वार द्वार केले के खम्भ गड़े, कञ्चन कलस सजल सपल्लव धरे, ध्वजा पताका फहराय रहीं तोरण बन्दनवारें बँधी हुईं, और प्रति हाट बाट चौहटों के चौमुखे दिये लिये युवतियों के यूथ के यूथ खड़े और राजा उग्रसेन भी सब यदुवंशियों समेत बाजे गाजे से अगाऊ जाय रीति भाँति कर बलराम सुखधाम और श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द को नगर में ले आये। उस समय के बनाव छवि की कुछ वरणी नहीं जाती। क्या स्त्री क्या पुरुष सब ही के मन में आनन्द छाय रहा था। प्रभु के सोंहीं आय आय सब भेंट दे दे भेंटते थे, और नारियाँ अपने अपने द्वारों बारों चौबारों कोठों पर से मंगली गीत गाय गाय और उतार उतार फल फूल बर्षावती थीं; श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव जी यथा योग्य सब की मनुहार करते जाते थे, निदान इसी रीति से चले चले राज मन्दिर जा बिराजे। आगे कई एक दिवस पीछे एक दिन श्रीकृष्ण जी राजसभा में जहाँ राजा उग्रसेन शूरसेन, बसुदेव आदि सब बड़े बड़े यदुवंशी बैठे थे गये; और प्रणाम कर उन्होंने उनके आगे कहा कि, महाराज! युद्ध जीति जेा कोई सुन्दरी लाता है वही राक्षस ब्याह कहाता है।

इतनी बात के सुनते ही शूरसेन जी ने पुरोहित बुलाय उसे समझाय के कहा कि तुम श्रीकृष्ण के बिवाह का दिन ठहरा दो उसने झट पत्रा खोल भला महीना दिन बार नक्षत्र देख शुभ सूर्य चन्द्रमा विचार ब्याह का दिन ठहराय दिया। तब राजा उग्रसेन

ने अपने मंत्रियों को तो यह आज्ञा दी कि, तुम व्याह का सामान इकट्ठा करो। और आप बैठ पत्र लिख लिख पाण्डव कौरव आदि सब देश विदेश के राजाओं को ब्राह्मणों के हाथ भिजवाये। महाराज! चिट्ठी पाते ही सब राजा प्रसन्न हो उठ धाये। तिन्होंने अपने साथ ब्राह्मण, पण्डित, भाट, भिखारी भी लिये।

और ये समाचार सुन राजा भीष्मक ने भी बहुत वस्त्र अस्त्र जड़ाऊ आभूषण और रथ हाथी घोड़े दास दासियों के डोले एक ब्राह्मण को दे कन्यादान का संकल्प मन ही में अति विनती कर द्वारका को भेज दिया। उधर से तो देश देश के नरेश आये, और उधर से राजा भीष्मक का पठाया सब सामान लिये वह ब्राह्मण भी आया। उस समय की शोभा द्वारका पुरी की कुछ वरणी नहीं जाती। आगे व्याह का दिन आया तो सब रीति भाँति कर बर कन्या को मढ़े के नीचे ले जा बैठाया। और सब बड़े बड़े यदुवंशी भी आय बैठे, उस बिरियाँ,

चौपाई

पण्डित तहाँ वेद उच्चरैं। रुक्मिणी संग हरि भाँवरि फिरैं॥
ढोल दुन्दुभी भेरि बजावैं। हर्षहिं देव पुष्प बरसावैं॥
सिद्ध साध्य चारण गन्धर्व्व। अन्तरिक्ष भये देखैं सर्व्व॥
चढ़े विमान घिरै शिर नावैं। देव बधू सब मंगल गावैं॥
हाथ गह्यो प्रभु भाँवरि पारी। बाम अङ्ग रुक्मिण बैठारी॥
छोरी गाँठ पटा फेर दियो। कुल देवी को पूजन कियो॥
छोरत कंकण हरि सुन्दरी। खेलत दूधा भाती करी॥
अति आनन्द रच्यो जगदीश। निरखि हर्ष सब देहिं अशीश॥
हरि रुक्मिणी जोड़ी चिरजियो। जिनको चरित सुधारस पियो॥
दोनों दान विप्र जे आये। मागध बन्दी जन पहिराये॥
जे नृप देश देश के आये। दोनो बिदा सबै पहुँचाये॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! जो जन हरि रुक्मिणी का चरित्र पढ़ै सुनेगा, और पढ़ सुन के स्मरण करेगा, सो भुक्ति मुक्ति यश पावेगा। पुनि जो फल होता है अश्वमेधादि यज्ञ, गौ आदि दान, गंगादिस्नान, प्रयागादि तीर्थ करने से सोई फल मिलता है, हरि कथा कहने सुनने से।

५६—प्रद्युम्न जन्म, सम्बर-बध

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! एक दिन श्रीमहादेव जी कैलाश पर अपने ध्यान में बैठे थे, कि देव प्रेरित एकाएकी कामदेव ने आ सताया, तो हरि की समाधि खुल गई तो विचार करने लगे। इतने में कि मनसिज बसन्त ऋतु रचे पर्व्वत पर प्राप्त है, इसका अहंकार जान काम को भस्म कर डाला।

दो० काम बली जब शिव दह्यो, तब रति धरत न धीर।
पति बिन तिय तलफत खड़ी, विह्वल खड़ी शरीर॥

चौपाई

काम नारि अति लोटत फिरै। कंत कंत कहि क्षिति भुज भरै॥
पिय बिन तिया दुखी अति जान। तब बोले शिव कृपा निधान॥

कि, हे रति ! तू चिन्ता मत करै, तेरा पति अनंग हो सबको व्यापैगा, और जिस भाँति तुझे मिलेगा सो सुन, मैं कहता हूँ कि पहिले तो वह श्रीकृष्णचन्द्र के घर में जन्म लेगा और उसका नाम प्रद्युम्न होगा, पीछे उसे शम्बर ले जाय समुद्र में बहावेगा। फिर वह मत्स्य के पेट में हो शम्बर ही की रसोई में आवेगा। तू वहीं जाय के रह, जब वह आवे तब उसे ले पालियो फिर वह शम्बर को मार तुझे साथ ले द्वारका में सुख से जाय बसेगा, महाराज !

चौ० जब महेश यों रति समझाई। तब तन धरि सम्बर घर आई॥
सुन्दरि बीच रसोई रहै। निशिदिन मारग पिय को चहै॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! उधर रति तो पिय के मिलने की आश कर यों रहने लगी। और उधर रुक्मिणी जी को गर्भ रहा और दश महीने में पूरे दिनों लड़का भया यह समाचार पाय ज्योतिषियों ने आय लग्न साध बसुदेव जी से कहा कि, महाराज! इस बालक के शुभ-ग्रह देख हमारे बिचार में यों आता है, कि रूप गुण पराक्रम में यह श्रीकृष्णचन्द्र जी के समान होगा, पर बालकपन भर जल में रहेगा, पुनि रिपु को मार स्त्री समेत आन मिलेगा। यों कह प्रद्युम्न नाम धर ज्योतिषी तो दक्षिणा ले बिदा हुए। और बसुदेव जी के घर में रीति भाँति और मङ्गलाचार होने लगे। आगे नारद मुनि जी ने जाय उसी समय समझाय सम्बर से कहा कि तू किस नींद में सोता है तुझे चेत है कि नहीं? वह बोला, क्या? इन्होंने कहा तेरा बैरी काम का अवतार प्रद्युम्न नाम श्रीकृष्णचन्द्र के घर में जन्म ले चुका है।

राजा! नारद जी तो सम्बर को यों चिताय चले गये और सम्बर ने शोच विचार कर मन ही मन में यह उपाय ठहराया कि पवनरूप हो वहाँ जाय उसे हर लाऊँ और समुद्र में बहाऊँ तो मेरे मन की चिन्ता मिटे और निर्भय हो रहूँ। यह विचार सम्बर वहाँ से उठ अलख रूप हो चला। श्रीकृष्णचन्द्र के मन्दिर में आया कि जहाँ रुक्मिणी जी सेजर में हाथ से दबाये छाती से लगाये बालक को दूध पिलाती थीं, वह चुपचाप घात लगाय खड़ा हो रहा, ज्यों बालक पर से रुक्मिणी जी का हाथ अलग हुआ, त्यों असुर अपनी माया फैलाय उसे उठाय ऐसे ले आया कि

जितनी स्त्रियाँ वहाँ बैठी थीं उनमें से किसी ने न देखा न जाना कि कौन किस रूप से आय क्योंकर उठाय ले गया। बालक को आगे न देख रुक्मिणी जी अति घबराईं और रोने लगीं। उनके रोने का शब्द सुन सब यदुवंशी क्या स्त्री क्या पुरुष घिर आये, और अनेक प्रकार की बातें कह कर चिन्ता करने लगे।

इसी बीच नारद जी ने आय सब को समझाय कर कहा कि, तुम बालक के जीने की कुछ भावना मत करो, उसे किसी बात का डर नहीं वह कहीं जाय पर उसे काल नहीं व्यापेगा। और बालापन व्यतीत कर एक सुन्दरी नारी साथ लिये तुम्हें आय मिलेगा। महाराज ऐसे सब यदुवंशियों को भेद बताय समझाय बुझाय नारद मुनि जब बिदा हुए, तब वे भी सोच समझ सन्तोष कर रहे।

अब आगे कथा सुनिये कि सम्बर जो प्रद्युम्न को ले गया था, उसने उन्हें समुद्र में डाल दिया, वहाँ एक मछली ने निगल लिया, उस मछली को और एक बड़ी मछली निगल गई। इसमें एक मछुये ने जाय समुद्र में जो जाल फेंका तो वह मीन जाल में आई। धीमर जाल खैंच उस मच्छ को देख अति प्रसन्न हो ले अपने घर आया। निदान वह मछली उसने जा राजा सम्बर को भेंट दी, राजा ने ले अपने पाक भवन में भेज दी। रसोई करने वाली ने जो उस मछली को चीरा तो उसमें से एक और मछली निकली, उसका पेट फाड़ा तो एक लड़का श्यामवर्ण अति सुन्दर उसमें से निकला। उसने देखते ही अति अचरज किया और वह लड़का ले जाय रति को दिया, उसने महा प्रसन्न हो ले लिया। यह बात सम्बर ने सुनी तो रति को बुलाय के कहा कि इस लड़के को भली भाँति से यत्न कर पाल। इतनी बात राजा की सुनि रति

उस लड़के को ले निज मन्दिर में आई। उस काल नारद जी ने जाय रति से कहा :—

चौ० अब तू याहि पाल चित लाय। तो पति प्रद्युम्न प्रकट्यो आय॥
सम्बर मार तोहि लै जैहै। बालापन या ठौर बितैहै॥

इतना भेद बताय नारद जी तो चले गये, और रति अति हित से चित्त लगाय पालने लगी। ज्यों ज्यों वह बालक बढ़ता था, त्यों त्यों रति को पति के मिलने की चाह होती थी। कभी वह उसका रूप देख प्रेम कर हिये से लगाती थी। कभी दृग मुख कपोल चूम आप ही बिहँस उसके गले लगती थी, और यों कहती थी कि :—

चौ० ऐसे प्रभु संयोग बनायो। मछली माहिं कंत मैं पायो॥

और महाराज !

दो० प्रेम सहित पय प्याय कै, हित सों प्यावति ताहि॥
हलरावत गुण गाय कै, कहत कन्त चित चाहि॥

आगे जब प्रद्युम्न जी पाँच वर्ष के हुए, तब रति अनेक अनेक भाँति के आभूषण पहनाय पहनाय अपने मन का स्वाद पूरा करने लगी, और नयनों को सुख देने लगी। उस काल वह बालक जो रति का आँचल पकड़ माँ माँ कहने लगा, तो वह हँस कर बोली— हे कन्त ! तुम यह क्या कहते हो ? मैं तुम्हारी नारि, तुम देखो अपने हिये बिचारि, मुझे पार्वती जी ने यह कहा था कि तू सम्बर के घर जाय रह, तेरा कन्त श्रीकृष्णचन्द्र के घर में जन्म लेगा, सो मछली के पेट में हो तेरे पास आवैगा। और नारद जी भी कह गये थे, कि तू उदास मत हो तेरा स्वामी तुझे आय मिलता है। तभी से तुम्हारे मिलने की आश किये यहाँ बास कर रही हूँ, तुम्हारे आने से मेरी आश पूरी भई।

ऐसे कह रति ने फिर पति को धनुष विद्या सब पढ़ाई, जब वे धनुष विद्या में निपुण हुये तब एक दिन रति ने पति से कहा कि स्वामी ! अब यहाँ रहना उचित नहीं, क्योंकि तुम्हारी माता श्रीरुक्मिणी जी ऐसे तुम बिन दुःख पाय अकुलाती हैं जैसे वत्स बिन गाय, इससे अब उचित यही है कि असुर सम्बर को मार मुझे संग ले द्वारका में चल माता पिता का दर्शन कीजे और उन्हें सुख दीजे। आपको देखने की लालसा किये हुए हैं।

श्रीशुकदेव जी यह प्रसंग सुनाय राजा से कहने लगे कि, महाराज ! इसी रीति से रति की बातें सुनते सुनते प्रद्युम्न जी जब सयाने हुए तो एक दिन खेलते खेलते राजा सम्बर के पास गये। वह इन्हें देखते ही अपने लड़के के समान जान लाड़ कर बोला कि इस बालक को मैंने अपना लड़का कर पाला है। इतनी बात के सुनते ही प्रद्युम्न जी ने अति क्रोधकर कहा कि मैं बालक हूँ बैरी तेरा, अब तू लड़ कर देख बल मेरा। यों सुनाय ताल ठोंक सन्मुख हुआ। तब हँस कर सम्बर कहने लगा कि, भाई। यह मेरे लिये दूसरा प्रद्युम्न कहाँ से आया ? क्या दूध पिलवा मैंने सर्प बढ़ाया जो ऐसी बात कहता है ? इतना कह फिर बोला—अरे बेटा तू क्या कहता है ये बैन, क्या तुझे यमदूत आये हैं लैन ?

महाराज ! इतनी बात सम्बर के मुँह से सुनते ही वह बोला—प्रद्युम्न मेरा ही है नाम, मुझसे आज तू कर संग्राम। तैने तो मुझे सागर में बहाया, पर मैं अब अपना बैर लेने फिर आया। तू ने अपने घर में अपना काल बढ़ाया, अब कौन किसका बाप।

दो० सुन सम्बर आयुध गहे, बढ़यो क्रोध मन भाव।
मनहुँ सर्प की पूँछ पर, परयो अन्ध को पाव॥

आगे सम्बर अपना सब दल मँगवाय, प्रद्युम्न को बाहर ले आय क्रोध कर गदा उठाय मेघ की भाँति गरज कर बोला—देखूँ अब तुझे काल से कौन बचाता है? इतना कह जो उसने कपट कर गदा चलाई तो प्रद्युम्न जी ने सहज ही काट गिराई। फिर उसने रिसाय कर अग्निबाण चलाये, उन्होंने जलबाण छोड़ बुझाय गिराये। तब तो सम्बर ने महा क्रोध कर जितने आयुध उसके पास थे सब प्रहार किये, और इसने काट काट गिराय दिये। जब कोई आयुध उसके पास न रहा तब क्रोध कर धाय प्रद्युम्न जी जाय लिपटे, दोनों से मल्लयुद्ध होने लगा। कितनी एक बेर पीछे ये उसे आकाश को ले उड़े, वहाँ जाय खड्ग से उसका शिर काट गिराय दिया और फिर आय असुर दल बध किया।

सम्बर को मारा रति ने सुख पाया, और उसी समय एक बिमान स्वर्ग से आया उस पर प्रद्युम्न और रति दोनों चढ़ बैठे और द्वारका को चले, ऐसे कि जैसे दामिनी समेत सुन्दर मेघ जाता होय, और चले चले वहाँ पहुँचे कि जहाँ कञ्चन के मंदिर ऊँचे सुमेर से जगमगाय रहे थे। बिमान से उतर अचानक दोनों रनिवास में गये, इन्हें देख सब सुन्दरी चौंक उठीं और यों समझा कि श्रीकृष्ण एक सुन्दरि नारी संग ले आये हैं, सकुच रहीं; पर यह भेद किसी ने न जाना कि प्रद्युम्न है। सब कृष्ण ही कृष्ण कहती थीं। इसमें जब प्रद्युम्न जी ने कहा कि हमारे माता पिता कहाँ हैं? तब रुक्मिणी जी अपनी सखियों से कहने लगीं, हे सखी! यह हरि की उनहारी कौन है? वे बोलीं—हमारी समझ में तो यह आता है कि हो न हो यह श्रीकृष्ण ही का पुत्र है। इतनी बात के

सुनते ही रुक्मिणी जी की छाती से दूध की धार बह निकली, और बाँयीं बाँह फड़कने लगी और मिलने को मन घबराया, पर बिन पति की आज्ञा मिल न सकीं। उस काल वहाँ नारद जी ने आय पूर्व कथा कह सब के मन का सन्देह मिटाय दिया। तब तो रुक्मिणी जी ने दौड़ कर पुत्र का मुख चूम उसे छाती से लगाया, और रीति भाँति से ब्याह कर बेटे बहू को घर में लिया। उस समय क्या स्त्री क्या पुरुष सब यदुबंशियों ने आय मंगलाचार कर अति आनन्द किया, घर घर बधाई बाजने लगी, और सारी द्वारकापुरी में सुख छाय गया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! ऐसे प्रद्युम्न जी जन्म ले बालकपन अनत बिताय रिपु को मार रति को ले द्वारकापुरी में आये। तब घर घर आनन्द मंगल हुए बधाये।

५७—जाम्बवन्ती, सत्यभामा विवाह

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! सत्राजित ने पहिले तो श्रीकृष्ण को मणि की चोरी लगाई, पीछे झूँठ समझ लज्जित हो उसने अपनी कन्या सत्यभामा हरि को ब्याह दी। यह सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूँछा कि, कृपानिधान! सत्राजित कौन था? मणि उसने कहाँ पाई और कैसे हरि को चोरी लगाई? फिर क्यों कर झूठ समझ कन्या ब्याह दी? यह तुम मुझे समझा के कहो।

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! सुनिये मैं सब समझा कर कहता हूँ। सत्राजित एक यादव था, तिसने बहुत दिन तक सूर्य की अति कठिन तपस्या की। तब सूर्य देवता ने प्रसन्न हो

उसे निकट बुलाय मणि देकर कहा कि स्यमन्तक है इस मणि का नाम, इसमें है सुख सम्पति का विश्राम। सदा इसे मानियो, और बल तेज में मेरे समान जानियो। जो तू इसे जप, तप, संयम, व्रत, कर ध्यावेगा, तो इससे मुँह माँगा फल पावेगा। जिस देश नगर घर में यह जावेगा, तहाँ दुःख दरिद्र काल कभी न आवेगा, सर्वदा सुकाल रहेगा, और ऋद्धि सिद्धि भी रहेगी।

महाराज! ऐसे कह सूर्य देवता ने सत्राजित को बिदा किया। वह मणि ले अपने घर आया, आगे प्रात ही उठ स्नान कर संध्या तर्पण से निश्चिन्त हो, नित्य चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, सहित मणि की पूजा किया करै, और तिस मणि से जो आठ भार सोना निकले सो ले और प्रसन्न रहे। एक दिन पूजा करते करते सत्राजित ने मणि की शोभा और कान्ति देख निज मन में बिचारा कि यह मणि श्रीकृष्णचन्द्र को ले जाकर दिखाइये तो भला।

यों बिचार मणि कण्ठ में बाँध सत्राजित यदुवंशियों की सभा को चला, मणि का प्रकाश दूर से देख सब यदुवंशी खड़े हो श्रीकृष्ण जी से कहने लगे कि, महाराज! तुम्हारे दर्शन की अभिलाषा किये सूर्य चला आता है। तुमको ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादि, सब देवता ध्यावते हैं और आठ पहर ध्यान धर तुम्हारा यश गाते हैं। तुम हो आदि पुरुष अविनाशी, तुम्हें नित्य सेवती हैं कमला भई दासी। तुम हो सब देवों के देव, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव। तुम्हारे गुण और चरित्र हैं अपार, क्यों प्रभु छिपोगे आय संसार। महाराज! जब सत्राजित को आता देख सब यदुवंशी यों कहने लगे तब हरि बोले—ये सूर्य नहीं, सत्राजित यादव है। इसने सूर्य की तपस्या कर एक मणि पाई है, उसका प्रकाश सूर्य के समान है। वही मणि बाँधे वह चला आता है।

महाराज ! इतनी बात जब तक श्रीकृष्ण जी कहैं, तब तक वह आय सभा में बैठा, जहाँ यादव पंसासार खेल रहे थे। मणि की कान्ति देख सबका मन मोहित हुआ, और श्रीकृष्णचन्द्र भी देख रहे तब सत्राजित कुछ मन में समझ उस समय विदा हो अपने घर गया। आगे वह मणि गले में बाँध नित्य आवे, एक दिन सब यदुबंशियों ने हरि से कहा कि, महाराज ! सत्राजित से मणि ले राजा उग्रसेन को दीजै, और जग में यश लीजै। यह मणि इसे नहीं फबती राजा के योग्य है।

इस बात के सुनते ही श्रीकृष्ण जी ने हँसते हँसते सत्राजित से कहा कि यह मणि राजा जी को दो, और संसार में यश बड़ाई लो। देने का नाम सुनते ही वह प्रणाम कर चुपचाप वहाँ से उठ शोच विचार करता अपने भाई के पास जा बोला कि, आज श्रीकृष्णचन्द्र जी ने मुझ से मणि माँगी और मैंने न दी। इतनी बात जो सत्राजित के मुँह से निकली तो क्रोध कर उसके भाई प्रसेन ने वह मणि अपने गले में बाँधी और शस्त्र लगाय घोड़े पर चढ़ अहेर को निकला। महाबन में जाय धनुष चढ़ाय लगा साबर चीतल, पाढ़े, रीछ और मृग मारने। इसमें एक हरिण जो उसके आगे से झपटा, तो इसने भी खिजला उसके पीछे घोड़ा दपटा, और चला चला अकेला वहाँ पहुँचा कि जहाँ युगानयुग की एक बड़ी औड़ी गुफा थी।

मृग और घोड़े के पाँव की आहट पाय उसमें से एक सिंह निकला, वह इन तीनों को मार के मणि ले फिर उस गुफा में बढ़ गया। मणि के जाते ही उस महा अंधेरी गुफा में ऐसा प्रकाश हुआ कि पाताल तक चाँदना हो गया। वहाँ जाम्बवान् नाम एक रीछ जो श्रीरामचन्द्र के साथ रामावतार में था, सो त्रेता-

युग से तहाँ कुटुम्ब समेत रहता था। वह गुफा में उजाला देख उठ धाया और चला चला सिंह के पास आया। फिर वह सिंह को मार मणि ले अपनी स्त्री के निकट गया, उसने मणि ले अपनी पुत्री के पालने में बाँधी। वह उसे देख नित्य हँस हँस खेला करे और सारे स्थान में आठ पहर प्रकाश रहे। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! मणि यों गई और प्रसेन की यह गति भई। तब प्रसेन के साथ जो लोग गये थे उन्होंने आ सत्राजित से कहा कि महाराज!

चौ० हमको त्याग अकेलो धायो। जहाँ गयो तहँ खोज न पायो॥
कहत न बने ढूँढ़ फिर आये। कहूँ प्रसेन न बन में पाये॥

इतनी बात के सुनते सत्राजित खाना पीना छोड़ अति उदास हो चिन्ता कर मनहीं मन कहने लगा कि यह काम श्रीकृष्ण का है, जो मेरे भाई को मणि के लिये मार मणि ले घर में आय बैठा है। पहिले मुझ से माँगता था मैंने न दी अब उसने यों ली। ऐसे वह मनहीं मन कहै और रात दिन महा चिन्ता में रहै। एक दिन वह रात्रि समय स्त्री के पास सेज पर तन क्षीण मन मलीन मष्ट मारे बैठा मनहीं मन कुछ सोच बिचार करता था कि उसकी नारी ने कहा:—

चौ० कहा कन्त मन शोचत रहौ। मोसों भेद आपनों कहौ॥

सत्राजित बोला कि स्त्री से कठिन बात का भेद कहना उचित नहीं, क्योंकि इसके पेट में बात नहीं रहती जो घर में सुनती सो बाहर प्रकाश कर देती है। यह अज्ञान इसे किसी बात का ज्ञान नहीं भला हो कै बुरा इतनी बात के सुनते ही सत्राजित की स्त्री खिझलाकर बोली मैंने कब कोई बात घर में सुन बाहर कही है? जो तुम कहते हो। क्या सब नारी समान

होती हैं ? यों सुनाय फिर उसने कहा कि जब तक तुम अपने मन की बात मेरे आगे न कहोगे तब तक मैं अन्न पानी भी न खाऊँगी। यह बचन नारी से सुन सत्राजित बोला कि झूँठ सच को तो भगवान् जाने पर मेरे मन में एक बात आई है सो मैं तेरे आगे कहता हूँ, परन्तु तू किसी के सोंहीं मत कहियो। उसकी स्त्री बोली—अच्छा मैं न कहूँगी।

सत्राजित कहने लगा कि एक दिन श्रीकृष्ण जी ने मुझ से मणि माँगी और मैंने न दी इससे मेरे जी में आया है कि उसी ने मेरे भाई को बन में जाय मारा और मणि ली यह उसी का काम है, दूसरे की सामर्थ्य नहीं जो ऐसा काम करै:—

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! बात के सुनते ही उसे रात भर नींद न आई और उसने सात पाँच कर रैन गँवाई। भोर होते ही उसने जो अपनी सखी सहेली और दासी से कहा कि श्रीकृष्ण जी ने प्रसेन को मार और मणि ली यह बात रात मैंने अपने कन्त के मुख सुनी है, पर तुम किसी के आगे मत कहियो। वे वहाँ से तो भला कह चुपचाप चली आईं, पर अचरज कर एकान्त में बैठ आपस में चर्चा करने लगीं, निदान एक दासी ने यह बात श्रीकृष्णचन्द्र के रनिवास में जा सुनाई। सुनते ही सब के जी में आया जो सत्राजित की स्त्री ने यह बात कही है तो झूँठ न होगी। ऐसे समझ उदास हो सब रनिवास श्रीकृष्ण को बुरा कहने लगा। इसी बीच किसी ने आय श्रीकृष्ण जी से कहा कि, महाराज। तुम्हें तो प्रसेन के मारने और मणि के लेने का कलंक लग चुका तुम क्या बैठ रहे हो, कुछ इसका उपाय करो।

इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्ण जी पहिले तो घबराये, पीछे कुछ शोच समझ वहाँ आये। जहाँ उग्रसेन बसुदेव और

बलराम बैठे सभा करते थे और बोले कि महाराज ! हमें सब लोग कलङ्क लगाते हैं कि श्रीकृष्ण ने प्रसेन को मार मणि ले लो। इससे आप की आज्ञा ले प्रसेन और मणि के ढूँढ़ने को जाता हूँ, जिससे यह अपयश छूटे। यों कह श्रीकृष्ण जी वहाँ से आय कितने एक यदुवंशियों और प्रसेन के साथियों को साथ ले बन को चले। कितनी एक दूर जाय देखें तो घोड़े के चरण चिन्ह दृष्टि पड़े। उन्हीं को देखते देखते वहाँ जाय पहुँचे जहाँ सिंह ने कुरंग समेत प्रसेन को मार खाया था। दोनों की लोथ और सिंह के पाँवों का चिन्ह देख सब ने जाना कि उसे सिंह ने मार खाया। यह समझ मणि न पाय श्रीकृष्णचन्द्र सब को साथ लिये वहाँ गये जहाँ वह औंड़ी अँधेरी महा भयावनी गुफा थी। उसके द्वार पर देखते क्या हैं कि सिंह मरा पड़ा है पर मणि वहाँ भी नहीं ऐसे अचरज देख सब श्रीकृष्ण जी से कहने लगे कि महाराज ! इस बन में ऐसा बली जन्तु कहाँ से आया जो सिंह को मार मणि ले गुफा में पैठा, अब इसका कुछ उपाय नहीं। जहाँ तक ढूँढ़ने का धर्म था तहाँ तक आपने ढूँढा, तुम्हारा कलङ्क छूटा, अब नाहर के शिर अपयश पड़ा। श्रीकृष्ण जी बोले चलो इस गुफा में धस के देखें कि नाहर को मार मणि कौन ले गया। वे सब बोले कि, महाराज ! जिस गुफा का मुख देखे हमें डर लगता है उसमें धसेंगे कैसे वरन् हम तुमसे भी विनती कर कहते हैं कि इस महा भयावनी गुफा में आप भी न जाइये अब घर को पधारिये। हम सब मिल नगर में कहेंगे कि प्रसेन को मार सिंह ने मणि ली और सिंह को मार मणि ले कोई जन्तु एक अति डरावनी औंड़ी गुफा में गया। यह सब हम अपनी आँखों देख आये। श्रीकृष्णचन्द्र—बोले मेरा मन मणि में लगा है, मैं अकेला गुफा में जाता हूँ, दस दिन पीछे आऊँगा।

तुम दस दिन तक यहाँ रहियेा। इसमें हमें बिलम्ब हेाय तेा घर जाय संदेशा कहियेा। महाराज ! इतनी बात कह हरि उस भयावनी गुफा में पैठे और चले चले वहाँ पहुँचे, जहाँ जाम्बवान् सेाता था और उसकी स्त्री अपनी लड़की को खड़ी पालने में झुलाती थी।

वह प्रभु केा देख भय खाय पुकारी, और जाम्बवान् जागा तेा धाय हरि से जाय लिपटा और मल्लयुद्ध करने लगा। जब उसका केाई दाँव और बल हरि पर न चला, तब मनहीं मन विचार कर कहने लगा कि मेरे तेा बल के हैं लक्ष्मण राम, और इस संसार में ऐसा बली कौन है जेा मुझ से करै संग्राम। महाराज ! जाम्बवान् मन ही मन ज्ञान से यों बिचार प्रभु का ध्यान कर।

चौ० ठाढ़ेा उसरि जेारि के हाथ। बेाला दरश देहु रघुनाथ॥
अंतर्यामी मैं तुम जाने। लीला देखत ही पहिचाने॥
भली करी लीन्हों अवतार। करि हैा दूर भूमि को भार॥
त्रेतायुग तें यहि ठाँ रह्यो। नारद भेद तुम्हारेा कह्यो॥
मणि कै काजे प्रभु इत ऐहैं। तबहीं तेाकों दर्शन दैहैं॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, हे राजा ! जिस समय जाम्बवान् ने प्रभु को जान यों बखान किया, तिसी काल श्रीमुरारी भक्त हितकारी ने जाम्बवान् की लगन देख मगन हेा राम का भेष कर धनुष बाण धर दर्शन दिया। तब जाम्बवान् ने साष्टांग प्रणाम कर खड़ा हेा हाथ जेाड़ अति दीनता से कहा कि, हे कृपासिन्धु। दीनबन्धु, जेा आपकी आज्ञा पाऊँ तेा अपना मनेारथ कह सुनाऊँ। प्रभु बेाले—अच्छा ! कह, तब जाम्बवान् ने कहा कि, हे पतितपावन् ! दीनानाथ ! मेरे चित्त में यों है कि, यह कन्या जाम्बवन्ती आपको व्याह दूँ,

और जगत में यश बड़ाई लूँ। भगवान् ने कहा—जो तेरी इच्छा में ऐसा है तो हमें भी ग्रहण है। इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही जाम्बवान् ने पहिले तो श्रीकृष्णचन्द्र की चंदन, अक्षत, पुष्प, धूप,दीप, नैवेद्य ले पूजा की। पीछे वेद की विधि से अपनी बेटी व्याह दी और उसके यौतुक में मणि भी धर दी।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि, हे राजा! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द तो मणि समेत जाम्बवती को ले यों गुफा से चले और जो यादव गुफा के मुँह पर प्रसेन और श्रीकृष्ण के साथी खड़े थे अब तिनकी कथा सुनिये गुफ़ा के बाहर उन्हें जब अट्ठाइस दिन बीते और हरि न आये, तब वे वहाँ से निराश हो अनेक अनेक प्रकार की चिन्ता करते और रोते पीटते द्वारका में आये, ये समाचार पाय सब यदुवंशी निपट घबराये, और श्रीकृष्ण का नाम ले ले महा शोक कर रोने पीटने लगे, और सारे रनिवास में कुलाहल पड़ गया। निदान सब रानियाँ व्याकुल हो तन क्षीण मन मलीन राज मन्दिर से निकल रोती पीटती वहाँ आईं जहाँ नगर के बाहर एक कोस पर देवी का मन्दिर था। पूजा कर गौरी को मनाय हाथ जोड़ शिर नाय कहने लगीं। हे देवि! तुम्हें सुर नर मुनि सब ध्यावते हैं तुम से जो बर माँगते हैं सो पावते हैं, तू भूत भविष्य वर्तमान की सभी बात जानती है। कह, श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द कब आवेंगे। महाराज! सब रानियाँ तो देवी के द्वार पर धरना दे यों मनाय रही थीं और उग्रसेन बसुदेव बलदेव आदि सब यादव महा चिन्ता में बैठे थे, कि इस बीच श्रीकृष्णचन्द्र अविनाशी द्वारकाबासी हँसते हँसते जाम्बवन्ती को लिये आय राजसभा में खड़े हुए। प्रभु का चन्द्रमुख देख सब को आनन्द हुआ और यह शुभ समाचार पाय सब रानियाँ भी देवी पूजा कर घर आईं और

मङ्गलाचार करने लगों। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! श्रीकृष्ण जी ने सभा में बैठते ही सत्राजित को बुला भेजा और वह मणि देकर कहा कि यह मणि हमने न ली थी, तुमने झूँठै हमें कलङ्क दिया था।

चौपाई

यह मणि जाम्बवन्त ही लीनी। सुता समेत मोहिं तिन दीनी॥
मणि ले तबहिं चल्यो शिर नाय। सत्राजित मन शोचत जाय॥
हरि अपराध कियो मैं भारी। अनजाने दीनी कुलगारी॥
यादव पतिहिं कलंक लगायों। मणि के काजे बैर बढ़ायों॥
अब यह दोष कटै सेा कीजै। सतभामा मणि कृष्णै दीजै॥

महाराज! मनहीं मन शोच बिचार करता मणि लिए मन मारे सत्राजित अपने घर गया और उसने सब अपने जी का बिचार स्त्री से कह सुनाया। उसकी स्त्री बोली—स्वामी! यह बात तुमने अच्छी विचारी। सत्यभामा श्रीकृष्ण केा दीजै, और जगत में यश लीजै। इतनी बात के सुनते ही सत्राजित ने एक ब्राह्मण को बुलाय शुभ लग्न मुहूर्त्त ठहराय रोली अक्षत रुपया नारियल एक थाल में धर पुरोहित के हाथ श्रीकृष्ण के यहाँ टीका भेज दिया। श्रीकृष्णचन्द्र जी बड़ी धूमधाम से मौर बाँध ब्याहन आये, तब सत्राजित ने सब रीति भाँति कर बेद की विधि से कन्यादान दिया, और बहुत सा धन दे यौतुक में उस मणि केा भी धर दिया। मणि को देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र जी ने उसमें से निकाल बाहर किया और कहा कि यह मणि हमारे किसी काम की नहीं, क्योंकि तुमने सूर्य की तपस्या कर पाई, हमारे कुल में श्रीभगवान् छुड़ाय और देवता की दी वस्तु नहीं लेते यह तुम अपने घर में रक्खेा। श्रीकृष्णचन्द्र जी के मुख से यह बात के निकलते ही सत्राजित मणि लेकर लजाय रहा

पर श्रीकृष्णचन्द्र जी सत्यभामा को ले गाजे बाजे से निज धाम को पधारे और आनन्द से सत्यभामा समेत राजमन्दिर में जा बिराजे।

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूँछा कि कृपानिधान! श्रीकृष्ण जी को कलङ्क क्यों लगा सो कृपाकर कहो। शुकदेव जी बोले—राजा!

दो० चाँद चौथ को देखियो, मोहन भादों मास।
तातें लग्यो कलङ्क यह, अति मन भयो उदास॥
जो भादों की चौथ को, चाँद निहारै कोय।
यह प्रसंग श्रवणन सुनै, ताहि कलङ्क न होय॥

५८—शतधन्वा-बध

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! मणि के लिये जैसे शतधन्वा सत्राजित को मार मणि ले अक्रूर को दे द्वारका छोड़ भगा तैसे मैं कथा कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो। एक समय हस्तिनापुर आय किसी ने बलराम सुखधाम और श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द से यह संदेशा कहा :—

दो० पाण्डव न्यौते अन्धसुत, घर के बीच सुवाय।
अर्द्ध रात्रि चहुँ ओर तें, दीनी आग लगाय॥

इतनी बात के सुनते ही दोनों भाई अति दुःख पाय घबराय, तत्काल दारुक सारथी से अपना रथ मँगाय तिस पर चढ़ हस्तिनापुर को गये और रथ से उतर कौरवों की सभा में जाय खड़े रहे वहाँ देखते क्या हैं कि सब तन क्षीण मन मलीन बैठे हैं, दुर्योधन मन ही मन कुछ सोचता है, भीष्म नयनों से जल मोचता है, धृतराष्ट्र बड़ा दुःख करता है, द्रोणाचार्य की भी

आँखों से पानी चलता है, विदुर जी भी पछताय रहे थे, गान्धारी उसके पास बैठी थीं, और भी जेा कौरवों की स्त्रियाँ थीं सेा भी पाण्डवों की सुधि कर कर रेा रही थीं, और सारी सभा शोकमय हेा रही थी। महाराज! वहाँ की यह दशा देख श्रीकृष्ण बलराम जी भी उनके पास जा बैठे और उन्होंने पाण्डवों का समाचार पूँछा पर किसी ने कुछ भेद न कहा, सब चुप हेा रहे।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! श्रीकृष्ण बलराम जी तेा पाण्डवों के जलने के समाचार पाय हस्तिनापुर गये और द्वारका क शतधन्वा नाम एक यादव था कि जिसने पहिले सत्यभामा माँगी थी तिसके पास अक्रूर कृतवर्मा गये और दोनों ने उससे कहा कि, हस्तिनापुर गये श्रीकृष्ण बलराम, अब आय पड़ा है तेरा दाँव। सत्राजित से तू अपना बैर ले क्योंकि उसने तेरी बड़ी चूक की है, जेा तेरी माँग श्रीकृष्ण केा दी और तुझे गाली चढ़ाई, अब यहाँ उसका केाई नहीं है सहाई। इतनी बात के सुनते ही शतधन्वा अति क्रोध कर उठा और रात्रि समय सत्राजित के घर जा ललकारा निदान छल बल कर उसे मार यह मणि ले आया, तब शतधन्वा अकेला घर में बैठे कुछ सेाच बिचार मनहीं मन पछताय कहने लगा :—

चौ० मैं यह बैर कृष्ण सेां कियेा। मेाहिं अक्रूर क्रूर मत दियेा॥

दो० कृतवर्मा अक्रूर मिल, मतो दियेा मेाहिं आय।
साधु कहै जो कपट को, तासों कहा बसाय॥

महाराज! इधर शतधन्वा तो इस भाँति पछताय पछताय बार बार कहता था कि, होनहार से कुछ न बसाय, कर्म की

गति किसी की जानी नहीं जाय और उधर सत्राजित को मरा निहार उसकी नारी रो रो कन्त कन्त कर उठी पुकार, उसके रोने की धुनि सुनि सब कुटुम्ब के लोग क्या स्त्री क्या पुरुष अनेक अनेक भाँति की बात कह रोने पीटने लगे और सारे घर में कोलाहल पड़ गया। पिता का मारना सुन उसी समय आय सत्यभामा जी सब को समझाय बुझाय बाप की लोथ ले तेल में डलवाय अपना रथ मँगाय तिस पर चढ़ श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द के पास चलीं और रात दिन के बीच जा पहुँची।

चौ० देखत ही उठ बोले हरी। घर है कुशल क्षेम सुन्दरी॥
सतभामा कहि जोरे हाथ। तुम बिन कुशल कहाँ यदुनाथ॥
हमहिं विपति शतधन्वा दई। मेरो पिता हन्यो मणि लई॥
धरे तेल में श्वशुर तिहारे। करो दूर सब शूल हमारे॥

इतनी बात कह सत्यभामा जी भी श्रीकृष्ण बलदेव जी के सोंहीं खड़ी हो हाय पिता! हाय पिता! कर धाय मार रोने लगीं। उनका रोना सुन श्रीकृष्ण बलराम जी ने भी पहिले तो अति उदास हो रोकर लोक रीति दिखाई, पीछे सत्यभामा को आशा भरोसा दे ढाढ़स बँधाय वहाँ से साथ ले द्वारका में आये। श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! द्वारका में आते ही श्रीकृष्ण-चन्द्र ने सत्यभामा को महादुखी देख प्रतिज्ञा कर कहा कि, सुन्दरी! तुम अपने मन में धीर्य धरो, पर किसी बात की चिन्ता मत करो, जो होना था सो तो हुआ, पर अब मैं शतधन्वा को मार तुम्हारे पिता का बदला लूँगा तब मैं और काम करूँगा।

महाराज! राम कृष्ण के आते ही शतधन्वा अति भय खाय घर छोड़ मन ही मन यह कहता है कि पराये कहे मैंने श्रीकृष्ण जी से बैर किया अब शरण किसकी लूँ? कृतवर्मा के पास आया

और हाथ जोड़ अति बिनती कर बोला कि महाराज ! आप के कहे से मैंने किया यह काम, अब मुझ पर कोपे हैं श्रीकृष्ण और बलराम इसे से मैं भाग कर तुम्हारी शरण आया हूँ मुझे कहीं रहने का ठौर बताइये। शतधन्वा से इतनी बात सुन कृतवर्मा बोला कि सुनो हमसे कुछ नहीं हो सकता। जिसका बैर श्रीकृष्णचन्द्र से भया, सो नर सब ही से गया। तू क्या नहीं जानता था? कि हैं अति बली मुरारि, तिनसे बैर किये होगी हारि। किसी के कहे से क्या हुआ अपना बल बिचार काम क्यों न किया। संसार की रीति है कि ब्याह और प्रीति समान ही से कीजे। तू हमारा भरोसा मत रख हम श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द के सेवक हैं उन से बैर करना हमें नहीं शोभता, जहाँ तेरे सींग समाय तहाँ जा।

महाराज इतनी बात सुन शतधन्वा निपट उदास हो वहाँ से चल अक्रूर के पास आया और हाथ बाँध शिर नाय बिनती कर हा हा खाय कहने लगा कि, प्रभु तुम हौ यादव पति ईश, तुम्हैं मान के नवावते हैं शीश। साधु दयाल धरण तुम धीर, दुःख सह आप हरते हौ पर पीर। बचन कहे कि लाज तुम्हैं, अपनी शरण रखो तुम हमैं। मैंने तुम्हारा ही कहा मान यह काम किया, अब तुम ही कृष्ण के हाथ से बचाओ।

इतनी बात के सुनते ही अक्रूर जी ने शतधन्वा से कहा कि तू बड़ा मूर्ख है, हम से ऐसी बात कहता है। क्या तू नहीं जानता कि श्रीकृष्णचन्द्र सब के कर्त्ता दुःखहर्त्ता हैं। उनसे बैर कर संसार में कब कोई रह सका है। कहने वाले का क्या बिगाड़, अब तो तेरे शिर आ पड़ी। कहा है कि सुर नर मुनि की यही है रीति, अपने स्वार्थ के लिये करते हैं प्रीति। और जगत् में बहुत भाँति के लोग हैं, सो अनेक अनेक प्रकार की बातें

अपने स्वार्थ की कहते हैं इससे मनुष्य को उचित है कि किसी के कहे पर न जाय, जो काम करै तिस में पहिले अपना भला बुरा बिचार ले पीछे उस काज में पाँव दे। तू ने बेसमझ बूझ कर किया है काम, अब तुझे कहीं जगत् में रहने को नहीं है धाम। जिसने कृष्ण से बैर किया, वह फिर न जिया। जहाँ भाग के रहा, तहाँ मारा गया। मुझे मरना नहीं जो तेरा पक्ष करूँ, संसार में जीव सब को प्यारा है।

महाराज! अक्रूर जो ने जब शतधन्वा को यों रूखे सूखे बचन सुनाये, तब तो वह निराश हो जी की आश छोड़ मणि अक्रूर जी के पास रख रथ पर चढ़ नगर छोड़ भागा, और उसके पीछे रथ पर चढ़ श्रीकृष्ण बलराम भी उठ दौड़े। और चलते चलते इन्होंने उसे सौ योजन पर लिया। इनके रथ की आहट पा शतधन्वा अति घबराय रथ से उतर मिथला पुरी में जा बढ़ा। प्रभु ने उसे देख क्रोधकर सुदर्शनचक्र को आज्ञा की कि तू अभी शतधन्वा का शिर काट। तब श्रीकृष्णचन्द्र ने उसके पास जाय मणि ढूँढ़ी पर न पाई फिर इन्होंने बलदेव जी से कहा कि भाई! शतधन्वा को मारा और मणि न पाई। बलराम जी बोले कि भाई! वह मणि किसी बड़े पुरुष ने पाई, जिसने हमें लाय नहीं दिखाई। वह मणि किसी के पास छिपने की नहीं, तुम देखियो निदान प्रगटेगी कहीं न कहीं।

इतनी बात कह बलदेव जी ने श्रीकृष्णचन्द्र से कहा कि भाई! अब तुम तो द्वारकापुरी को सिधारो और हम मणि के खोजने को जाते हैं जहाँ पावैंगे तहाँ से ले आवेंगे।

इतनी कथा श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द तो शतधन्वा को मार

द्वारकापुरी को पधारे, और बलराम सुखधाम मणि के खोजने को सिधारे। देश देश नगर नगर गाँव गाँव में ढूँढ़ते ढूँढ़ते बलदेव जी चले चले अयोध्यापुरी जा पहुँचे। इनके पहुँचने के समाचार पाय अयोध्या का राजा दुर्य्योधन उठ धाया, आगे बढ़ भेंट कर भेंट दे प्रभु को बाजे गाजे से पाटम्बर के पाँवड़े डालता निज मन्दिर में ले आया, सिंहासन पर बिठाय अनेक प्रकार से पूजन कर भोजन करवाय अति बिनती कर शिर नाय हाथ जोड़ सन्मुख खड़ा हो बोला, कृपासिन्धु! आप का आना इधर कैसे हुआ? सो कृपा कर कहिये।

महाराज! बलदेव जी ने उसके मन की लगन देख मगन हो अपने जाने का सब भेद कह सुनाया। इतनी बात सुन राजा दुर्य्योधन बोला कि हे नाथ! वह मणि कहीं किसी के पास न रहेगी, कभी न कभी आप से आप प्रकाश हो रहेगी यों सुनाय फिर हाथ जोड़ कहने लगा कि दीनदयाल! मेरे बड़े भाग जो आपका दर्शन मैंने घर बैठे पाया और जन्म जन्म का पाप गवाँया, अब कृपा कर दास के मन की अभिलाषा पूरी कीजे और कुछ दिवस रह शिष्य कर गदायुद्ध सिखाय जग में यश लीजे। महाराज! दुर्य्योधन से इतनी बात सुन बलराम जी ने उसे शिष्य किया और कुछ दिन वहाँ रह सब गदायुद्ध की विद्या सिखाई, पर मणि वहाँ भी सारे नगर में खोजी और न पाई। आगे श्रीकृष्ण जी के पहुँचने के उपरांत कितने एक दिन पीछे बलराम जी भी द्वारका नगरी में आये तो श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सब यादव साथ ले सत्राजित को तेल से निकाल अग्नि संस्कार किया और अपने हाथों दाह दिया। जब श्रीकृष्ण जी क्रिया कर्म्म से निश्चित हुए तब अक्रूर और कृतवर्म्मा कुछ आपस में शोच बिचार कर श्रीकृष्ण जी के पास आय उन्हें एकान्त ले

जाय मणि दिखाय कर बोले कि महाराज ! यादव सब बहिर्मुख भये और माया में मोह गये। तुम्हारा स्मरण ध्यान छोड़ धनान्ध हो रहे हैं, जो ये अब कुछ कष्ट पावें तो ये प्रभु की सेवा में आवें इसलिये हम नगर छोड़ मणि ले भागते हैं, जब हम इनसे आप का भजन स्मरण करावैंगे, तभी द्वारका पुरी में आवैंगे इतनी बात कह अक्रूर और कृतवर्मा सब कुटुम्ब समेत आधीरात को श्री-कृष्णचन्द्र के भेद में द्वारका पुरी से भागे, ऐसे कि किसी ने न जाना कि किधर गये। भोर होते ही सारे नगर में यह चर्चा फैली कि न जानिये रात की रात में अक्रूर और कृतवर्मा समेत किधर गये और क्या हुए।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज ! इधर द्वारका पुरी में तो नित घर घर यह चर्चा होने लगी और उधर अक्रूर जी प्रथम प्रयाग में जाय, मुण्डन करवाय, त्रिवेणी नहाय बहुत सा दान पुण्य कर तहाँ हरि पैड़ी बँधवाय गया को गये। वहाँ भी फल्गू नदी के तीर बैठे शास्त्र की रीति से श्राद्ध किया और गयालियों को जिमाय बहुत ही दान दिया, पुनि गदाधर के दर्शन कर तहाँ से चल काशी पुरी में आये। इनके आने का समाचार पाय इधर उधर के राजा सब आय भेंट कर भेंट धरने लगे और ये वहाँ यज्ञ, दान, तप, व्रत, कर रहने लगे। इसमें कितने एक दिन बीते श्रीमुरारी भक्त हितकारी ने अक्रूर जी का बुलाना जी में ठान बलराम जी से आनके कहा कि भाई ! अब प्रजा को कुछ दुःख दीजै और अक्रूर जी को बुलाय लीजै। बलदेव जी बोले—महाराज ! जो आपकी इच्छा में आवै सो कीजै और साधुओं को सुख दीजै ! इतनी बात बलराम जी के मुख से निकलते ही श्रीकृष्णचन्द्र जी ने ऐसा किया कि द्वारका पुरी में घर घर ताप, तिजारी, मिरगी, क्षयी,

दाद, खाज, आधासीसी, कोढ़, महाकोढ़, जलंधर, भगन्दर, कठोदर, अतीसा, खाँसी, शूल, अर्द्धाङ्ग, शीताङ्ग, झोला, सन्निपात, आँव, मरोड़ा आदि व्याधि फैल गईं, और चार महीने वर्षा भी न हुई। तिससे सारे नगर में नदी नाले सरोवर सूख गये, तृण अन्न भी कुछ न उपजा। नभचर, जलचर, थलचर, जीव, जन्तु, पक्षी और ढोर लगे व्याकुल सूख सूख मरने और पुरवासी मारे भूखों के त्राहि त्राहि करने। निदान सब नगर निवासी महा व्याकुल हो निपट घबराये, श्रीकृष्णचन्द्र दुःख निकन्द के पास आये और अति गिड़गिड़ाय अधिक आधीनता कर हाथ जोड़ शिर नाय कहने लगे :—

चौ० हम तो शरण तिहारी रहैं। कष्ट महा अब क्यों कर सहैं॥
मेघ न बरष्यो पीड़ा भई। कहा बिधाता ने यह ठई॥

इतना कह फिर कहने लगे कि, हे द्वारकानाथ! दीनदयाल! हमारे तो कर्त्ता दुखहर्त्ता तुमहीं तुम्हें छोड़ कहाँ जायँ और किससे कहैं, यह उपाधि बैठे बैठाये में कहाँ से आई और क्यों हुई? सो कृपा कर कहिये।

श्रीशुकदेव मुनि बोले, महाराज! इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र जी ने उनसे कहा कि सुनो जिस पुर से साधुजन निकल जाता है, तहाँ आप से आपत्काल दरिद्र दुःख आता है। जब से अक्रूर जी इस नगर से गये हैं तभी से यहाँ यह गति हुई है। जहाँ रहते हैं साधु सत्यवादी और हरिदास तहाँ होता है अशुभ अकाल विपत्ति का नाश; इन्द्र रखता है हरि भक्तों से स्नेह, इसीलिये उस नगर में भली भाँति वर्षाता है मेंह। इतनी बात के सुनते ही सब यादव बोल उठे कि महाराज! आपने सत्य कहा, यह बात हमारे मन में भी आई क्योंकि अक्रूर के पिता का श्वफल्क नाम है, वह भी बड़ा साधु सत्यवादी धर्मात्मा

है। जहाँ वह रहता है तहाँ कभी नहीं होता है दुःख दरिद्र और अकाल, सदा समय पर वर्षता है मेघ तिससे होता है सुकाल; और सुनी है कि एक समय काशी पुरी में बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा, तब काशी का राजा श्वफल्क को ले गया। महाराज श्वफल्क के जाते ही उस देश में मेघ मन मानता वर्षा, समा हुआ और सब का दुःख गया। पुनि काशी पुरी के राजा ने अपनी लड़की श्वफल्क को व्याह दी। ये आनन्द से वहाँ रहने लगे, उस राज-कन्या का नाम गांदिनी था तिसका पुत्र अक्रूर है। इतना कह सब यादव बोले कि, महाराज! हम तो यह बात आगे से जानते थे, अब जेा आप आज्ञा कीजै सेा करैं। श्रीकृष्णचन्द्र बेाले कि अब तुम अति आदर मान कर अक्रूर जी को जहाँ पाओ तहाँ से ले आओ। यह बचन प्रभु के मुख से निकलते ही सब यादव मिल अक्रूर को ढूँढ़ने निकले और चले चले वाराणसी पहुँचे, अक्रूर जी से भेंट कर भेंट दे हाथ जेाड़ शिर नाय सम्मुख खड़े हेा बेाले :—

चौ० चलौ नाथ बेालत बलश्याम। तुम बिन पुरवासी हैं बिराम॥
जितहीं तुम तितहीं सुखवास। तुम बिन कष्ट दरिद्र निवास॥
यद्यपि पुर में श्रीगेापाल। तऊ कष्ट दै परयो अकाल॥
साधुन के वश श्रीपति रहैं। तिन ते सब सुख सम्पति लहैं॥

महाराज! इतनी बात के सुनते ही अक्रूर जी वहाँ से अति आतुर हेा कुटुम्ब समेत कृतवर्म्मा को साथ ले सब यदुवंशियों को लिये बाजे गाजे से चल खड़े हुये और कितने एक दिनों के बीच सब समेत द्वारकापुरी में पहुँचे। इनके आने का समाचार पाय श्रीकृष्ण जौर बलराम आगे बढ़ आय इन्हें अति मान सन्मान से पाँवड़े देते हुए नगर में लिवाय ले गये। हे राजा! अक्रूर जी के पुरी में प्रवेश करते ही मेह वर्षा और समा हुआ,

सारे नगर का दुःख दरिद्र बह गया। अक्रूर की महिमा हुई सब द्वारकावासी आनन्द मंगल से रहने लगे। आगे एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने अक्रूर जी को निकट बुलाय एकान्त में ले जाय के कहा तुमने सत्राजित की मणि ले क्या की? वह बोला—महाराज! मेरे पास है। फिर प्रभु ने कहा जिसकी वस्तु तिसे दीजै, और वह न होय तो उसके पुत्र को सौंपिये, पुत्र न होय तो उसकी स्त्री को दीजिये, स्त्री न होय तो उसके भाई को दीजे, भाई न होय तो उसके कुटुम्ब को सौंपिये, कुटुम्ब भी न होय तो उसके गुरुपुत्र को दीजे, गुरुपुत्र न होय तो ब्राह्मण को दीजिये, पर किसी का द्रव्य आप न लीजिये यह न्याय है। इससे अब उचित है कि सत्राजित की मणि उसके नाती को दो और जगत् में बड़ाई लेा। महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र के मुख से इतनी बात के निकलते ही अक्रूर जी ने मणि लाय प्रभु के आगे धर हाथ जोड़ अति बिनती कर कहा कि, दीनानाथ! यह मणि आप लीजे और मेरा अपराध दूर कीजे, क्योंकि इस मणि से सेाना निकला सेा मैंने तीर्थ यात्रा में उठाया है। प्रभु बेाले अच्छा किया, यों कह मणि ले हरि ने सत्यभामा को जाय दी और उसके चित्त की सब चिन्ता दूर की।

५६—श्रीकृष्ण पंचविवाहकरण

श्रीशुकदेव जी बेाले कि, महाराज! एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द जगबन्धु जी ने यह बिचार किया कि अब चल कर पाण्डवों को देखिये, जेा आग से बच जीते जागते हैं। इतनी बात कह हरि कितने एक यदुवंशियों को साथ ले द्वारकापुरी से चल हस्तिनापुर आये। इनके आने का समाचार पाय युधिष्ठिर

अर्जुन भीम नकुल सहदेव पाँचों भाई अति हर्षित हो उठ धाये और नगर के बाहर आय मिल बड़ी आव भगत कर लियाय घर ले गये।

घर में जाते ही कुन्ती और द्रौपदी ने पहिले तो सात सुहागिनों को बुलाय, मोतियों की चौक पुरवाया तिस पर चन्दन की चौकी बिछवाय, उस पर श्रीकृष्ण को बैठाय, मंगलाचार करवाय, अपने हाथों आरती उतारी। पीछे प्रभु के पाँव धुलवाय रसोई में ले जाय षट्रस भोजन करवाया। महाराज! जब श्रीकृष्णचन्द्र जी भोजन कर पान खाने लगे तब :—

चौ० कुन्ती ढिग बैठी कह बात। पिता बन्धु पूछत कुशलात॥
नीके शूरसेन बसुदेव। बन्धु भतीजे अरु बलदेव॥
तिनमें प्राण हमारो रहै। तुम बिन कौन कष्ट दुख दहै॥
जब जब बिपति परी अति भारी। तब तुम रक्षा करी हमारी॥
अहो कृष्ण तुम पर-दुख-हरणा। पाँचौ बन्धु तुम्हारी शरणा॥
ज्यों हरणी बक झुंड ये त्रासा। त्यों के अंध सुतन के बासा॥

महाराज! जब कुन्ती यों कह चुकी :—

चौ० तबहिं युधिष्ठिर जोरे हाथ। तुम हौ प्रभु यादवपति नाथ॥
तुमको योगीश्वर नित ध्यावत। शिव विरंचि के ध्यान न आवत॥
हमको घर ही दर्शन दीनो। ऐसो कहा पुण्य हम कीनो॥
चार मास रहि के सुख दैहो। बर्षाऋतु बीते घर जैहो॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! इस बात के सुनते ही भक्त हितकारी श्रीबिहारी सबको आशा भरोसा दें वहाँ रहे और दिन दिन आनन्द प्रेम बढ़ाने लगे। एक दिन राजा युधिष्ठिर के साथ श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन भीम नकुल सहदेव को लिये धनुष बाण कर गहे रथ पर चढ़ बन में अहेर को गये।

वहाँ जाय रथ से उतर फेंट बाँध बाँहें चढ़ाय शर साध जंगल झाड़ झाड़ लगे सिंह, बाघ, गैंड़े, अरने, साबर, शूकर, हिरण, रोझ, मार मार राजा युधिष्ठिर के सन्मुख लाय लाय धरने और राजा युधिष्ठिर हँस हँस रोझ रोझ ले ले जो जिसके भक्त थे तिसे देने और हिरण रोझ साबर रसोई में भेजने।

तिस समय श्रीकृष्ण और अर्जुन आखेट करते करते कितनी एक दूर सब से आगे जाय एक वृक्ष के नीचे खड़े हुए, फिर नदी के तीर जाके दोनों ने जल पिया। इसमें श्रीकृष्ण जी देखते क्या हैं कि नदी तीर एक सुन्दरी नवयौवना चन्द्रमुखी, चम्पक-वरणी, मृगनयनी, पिकबयनी, गजगामिनी, केहरिकटिनी, नखशिख से शृंगार किये अनंग मद पिये महा छवि लिये, अकेली फिरती है। उसे देखते ही हरि छकित थकित हो बोले :—

चौ० यह का सुन्दर विहरत अंग। कोऊ नहीं तासु के संग॥

महाराज! इतनी बात प्रभु के मुख से सुन और उसे देख अर्जुन हड़बड़ाय दौड़ वहाँ गया। जहाँ वह महा सुन्दरी नदी के तीर तीर फिर रही थी और पूँछने लगा कि, कह सुन्दरी! तू कौन है और कहाँ से आई है और किसलिये यहाँ अकेली फिरती है? यह भेद अपना सब मुझे समझाय कर कह इतनी बात के सुनते ही :—

चौ० सुन्दरि वरणै कथा आपनी। हौं कन्या हौं सूरज तनी॥
कालिन्दी है मेरो नाम। पिता दियो जल में विश्राम॥
रचे नदी में मन्दिर आय। मोसो पिता कह्यो समझाय॥
कीजो सुता नदी ढिग फेरो। आय मिलैगो तहँ वर तेरो॥
यदुकुल माहिं कृष्ण अवतरे। तो काजे ईहठाँ अनुसरे॥
आदि पुरुष अविनाशी हरी। ता काजे तू है अवतरी॥
ऐसे जबहिं तात रवि कह्यो। तबते मैं हरि पद को चह्यो॥

महाराज ! इतनी बात के सुनते ही अर्जुन अति प्रसन्न हो बोला कि हे सुन्दरी ! जिनके कारण तू यहाँ फिरती है वेई प्रभु अविनाशी द्वारकावासी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द आय पहुँचे। महाराज ! ज्यों अर्जुन के मुँह से इतनी बात निकली त्यों भक्तहितकारी श्रीबिहारी भी रथ बढ़ाय वहाँ आय पहुँचे। प्रभु को देखते ही अर्जुन ने उसका सब भेद कह सुनाया, तब श्रीकृष्णचन्द्र जी ने हँस कर झट उसे रथ पर चढ़ाय नगर की बाट ली। जितने में श्रीकृष्णचन्द्र बन से नगर में आवैं, तितने में विश्वकर्म्मा ने एक मन्दिर अति सुन्दर सबसे निराला प्रभु की इच्छा देख बनाय रक्खा। हरि ने आते ही कालिन्दी को वहाँ उतारा और आप भी रहने लगे।

आगे कितने एक दिन पीछे एक समय श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन रात्रि की बिरियाँ किसी स्थान पर बैठे थे कि अग्नि ने आय हाथ जोड़ शिर नाय हरि से कहा—महाराज ! मैं बहुत दिन की भूखी सारे संसार में फिर आई पर खाने को कहीं न पाया। अब एक आशा आपकी है जो आज्ञा पाऊँ तो बन जंगल जा खाऊँ। प्रभु बोले, अच्छा जा खा। फिर अग्नि ने कहा, कृपानाथ ! मैं अकेली बन में नहीं जा सकती जो जाऊँ तो इन्द्र आय मुझे बुझा देगा। यह बात सुन श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन से कही कि, बन्धु ! तुम जाय अग्नि को चराय आओ, यह बहुत दिन से भूखी मरती है।

महाराज ! श्रीकृष्णचन्द्र जी के मुख से इतनी बात के निकलते ही अर्जुन धनुषबाण ले अग्नि के साथ हुए और आग बन में जाय भड़की और लगे आम, अमली, बड़, पीपल, पाकड़, ताल, तमाल, महुआ, जामन, खिरनी, कचनार, दाख, चिरौंजी, केला, नींबू, बेर आदि सब वृक्ष जलने, और :—

चौ० पटकैं काँस बाँस अति चटकैं। बन के जीव फिरैं सब भटकैं॥

जिधर देखिये तिधर सारे बन में आग हूहू कर जलती है और धुवाँ मण्डलाय आकाश को गया। उस धुएँ को देख इन्द्र ने मेघपति को बुलाय कहा कि तुम जाओ अति वर्षा कर अग्नि को बुझाय बन और बन के पक्षी जीव जंतुओं को बचाओ। इतनी आज्ञा पाय मेघपति दल बादल साथ ले वहाँ आय घहराय ज्यों बर्षने को हुआ, त्यो अर्जुन ने ऐसे पवन बाण मारे कि बादल राई काई हो यों उड़ गये कि जैसे रुई के पहले पवन के झोकों से उड़ जाय। न किसी ने आते देखा न जाते, ज्यों आये त्यों सहज ही बिलाय गये और आग बन झाड़ खण्ड जलाती वहाँ आई कि जहाँ मय नाम असुर का मन्दिर था। अग्नि को अतिरिस भरी आती देख मय महा भय खाय नंगे पाँवों गले में हाथ बाँध मन्दिर से निकल सम्मुख आय खड़ा हुआ और साष्टांग प्रणाम कर अति गिड़गिड़ाय के बोला—हे प्रभु! हे प्रभु! इस आग से बचाय वेग मेरी रक्षा करो।

चौ० चरी अग्नि पायों सन्तोष। अब तुम मानो जिन कछु दोष॥
मेरी बिनती मन में लाओ। वैसन्दर ते मोहिं बचाओ॥

महाराज! इतनी बात मय दैत्य के मुख से निकलते ही अग्नि बाण वैसन्दर ने धरे और अर्जुन भी सकुच खड़े रहे निदान वे दोनों मय को साथ ले श्रीकृष्णचन्द्र आनंद कन्द के निकट जा बोले कि, महाराज :—

चौ० यह मय असुर आइ है काम। तुम्हरे लिये बनैंहै धाम॥
अबहीं सुध तुम मय की लेउ। अग्नि बुझाय अभय करि देउ॥

इतनी बात कह अर्जुन ने गाण्डीव धनुष शर समेत हाथ से भूमि में रखा तब प्रभु ने अग्नि की ओर आँख दबाय सैन की,

वह तुरन्त बुझ गई और सारे वन में शीतलता हुई। फिर श्री-कृष्णचन्द्र अर्जुन सहित मय को साथ ले आगे बढ़े। वहाँ जाय मय ने कञ्चन के मणिमय मंन्दिर अति सुन्दर सुहावने मन भावने क्षण भर में बनाय खड़े किये ऐसे कि, जिनकी शोभा कुछ बरणी नहीं जाती। जो देखने को आता सो चकित हो चित्र सा खड़ा हो जाता है। आगे श्रीकृष्णचन्द्र महाराज! चार महीने पीछे वहाँ से चल कहाँ आये कि जहाँ राजसभा में राजा युधिष्ठिर बैठे थे। आते ही प्रभु ने राजा से द्वारका जाने की आज्ञा माँगी, यह बात श्रीकृष्णचन्द्र के मुख से निकलते ही सभा समेत राजा युधिष्ठिर अति उदास हुए और नगर निवासी भी क्या स्त्री क्या पुरुष सब चिन्ता करने लगे। निदान प्रभु सब को यथा योग्य समझाय बुझाय आशा भरोसा दे अर्जुन को साथ ले युधिष्ठिर से बिदा हो हस्तिनापुर से चल हँसते खेलते कितने एक दिनों में द्वारकापुरी में पहुँचे। इनका आना सुन सारे नगर में आनन्द हो गया और सब का बिरह दुःख गया। माता पिता ने पुत्र का मुख देख सुख पाया, और मन का खेद सब गँवाया।

आगे एक दिन श्रीकृष्ण जी ने राजा उग्रसेन के पास जाय कालिन्दी का भेद सब समझाय के कहा कि, महाराज! भानुसुता कालिन्दी को हम ले आये हैं, तुम वेद की विधि से हमारा उसके साथ व्याह कर दो। यह बात सुन उग्रसेन ने वहीं मंत्री को बुलाय आज्ञा दी कि तुम अभी जाय व्याह का कुल सामान ले आओ। आज्ञा पाय मंत्री ने व्याह की सामग्री बात की बात में सब लाय दी तिसी समय उग्रसेन बसुदेव ने एक ज्योतिषी को बुलाय शुभ दिन ठहराय श्रीकृष्ण जी का कालिन्दी के साथ वेद के विधि से व्याह किया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि, हे राजा! कालिन्दी का विवाह तो यों हुआ। अब आगे जैसे मित्रविन्दा को हरि लाये और व्याहा तैसे कथा कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो। शूरसेन की बेटी श्रीकृष्ण जी की फूफी तिसका नाम राजाधिदेवी उसकी कन्या मित्रविन्दा जब वह व्याहने योग्य हुई तब उसने स्वयम्बर किया, तहाँ सब देश के नरेश गुणवान् रूपनिधान, महा बलवान्, शूरवीर, अतिधीर, बन ठन के एक से एक अधिक जा इकट्ठे हुये। ये समाचार पाय श्रीकृष्ण जी भी अर्जुन को साथ ले वहाँ गये और जाय के बीचों बीच स्वयंबर के खड़े हुये।

चौ० हरषी सुन्दरि देखि मुरारी। हार डार मुख रही निहारी॥

महाराज! यह चरित्र देख सब देश देश के राजा तो लज्जित हो मनहीं मन अनखाने लगे। और दुर्योधन ने जाय उसके भाई मित्रसेन से कहा कि, बन्धु! तुम्हारे मामा का बेटा है हरि तिसे देख भूली है सुन्दरि, यह लोक विरुद्ध रीति है उसके होने से जगत में हँसाई होगी। तुम बहन को समझाय कहो कि श्रीकृष्ण को न बर, नहीं तो सब राजाओं को भीड़ में हँसी होयगी। इतनी बात के सुनते ही मित्रसेन ने जाय बहन को बुझाय के कहा :—

महाराज! भाई की बात सुन समझ जो मित्रबिन्दा प्रभु के पास से हट कर अलग दूर खड़ी हुई, तो अर्जुन ने झुक कर श्रीकृष्णचन्द्र के कान में कहा—महाराज! अब आप किसकी कान करते हैं? बात बिगड़ चुकी जो कुछ करना हो सो कीजै बिलम्ब न करिये। अर्जुन की बात सुनते ही श्रीकृष्ण जी ने स्वयम्बर के बीच से झट हाथ पकड़ मित्रबिन्दा को उठाय रथ में बिठाय लिया और वहीं सब के देखते ही रथ हाँक दिया।

उस काल सब भूपाल तो अपने अपने शस्त्र ले ले घोड़ों पर चढ़ चढ़ प्रभु का आगा घेर लड़ने को जा खड़े रहे और नगर-निवासी लोग हँसि हँसि तालियां बजाय बजाय गालियां दे दे यों कहने लगे :—

चौ० फुफू सुता को ब्याहअन आयो। यह तो कृष्ण बड़ो यश पायो॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! जब श्रीकृष्ण जी ने देखा कि चारों ओर से जो असुर-दल घिर आया है सो लड़े बिन न रहेगा। तब उन्होंने कई एक बाण निषंग से निकाल धनुष तान ऐसे मारे कि वह सब सेना असुरों की तितर बितर हो वहाँ की वहीं बिलाय गई और प्रभु निर्द्वन्द आनन्द से द्वारका पहुँचे।

श्रीशुकदेव जी बोले—महाराज! श्रीकृष्ण जी ने मित्रबिन्दा को तो यों ले जाय द्वारका में ब्याहा। अब आगे जैसे सत्या को प्रभु ले आये सो कथा कहता हूँ, तुम मन लगाय सुनो। कौशल देश में नग्नजित नाम नरेश तिसकी कन्या सत्या जब वह ब्याहन योग्य हुई तब राजा ने सात बैल अति ऊँचे भयावने बिन नथे मँगवाय यह प्रतिज्ञा कर देश में छुड़वाय दिये कि जो इन सातों वृषभों को एक बार नाथ लावेगा, उसे मैं अपनी कन्या ब्याहूँगा। महाराज! वे सातों बैल शिर झुकाये पूँछ उठाये भू खूँद खूँद डकारते फिरैं और जिसे पावैं तिसे हनें।

आगे ये समाचार पाय श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन को साथ ले वहां गये और राजा नग्नजित के सन्मुख खड़े हुये। इनको देखते ही राजा सिंहासन से उतर साष्टाङ्ग प्रणाम कर इन्हें सिंहासन पर बिठाय, चन्दन अक्षत पुष्प चढ़ाय, धूप दीप कर नैवेद्य आगे धर, हाथ जोड़ शिर नाय अति बिनती कर बोला कि, आज मेरे भाग जागे जो शिव बिरञ्चि कर्त्ता प्रभु मेरे घर आये।

यों सुनाय फिर बोला कि, महाराज ! मैंने एक प्रतिज्ञा की है सो पूरी पूरी होनी कठिन थी, पर अब मुझे निश्चय हुआ कि अब आपकी कृपा से तुरन्त पूरी होगी प्रभु बोले कि ऐसी क्या प्रतिज्ञा तू ने की है कि जिसका होना कठिन है तब राजा ने कहा— कृपानाथ ! मैंने सात बैल अनाथे छुड़वाय यह प्रतिज्ञा की है कि जो इन सातों बैलों को एक बेर नाथेगा, तिसे मैं अपनी कन्या ब्याहूँगा। श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज !

चौ० सुनि हरि फेंट बाँध तहँ गये। सात रूप धरि ठाढ़े भये॥
काहुन लख्यो अलख व्यवहार। सातों नाथे एकै बार॥

वे वृषभ नाथने के समय ऐसे खड़े रहे कि जैसे काठ के बैल खड़े होयँ। प्रभु सातों को नाथ एक रस्सी में गांथ राज सभा में ले आये। यह चरित्र देख सब नगर निवासी तो क्या स्त्री क्या पुरुष अचरज कर धन्य धन्य करने लगे, और राजा नग्नजित ने उसी समय पुरोहित को बुलाय वेद की बिधि से कन्यादान किया। तिसके यौतुक में दश सहस्र गाय, नव लाख हाथी, दश सहस्र घोड़े तिहत्तर लाख रथ दे, दास दासी अनगिनती दिये, श्रीकृष्णचन्द्र सब ले वहाँ से जब चले तब खिजलाय सब राजाओं ने प्रभु को मार्ग में आन घेरा, तहाँ मारे बाणों के अर्जुन ने सब को मार भगाया। हरि आनन्द मंगल से सब समेत द्वारकापुरी में जा पहुँचे। उस काल सब द्वारकाबासी आगे आय प्रभु को बाने गाजे से पाटम्बर के पाँवड़े डालते राजमन्दिर में ले गये, और यौतुक देख सब अचम्भे में रहे।

चौ० नग्नजीत की करत बड़ाई। कहत लोक यह बड़ी सगाई॥
भलो ब्याह कोशलपति कियो। कृष्णहिं इतो दायजो दियो॥

महाराज ! नगरनिवासी तो इस ढब की बातें कर रहे थे कि उसी समय श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी ने वहाँ आके

राजा नग्नजित का दिया हुआ सब दायज अर्जुन का दिया और जगत् में यश लिया। आगे अब जैसे श्रीकृष्णचन्द्र भद्रा को व्याह लाये सो कथा कहता हूँ, तुम चित्त लगाय निश्चिन्त हो सुनो। केकय देश के राजा की बेटी भद्रा ने स्वयम्बर किया और देश देश के नरेशों को पत्र लिखे। वे आय इकट्ठे हुए, वहाँ श्रीकृष्णचन्द्र भी अर्जुन को साथ ले गये और स्वयम्बर के बीच सभा में जा खड़े रहे। जब राजकन्या माला हाथ में लिये सब राजाओं को देखती भालती रूप सागर जगत् उजागर श्रीकृष्णचन्द्र के निकट आई तो देखती ही भूल रही और उसने माला इनके गले में डाली। यह देख उसके माता पिता ने प्रसन्न हो वह कन्या हरि को वेद की विधि से व्याह दी, उसके दायजे में बहुत कुछ दिया, कि जिसका वारापार नहीं। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र भद्रा को तो यों व्याह लाये। फिर जैसे प्रभु ने लक्ष्मणा को व्याहा सो कथा कहता हूँ तुम सुनो। भद्रदेश का नरेश अति बली और बड़ा प्रतापी तिसकी कन्या लक्ष्मणा, जब व्याहने योग्य हुई तब उसने स्वयम्बर कर चारों दिशा के नरेशों को पत्र लिख लिख बुलाया। वे अति धूम धाम से अपनी अपनी सेना साज साज वहाँ आये, और स्वयम्बर के बीच बड़े बनाव से पाँति की पाँति जा बैठे।

श्रीकृष्णचन्द्र जी भी अर्जुन को साथ लिये तहाँ गये, और जो स्वयम्बर के बीच जा खड़े भये तो लक्ष्मणा ने सब को देख आ श्रीकृष्ण जी के गले में माला डाली। आगे उसके पिता ने वेद की विधि से प्रभु के साथ लक्ष्मणा का व्याह कर दिया। सब देश देश के राजा भी वहाँ आये थे सो महा लज्जित हो आपस में

कहने लगे कि देखैं हमारे रहते किस भाँति श्रीकृष्ण लक्ष्मणा को ले जाता है।

ऐसे कह वे सब अपना अपना दल साज मार्ग रोक जा खड़े हुए। ज्यों श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन लक्ष्मणा समेत रथ ले आगे बढ़े त्यों उन्होंने इन्हें आय रोका, और युद्ध करने लगे। निदान कितनी एक बेर में मारे बाणों के अर्जुन और श्रीकृष्ण जी ने सबको मार भगाया, और अति आनन्द मंगल से नगर द्वारका पहुँचे। इनके जाते ही सारे नगर में घर घर।

चौ० भई बधाई मङ्गलचार। कीन्हो वेद रीति व्यवहार।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! इस भाँति श्रीकृष्णचन्द्र जी पाँच व्याह कर लाये। तब द्वारका में आठों पटरानियों समेत सुख से रहने लगे और पटरानियाँ आठों पहर सेवा करने लगीं। पटरानियों के नाम—रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रबिन्दा, सत्या, भद्र, लक्ष्मणा)।

६०—भौमासुर-बध

शुकदेव जी बोले कि, राजा! एक समय पृथ्वी मनुष्य तन धारण कर अति कठिन तप करने लगी। तहाँ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इन्द्र, इन तीनों देवताओं ने आ उससे पूँछा कि तू किस लिये इतनी कठिन तपस्या करती है। धरती बोली—कृपासिन्धु! मुझे पुत्र की बाञ्छा है इस कारण महा तप करती हूँ। दया कर मुझे एक पुत्र अति बलवन्त महा प्रतापी बड़ा तेजस्वी दो, ऐसा कि जिसका सामना संसार में कोई न करे, न वह किसी के हाथ से मरे।

यह बचन सुन प्रसन्न हो तीनों देवताओं ने बर दे उससे कहा कि तेरा सुर भौमासुर नाम अति बली महा प्रतापी होगा। उससे लड़ कोई न जीतेगा, वह सृष्टि के सब राजाओं को जीत अपने बश करेगा। स्वर्गलोक में जाय देवताओं को मार भगाय अदिति के कुण्डल छीन आप पहिनेगा, और इन्द्र का छत्र छिनाय लाय अपने शिर धरेगा, संसार के राजाओं की कन्या सोलह सहस्र एक सौ लाय अनव्याही घेर रक्खेगा। तब श्रीकृष्णचन्द्र सब अपना कटक ले उस पर चढ़ जायँगे, और उनसे तू कहेगी इसे मारो, पुनि वे मार सब राज-कन्याओं को ले द्वारकापुरी पधारेंगे।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! तीनों देवताओं ने बर दे जब यों कहा तब भूमि इतना कह चुप हो रही कि मैं ऐसी बात क्यों कहूँगी कि मेरे बेटे को मारो। आगे कितने एक दिन पीछे भूमि का पुत्र भौमासुर हुआ, तिसी का नाम नरकासुर भी कहते हैं वह प्रागज्योतिषपुर में रहने लगा। उस पुर के चारों ओर पहाड़ों की ओट और जल अग्नि पवन का कोट बनाय सारे संसार के राजाओं की कन्याएँ बल कर छीन छीन धाय समेत लाय लाय उसने वहाँ रक्खी। नित उठ सोलह सहस्र एक सौ राजकन्याओं के खाने पीने पहिरने की चौकसी वह किया करे, और बड़े यत्न से उनकी पालना करवावै।

एक दिन भौमासुर अति कोप कर पुष्पक-बिमान में बैठ जो लंका से लाया था सुरपुर में गया और लगा देवताओं को सताने। उसके दुःख से देवता स्थान छोड़ अपना जी ले ले जिधर तिधर भाग गये। तब वह अदिति के कुण्डल और इन्द्र का छत्र छीन लाया, आगे सब सृष्टि के सुर जन मुनियों को अति दुःख देने

लगा। उसका सब आचरण सुन श्रीकृष्णचन्द्र जगतबन्धु जी ने अपने जी में कहा:—

चौ० बाहि मारि सुन्दरि सब लयाऊँ। सुरपति छत्र तहीं पहुँचाऊँ॥
जाय अदिति के कुण्डल देहौं। निर्भय राज इन्द्र को करिहौं॥

इतना कह पुनि श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सत्यभामा से कहा कि हे नारी! तू मेरे साथ चले तो भौमासुर मारा जाय; क्योंकि तू भूमि का अंश है इस लेखे उसकी मा हुई। जब देवताओं ने भूमि को पुत्र का बर दिया था तब यह कह दिया था कि जब तू मारने को कहेगी तब तेरा पुत्र मरेगा, नहीं तो किसी भाँति मारा न मरेगा। इस बात के सुनते ही सत्यभामा जी कुछ मन हीं मन शोच समझ इतना कह अनमनी हो रहीं कि, महाराज! मेरा पुत्र आप का सुत हुआ तुम उसे क्योंकर मारोगे। प्रभु ने इस बात को टाल कहा कि उसके मारने की तो कुछ चिन्ता नहीं, पर एक समय मैंने तुम्हें बचन दिया था तिसे पूरा किया चाहता हूँ। सत्यभामा बोली—सो क्या? प्रभु कहने लगे कि एक समय नारद जी ने आय मुझे कल्पवृक्ष का फूल दिया वह ले मैंने रुक्मिणी को भेजा वह बात सुन तू रिसाय रही, तब मैंने यह प्रतिज्ञा करी कि तू उदास मत हो, मैं तुझे कल्पवृक्ष ही ला दूँगा। सो अपना बचन प्रति पालने को और तुझे सुरपुर दिखाने को साथ ले चलता हूँ। इतनी बात के सुनते ही सत्यभामा जी प्रसन्न हो हरि के साथ चलने को उपस्थित हुईं, तब प्रभु उसे गरुड़ पर अपने पीछे बैठाय साथ ले चले। कितने एक दूर जाय श्रीकृष्ण जी ने सत्यभामा से पूँछा कि सत्य कह सुन्दरी इस बात को सुन तू पहिले क्या समझ अप्रसन्न हुई थी? उसका भेद मुझे समझा के कह जो मेरे

मन का सन्देह जाय। सत्यभामा बोली कि महाराज! तुम भौमासुर को मार सोलह सहस्र एक सौ राजकन्या लाओगे तिनमें मुझे भी गिनोगे, यह समझ अनमनी हुई थी। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि तू किसी बात की चिन्ता मत करै, मैं कल्पवृक्ष लाय तेरे घर में रक्खूँगा; और तू उस के साथ मुझे नारद मुनि को दान कीजो फिर मोल ले मुझे अपने पास रखना, मैं तेरे सदा आधीन रहूँगा। ऐसे ही इन्द्राणी ने इन्द्र को वृक्ष के साथ दान किया था और अदिति ने कश्यप को, इस दान के करने से कोई नारी तेरी समान मेरे न होगी। महाराज! इसी भाँति की बातें कहते कहते श्रीकृष्ण जी प्रागज्योतिषपुर के निकट जाय पहुँचे। वहाँ पहाड़ का कोट अग्नि जल पवन की ओट देखते ही प्रभु ने गरुड़ और सुदर्शन चक्र को आज्ञा की। उन्होंने पल भर में ढाय बुझाय बहाय अच्छा पन्थ बनाय दिया। जो हरि आगे बढ़ नगर में जाने लगे तो गढ़ के रखवाले दैत्य लड़ने को चढ़ आये। प्रभु ने तिन्हैं गदा से सहज ही मार गिराया। उनके मरने का समाचार पाय मुर नाम राक्षस पाँच शीश वाला जो उस पुर और गढ़ का रखवाला था सो अति क्रोध कर त्रिशूल हाथ में ले श्रीकृष्ण जी पर चढ़ आया, और लगा आँखें लाल लाल कर दाँत पीस पीस कहने कि :—

चौ० मोते बली कौन जग और। वाहि देखिहौं मैं या ठौर॥

महाराज! इतना कह मुर दैत्य श्रीकृष्णचन्द्र पर यों डपटा कि ज्यो गरुड़ सर्प पर झपटे। आगे उसने त्रिशूल चलाया सो प्रभु ने चक्र से काट गिराया। फिर खिजलाय मुर ने जितने शस्त्र हरि पर घाले तितने प्रभु ने सहज ही काट डाले। फिर वह हकबकाय दौड़ कर प्रभु से आय लिपटा और मल्लयुद्ध करने लगा। निदान कितनी एक बेर में युद्ध करते करते श्रीकृष्ण

जी ने सत्यभामा जी को महा भयमान जान सुदर्शन चक्र से उसके पाँचों शिर काट डाले। धड़ से शिर गिरते ही धमक्का सुन भौमासुर बोला कि यह अति शब्द काहे का हुआ। इस बीच किसी ने जा सुनाया कि, महाराज! श्रीकृष्ण ने आय मुर दैत्य को मार डाला।

इतनी बात के सुनते ही प्रथम तो भौमासुर ने अति खेद किया, पीछे अपने सेनापति को युद्ध करने का आयसु दिया। वह सब कटक साज लड़ने को गढ़ के द्वार पर जा उपस्थित हुआ और उसके पीछे अपने पिता का मरना सुन मुर के सात बेटे जो अति बलवान् और बड़े योधा थे सो भी अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र धारण कर श्रीकृष्णचन्द्र जी के सन्मुख लड़ने को जा खड़े हुए। पीछे से भौमासुर ने अपने सेनापति और मुर के बेटों से कहला भेजा कि तुम सावधानी से युद्ध करो मैं भी आवता हूँ। लड़ने की आज्ञा पाते ही सब असुर दल साथ ले मुर के बेटों समेत भौमासुर का सेनापति श्रीकृष्ण जी से युद्ध करने को चढ़ आया, और एकाएकी प्रभु के चारों ओर सब कटक दल बादल सा जा छाया। सब ओर से अनेक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र भौमासुर के शूर कृष्णचन्द्र पर चलाते थे और वे सहज सुभाव ही काट काट ढेर करते जाते थे निदान हरि ने सत्यभामा जी को महा भयातुर देख असुर दल को मार के सातों बेटों समेत सुदर्शनचक्र से बात की बात में यों काट गिराया कि, जैसे किसान ज्वार की खेती को काट गिरावे।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! मुर के पुत्रों समेत सब सेना कटी सुन प्रथम तो भौमासुर अति चिन्ता कर महा घबराया। पीछे कुछ शोच समझ धीर्य कर कितने एक महाबली राक्षसों को अपने

साथ लिये लाल लाल आँखें क्रोध से किये, कस कर फेंट बाँधे, शर साधे, बक्का भक्का श्रीकृष्ण जी से लड़ने को आय उपस्थित हुआ। ज्यों भौमासुर ने प्रभु को देखा त्यों उसने एक बार अति रिसाय मूठ की मूठ बाण चलाये, सो हरि ने तीन तीन टुकड़े काट गिराये। उसकाल,

चौ० काढ़ खड्ग भासुर लियेा। कोपि हँकार कृष्ण उर दियेा।
करै शब्द अति मेघ समान। अरे गँवार न पावहि जान॥
करकस बचन यहाँ उच्चरै। महा युद्ध भौमासुर करै॥

महाराज! यह तो अति बल कर इन पर गदा चलाता था, और श्रीकृष्ण के शरीर में उसकी चोट यों लगती थी कि ज्यों हाथी के अंग में फूल छड़ी। आगे वह अनेक अनेक अस्त्र शस्त्र ले प्रभु से लड़ा और प्रभु ने सब काट डाले। तब वह फिर घर जाय एक त्रिशूल ले आया और युद्ध करने को उपस्थित हुआ।

चौ० तब सतभामा टेर सुनाई। अब किन याहि हतो यदुराई॥
बचन सुनत प्रभु चक्र सँभारयो। काट शीश भौमासुर मारयो॥
कुंडल मुकुट सहित शिर परयो। धर के गिरत शेष थर हरयो॥
तिहूँ लोक में आनँद भयेा। शोच दुःख सब ही को गयेा॥
तासु ज्योति हरि देह समानी। जय जय शब्द करैं सुर ज्ञानी॥
खड़े विमान पुहुप बरषावैं। बेद बखानि देव यश गावैं॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज! भौमासुर के मरते ही भूमि और भौमासुर की स्त्री पुत्र समेत आय प्रभु के सन्मुख हाथ जोड़ शिर नवाय अति बिनती कर कहने लगी—हे ज्योतिस्वरूप! ब्रह्मरूप! भक्त हितकारी बिहारी! तुम साधु सन्त के हेतु धरते हौ वेष, अनन्त तुम्हारी महिमा लीला माया है अपरम्पार, तिसे कौन जाने? और किसे इतनी

सामर्थ्य है जो बिन कृपा तुम्हारी उसे बखाने। तुम सब देवों के हौ देव, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव।

महाराज! ऐसे कह छत्र कुंडल पृथ्वी पर प्रभु के आगे धर फिर बोली, दीनानाथ! दीनबंधु! कृपासिन्धु! यह भगदत्त भौमासुर का बेटा आपकी शरण आया है, अब करुणाकर अपना कोमल कमल सा कर इसके शीश पर दीजै, और अपने भय से इसे निर्भय कीजै। इतनी बात के सुनते ही करुणानिधान श्रीकान्ह ने करुणा कर भगदत्त के शीश पर हाथ धरा और अपने भय से उसे निडर किया। तब भौमावती भौमासुर की स्त्री बहुत सी भेंट हरि के आगे धर अति बिनती कर हाथ जोड़ शीश झुकाय खड़ी हो बोली :—

हे दीनदयाल! कृपालु! जैसे आपने दर्शन दे हम सब को कृतार्थ किया, तैसे अब चलकर मेरा घर पवित्र कीजै। इस बात के सुनते ही अन्तर्यामी भक्त हितकारी श्रीमुरारी भौमासुर के घर पधारे। उस काल वे दोनों माँ बेटे हरि को पाटम्बर के पाँवड़े डाल घर में ले जाय सिंहासन पर बिठाय अर्घ्य दे चरणामृत ले अति दीनता कर बोले—हे त्रिलोकीनाथ! आपने भला किया जो इस महा असुर को बध किया। हरि से बिरोध कर किसने संसार में सुख पाया, रावण कुम्भकर्ण कंसादि ने बैर कर अपना जी गँवाया और जिसने जिसने आप से द्रोह किया तिस तिस का जगत् में नाम लेवा पानी देवा कोई न रहा। इतना कह फिर भौमावती बोली—हे नाथ! अब आप मेरी बिनती मान भगदत्त को निज सेवक जान जो सोलह सहस्र एक सौ राजकन्या इसके बाप ने अनब्याही रोक रक्खी हैं सो अङ्गीकार कीजै, महाराज! यों कह उसने सब राजकन्याओं को निकाल प्रभु के सोंहीं पाँति की पाँति ला खड़ा किया। वे जगत् उजागर रूपासागर श्रीकृष्णचन्द्र

आनन्द कन्द को देखते ही मोहित हो अति गिड़गिड़ाय हाहा खाय हाथ जोड़ बोलीं—नाथ ! जैसे आपने आय हम अबलाओं को इस महादुष्ट के बन्धन से निकाला तैसे अब कृपा कर इन दासियों को साथ ले चलिये, और निज सेवा में रखिये तो भला।

यह बात सुन श्रीकृष्णचन्द्र ने उन्हें इतना कहा कि हम तुम को साथ ले चलने को रथ पालकियाँ मँगावें हैं। यह कह भगदत्त की ओर देखा, भगदत्त प्रभु के मन का कारण समझ अपनी राजधानी में जाय हाथी घोड़े सजवाय घुड़बहल और रथ झम-झमाते जगमगाते जुतवाय, सुखपाल, पालकी, नालकी, डोली, चंडोल, झलाबोर के कसवाय लिवाय लाया। हरि देखते ही सब राजकन्याओं को उन पर चढ़ने की आज्ञा दे भगदत्त को साथ ले राजमन्दिर में जाय उसे राजगद्दी पर बिठाय राजतिलक उसे निज हाथ से दे आप बिदा ली। जिस काल सब राजकन्याओं को साथ लिये वहाँ से द्वारका को चले, तिस समय की शोभा कुछ बरणी नहीं जाती कि हाथी बैलों की झलाबोर गंगा यमुनी झूलों की चमक, और घोड़ों के पाखरों की दमक और सुखपाल पालकी नालकी डोली चंडोल रथ घुड़बहलों के घटाटोपों की ओप और उनके मोतियों की झालरों की ज्योति सूर्य की ज्योति से मिल एक हो जगमगाय रही थी।

आगे श्रीकृष्णचन्द्र सब राजकन्याओं को लिये कितने एक दिनों में चले चले द्वारकापुरी पहुँचे वहाँ जाय राजकन्याओं को राजमंदिर में रख, राजा उग्रसेन के पास जाय प्रणाम कर, पहिले श्रीकृष्ण जी ने भौमासुर को मारने और राजकन्याओं के छुड़ाय लाने का सब भेद कह सुनाया; फिर राजा उग्रसेन से बिदा होय प्रभु सत्यभामा को साथ ले छत्रकुण्डल लिये गरुड़ पर बैठ स्वर्ग को गये तहाँ पहुँचते ही,

चौपाई

कुण्डल दिये अदिति को ईश। छत्र धर्‌यो सुरपति के शीश।

यह समाचार पाय वहाँ नारद आये, तिनसे हरि ने कह सुनाया कि तुम जाय इन्द्र से कहो कि सत्यभामा तुम से कल्पवृक्ष माँगती हैं, देखो वह क्या कहता है, इस बात का उत्तर मुझे ला दो, पीछे समझा जायगा। महाराज! इतनी बात श्रीकृष्ण जी के मुख से सुन नारद जी ने सुरपति से जाय कहा कि सत्यभामा तुम्हारी भौजाई तुम से कल्पतरु माँगती हैं। तुम क्या कहते हो? सो कहो; मैं उन्हे जाय सुनाऊँ। इस बात को सुनते ही इन्द्र पहिले तो हकबकाय कुछ शोच रहा, पीछे उसने नारद मुनि का कहा सब इन्द्राणी से जाय कहा :—

चौपाई

इन्द्राणी सुनि कहै रिसाय। सुरपति तेरी कुमति न जाय॥
तू है बड़ो मूढ़ पति अन्धु। को है कृष्ण कौन को बन्धु॥

तुझे वह सुधि है कि नहीं जो उसने व्रज से तेरी पूजा मेंट ब्रजबासियों से गिरि गोवर्द्धन पुजवाया। छल कर तेरी पूजा का सब पकवान आप खाया, फिर सात दिन तुझे गिरि पर वर्षवाय उसने तेरा गर्व गँवाय सब जगत में निरादर किया। इस बात की कुछ तेरे तईं लाज है या नहीं? वह अपनी नारी की बात मानता है तू मेरा कहा क्यों नहीं मानता सुनता।

महाराज! जब इन्द्राणी ने इन्द्र से यों कह सुनाया तब वह अपना सा मुँह ले उलट नारद जी के पास आया और बोला— हे ऋषिराय! तुम मेरी ओर से जाय श्रीकृष्णचन्द्र से कहो कि कल्पवृक्ष नन्दन बन तज अन्त न जायगा, और जायगा तो वहाँ किसी भाँति न रहेगा। इतना कह फिर समझा के कहियो

जो आगे की भाँति अब यहाँ हम से बिगाड़ न करैं जैसे ब्रज में ब्रजवासियों को बहकाय गिरि का मिस कर सब हमारी पूजा की सामा खाय गये नहीं तो महायुद्ध होगा।

यह बात सुन नारद जी श्रीकृष्णचद्र से इन्द्र की कही बात कह सुनाय के फिर कहा—महाराज! कल्पतरु इन्द्र तो देता था, पर इन्द्राणी ने न देने दिया। इस बात के सुनते ही श्रीमुरारी गर्वप्रहारी नन्दन बन में आय रखवालों को मार भगाया, कल्पवृक्ष को उखाड़ गरुड़ पर धर ले आये। उसकाल वे रखवाले जो प्रभु के हाथ की मार खाय भागे थे, इन्द्र के पास जा पुकारे। कल्पतरु के ले जाने के समाचार पाय, महाराज इन्द्र! अति कोप कर बज्र हाथ में ले देवताओं को बुलाय ऐरावत हाथी पर चढ़ श्रीकृष्णचन्द्र जो से युद्ध करने को उपस्थित हुआ। फिर नारद मुनि जी ने जाय इन्द्र से कहा—राजा! तू बड़ा मूर्ख है जो स्त्री के कहे भगवान् से लड़ने को उपस्थित हुआ है, ऐसी बात कहते तुझे लाज नहीं आती? जो तुझे लड़ना ही था तो जब भौमासुर तेरा छत्र और अदिति के कुण्डल छिनाय ले गया तब क्यों न लड़ा? अब प्रभु ने भौमासुर को मार कुण्डल और छत्र ला दिये, तू उन्हीं से लड़ने लगा? जो तू ऐसा ही बलवान् था तो भौमासुर से क्यों न लड़ा? तू वह दिन भूल गया जो ब्रज में जाय प्रभु को दीनता कर अपना अपराध क्षमा कराय आया। फिर उन्हीं से लड़ने चला है? महाराज! नारद जी के मुख से इतनी बात सुनते ही राजा इन्द्र जो युद्ध करने को उपस्थित हुआ तो अछताय पछताय लज्जित हो मन मार रह गया।

आगे श्रीकृष्णचन्द्र द्वारका पधारे, तब हर्षित भये देख हरि को यादव सारे। प्रभु सत्यभामा के मंदिर में कल्पवृक्ष ले जाय

के रक्खा और राजा उग्रसेन ने सोलह सहस्र एक सौ राजकन्या जो अनब्याही थीं सो सब वेद रीति से श्रीकृष्णचन्द्र को ब्याहीं।

चौ० भयेा वेद विधि मंगलचार। ऐसे हरि बिहरत संसार॥
सोलह सहस एक सौ गेहा। रहत कृष्ण कर परम सनेहा॥
पटरानी आठों जे गनी। प्रीति निरन्तर तिन सौं घनी॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि, हे राजा! हरि ने ऐसे भौमासुर को बध किया और अदित का कुण्डल और इन्द्र का छत्र ला दिया। फिर सोलह सहस्र एक सौ आठ विवाह कर श्रीकृष्णचन्द्र द्वारकापुरी में आनन्द से सब को ले लीला करने लगे।

६१—श्रीरुक्मिणी मानलीला वर्णन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! एक समय मणिमय कञ्चन के मंदिर में कुन्दन का जड़ाऊँ छपरखट बिछा था, तिस पर फेन से बिछौने फूलों से सँवारे कपोल गडुआ और शीशे समेत सुगंध से महक रहे थे। कर्पूर, गुलाब, नीर, चोआ, चंदन, अरगजा, सेज के चारों ओर भीतों पर खिंचे हुऐ थे। आलों में जहां तहां फूल फल पकवान पाक धरे थे। और सब सुख का सामान जेा चाहिये सेा उपस्थित था।

झलबेारा का घाँघरा घूम घुमारा, तिस पर सच्चे मेाती टँके हुये चमचमाती अँगिया, झलझलाती सारी, जगमगाती ओढ़नी पहने ओढ़े नखशिख से शृंगार किये, रोली की आड़ दिये, बड़े बड़े मोतियों की नथ, शीशफूल, करणफूल, माँग टीका, टेढ़ी, बिंदी, चंद्रहार, मोहनमाला, धुकधुकी, पञ्चलड़ी, सतलड़ी, मुक्तामाल,

दुहरे, तिहरे, नवरत्न और भुजबंद, कङ्कण, पहुँची, नौगरी, चूरी, छाप, छल्ले, किंकिणी, अनवट, बिछुए, जेहर, तेहर आदि सब आभूषण रत्न जटित पहने चंद्रबदनी, चम्पकबरणी, मृगनयनी, पिकबयनी, गजगामिनी, कटिकेहरी, श्रीरुक्मिणी जी और मेघवर्ण चंद्रमुख, कमलनयन, मोर के पाँखों का मुकुट दिये, बनमाला हिये, पीतम्बर पहिरे, पीतपट ओढ़े, रूपसागर, त्रिभुवन उजागर, श्रीकृष्णचन्द्र आनंद कंद वहाँ बिराजते थे और आपस में परस्पर सुख लेते देते थे, कि एकाएकी लेटे लेटे श्रीकृष्ण जी ने रुक्मिणी जी से कहा कि सुन्दरि ! एक बात तुझ से पूंछता हूँ तू उसका उत्तर मुझे दे कि तू तो महासुन्दरी सब गुण संयुक्ता और राजा भीष्मक की पुत्री जेा महाबली बड़ा प्रतापी शिशुपाल चँदेली का राजा ऐसा कि जिसके सात पीढ़ी से राज चला आता है और हम उनके त्रास से भागते फिरते हैं और मथुरापुरी तज समुद्र में आय बसे हैं, उन्हीं के भय से ऐसे राजा केा तुम्हें तुम्हारे माता पिता भाई देते थे और वह बरात ले ब्याहने को भी आ चुका था, तिसे न बर तुमने कुल की मर्याद छोड़ संसार की लाज और माता पिता बन्धु की शङ्का तज हमें ब्राह्मण के हाथ बुला भेजा।

चौ० तुम्हरे योग्य न हम परवीन। भूपति नाहिं रूप गुण हीन॥
काहू याचक कीरति करी। सेा तुम सुनिकै मन से धरी॥
कटक साज नृप ब्याहन आये। तब तुम हमको बोलि पठाये॥
आय उपाधि बनी तहँ भारी। क्योंहूँ कै पति रही हमारी॥
तिनके देखत तुमको लाये। दल हलधर उनके बिचलाये॥
तुम लिख भेजी ही यह बानी। परिपालहु शिशुपाल से आनी॥
सो परतिज्ञा रही हमारी। कछू न इच्छा हती हमारी॥
अजहूँ कछू न गयेा तिहारेा। सुन्दरि मानहु बचन हमारेा॥

कि जेा केाई भूपति कुलीन गुणी बली तुम्हारे येाग्य होय तुम तिसके पास जाय रहो। महाराज! इतनी बात के सुनते ही श्रीरुक्मिणी जी भयचक हो भहराय पछाड़ खाय भूमि पर गिरीं और जल बिन मीन की भाँति तड़फड़ाय अचेत हो लगीं ऊर्द्ध-श्वास लेने, तिस काल,

दो० इहि छवि मुख अलकावली, रहीं लपट इक संग।
मानहुँ शशि भूतल परयो, पीवत अमी भुअंग॥

यह चरित्र देख इतना कह श्रीकृष्णचन्द्र घबरा कर उठे कि यह तो अभी प्राण तजती है, तब चतुर्भुज हो उसके निकट जाय दो हाथों से पकड़ उठाय गोद में बैठाय एक हाथ से पंखा करने लगे और एक हाथ से अलक सवाँरने। महाराज! उस काल नंदलाल प्रेमवश हो अनेक चेष्टा करने लगे। कभी पीताम्बर से प्यारी का चंद्रमुख पोंछते थे, कभी केामल कमल सा अपना हाथ उसके हृदय पर रखते थे, निदान कितनी एक बेर में श्रीरुक्मिणी जी के जी में जी आया, तब हरि बेाले—

चौपाई

तूहै सुन्दरि प्रेम गंभीर। तैं तन कछू न राखों धीर॥
तैं मन जान्यो साँचे छाड़ो। हमने हँसी प्रेम की माँड़ी॥
अब तू सुन्दरि देह संभार। प्राण ठौर के नयन उघार॥
जौलों तू बोलत नहिं प्यारी। तौलों हम दुख पावत भारी॥
येती वचन सुनत पिय नारी। चितई बारिज नयन उघारी॥
देखे कृष्ण गोद में लिये। भई लाज अति सकुची हिये॥
हरबराय उठि ठाढ़ी भई। हाथ जेारि पाँयन परि रही॥
बेाले कृष्ण पीठ करि देत। भली भली जू प्रेम अचेत॥

हमने हँसी ठानी, सेा तुमने सत्य ही जानी, हँसी की बात में क्रोध करना उचित नहीं, उठो अब क्रोध दूर करो और मन का शोच हरो। महाराज! इतनी बात के सुनते ही श्रीरुक्मिणी जी उठ हाथ जोड़ शिर नाय कहने लगीं कि, महाराज! आपने जो कहा कि हम तुम्हारे योग्य नहीं सेा सत्य कहा—क्योंकि तुम लक्ष्मीपति शिव विरञ्चि के ईश, तुम्हारी समता का त्रिलोकी में कौन है? हे जगदीश! तुम्हें जो तज और को ध्यावै, सेा ऐसे हैं, जैसे कोई हरियश छोड़ गीधगुण गावै। महाराज! आपने जो कहा कि तुम किसी महाबली राजा को देखो सेा तुम से अति बली और बड़ा राजा त्रिभुवन में कौन है? सेा कहो। ब्रह्मा रुद्र इन्द्रादि सब देवता बरदायी तो तुम्हारे आज्ञाकारी हैं। तुम्हारी कृपा से वे जिसे चाहते हैं तिसे महाबली प्रतापी तेजस्वी वर दे बनाते हैं और जेा लेाग आपकी सैकड़ों वर्ष अति तपस्या करते हैं सेा राजपद पाते हैं। फिर तुम्हारा भजन ध्यान जप तप भूल नीति छोड़ अनीति करते हैं; तब वे आपसे आप ही अपना सर्वस्व खेाय भ्रष्ट होते हैं! कृपानाथ! तुम्हारी तेा सदा यह रीति है कि अपने भक्तों के हेतु संसार में आय बार बार अवतार लेते हो, और दुष्ट राक्षसों को मार पृथ्वी भार उतार निज जनों को सुख दे कृतार्थ करते हो। और नाथ! जिस पर तुम्हारी बड़ी दया होती है और वह धन राज्य यौवन रूप प्रभुता पाय जब अभिमान से अंधा हेा धर्म, कर्म, तप, सत्य, दया पूजा, भजन भूलता है; तब तुम उसे दरिद्री बनाते हेा। क्योंकि दरिद्री सदा ही तुम्हारा ध्यान स्मरण किया करता है, इसी से तुम्हें दरिद्री भाता है, जिस पर तुम्हारी बड़ी कृपा होगी सेा सदा निर्धन रहेगा। महाराज! इतना कह फिर रुक्मिणी बेालीं कि, हे प्राणनाथ! जैसा काशीपुरी के राजा इन्द्रद्युम्न की बेटी अम्बा ने किया

तैसा मैं न करूँगी, कि वह पति छोड़ राजा भीष्म के पास गई और उसने जब न रक्खा तब फिर अपने पति के पास आई, पुनि पति ने उसे निकाल दिया, तब उसने गङ्गा तीर में बैठ महादेव का बड़ा तप किया वहाँ भोलानाथ ने आय उसे मुँह माँगा वर दिया। उस बर के बल से जाय उसने राजा भीष्म से अपना पलटा लिया, सो मुझसे न होगा।

चौपाई

अरु तुम नाथ कहो समुझाई। काहू याचक करी बड़ाई॥
वाको बचन मान तुम लियेा। हम पै विप्र पठै कै दियेा॥
याचक शिव विरञ्चि शारदा। नारद गुण गावत सर्वदा॥
विप्र पठायेा जान दयाल। आय कियेा दुष्टन को काल॥
दीन जान दासी संग लई। तुम मोहिं नाथ बड़ाई दई॥
ये सुन कृष्ण कह्यो सुन प्यारी। ज्ञान ध्यान गति लई हमारी॥
सेवा भजन प्रेमते जान्येा। तोहीं सों मेरे मन मान्यो॥

महाराज! प्रभु के मुख से इतनी बात सुनते ही संतुष्ट हो रुक्मिणी जी फिर हरि की सेवा करने लगीं।

६२—अनिरुद्ध-विवाह, रुक्म-बध

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्रियों को ले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द से द्वारकापुरी में बिहार करने लगे और आठों पटरानियों आठों पहर की सेवा में रहैं। तिन उठ भोरहीं कोई मुख धुलवावै, कोई उबटन लगाय न्हिलावै, कोई षट्रस भोजन बनाय जिमावै, कोई अच्छे पान लौंग इलायची जायफल जावित्री समेत पिय को बनाय बनाय खिलावै। कोई सुथरे वस्त्र और रत्नजटित आभूषण चुन सुवास बनाय प्रभु को

पहनाती थीं, कोई फूल माल पहिराय गुलाब-नीर छिड़क चन्दन चरचती थीं कोई पंखा डुलाती थीं और कोई पाँव दबाती थीं। महाराज ! इसी भाँति सब रानियाँ अनेक अनेक प्रकार से प्रभु की सदा सेवा करैं और भाँति भाँति हरि उन्हें सुख दें। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! कई वर्ष के बीच,

दो० एक एक यदुनाथ की, तिय ने जाये पुत्र।
इक इक कन्या लक्षमी, दश दश पुत्र सुपुत्र।
एक लक्ष इकसठ सहस्र, असी बाल इक सार।
उपजे हरि के पुत्र ये, गुण बल रूप अपार॥

सब मेघ बरण चन्द्रमुख कमल नयन नीले पीले झँगुले पहिने, गण्डे, कठुले ताँइत, गले में डाले, घर घर बाल-चरित्र कर माता पिता को सुख दें और उनकी मायें अनेक अनेक भाँति से लाड़ प्यार कर प्रतिज्ञापालन करैं। महाराज ! श्रीकृष्णचन्द्र जी के पुत्रों का होना सुन रुक्म ने अपनी स्त्री से कहा कि, अब मैं अपनी कन्या चारुमती जो कृतवर्मा के बेटे को मागी है उसे न दूँगा स्वयम्बर करूँगा। तुम किसी को भेज मेरी बहिन रुक्मिणी को पुत्र समेत बुलाय भेजो।

इतनी बात के सुनते ही रुक्म की नारी ने अति बिनती कर ननद को पत्र लिख पुत्र समेत बुलाया, एक ब्राह्मण के हाथ और स्वयम्बर किया भाई भौजाई की चिट्ठी पाते ही रुक्मिणी जी श्रीकृष्णचन्द्र जी से आज्ञा ले बिदा हो पुत्र सहित चलीं चलीं द्वारका से भोजकट में भाई के घर पहुँचीं;

चौपाई

देख रुक्म ने अति सुख पायो। आदर कर नीचे शिर नायो॥
पाँवत पर बोली भौजाई। हरण भयो तब तें अब आई॥

यह कह फिर उसने रुक्मिणी जी से कहा कि, ननद ! जो तुम आई हो तो हम पर दया मया कीजे और इस चारुमती कन्या को अपने पुत्र के लिये लीजै। इस बात के सुनते ही रुक्मिणी जी बोलीं कि भौजाई ! तुम पति की गति जानती हो, मत किसी से कलह करवायो, भैया की बात कुछ कही नहीं जाती। क्या जानिये किस समय क्या करै, इससे कोई बात कहते करते भय लगता है। रुक्म बोला कि, बहिन अब तुम किसी भाँति न डरो कुछ उपाधि न होगी। वेद की आज्ञा है दक्षिण देश में कन्यादान भाँजे को दीजै। इस कारण मैं अपनी पुत्री चारुमती तुम्हारे पुत्र प्रद्युम्न को दूँगा ; श्रीकृष्णचन्द्र जी से वैरभाव छोड़ नया सम्बन्ध करूँगा। महाराज ! इतना कह जब रुक्म वहाँ से उठ सभा में गया तब प्रद्युम्न जी भी माता से आज्ञा ले बन ठन कर स्वयम्बर के बीच गये तो क्या देखते हैं कि देश देश के नरेश भाँति भाँति के वस्त्र अस्त्र आभूषण पहिने बाँधे बनाव किये विवाह की अभिलाषा हिये में लिये सब खड़े हैं और वह कन्या जयमाल कर में लिये चारों ओर दृष्टि किये बीच में फिरती है, पर किसी पै दृष्टि उसकी नहीं ठहरती। इसमें जो प्रद्युम्न जी स्वयंबर के बीच गये, तो देखते ही उस कन्या ने मोहित हो आ इनके गले में जयमाल डाली, सब राजा अछताय पछताय मुँह देखते अपना सा मुँह लिये खड़े रह गये, और अपने मन ही मन कहने लगे कि, भला ! देखें हमारे आगे इस कन्या को कैसे ले जायगा, हम बाट ही में छीन लेंगे।

महाराज ! सब राजा तो यों कह रहे थे और रुक्म ने वर कन्या को मढ़े के नीचे ले जाय वेद की विधि से संकल्प कर कन्यादान किया, और उसके यौतुक में बहुत ही धन द्रव्य दिया कि जिसका कुछ वारापार नहीं। आगे श्रीरुक्मिणी जी पुत्र को

ब्याह भाई भौजाई से बिदा हो बेटे बहू को ले रथ पर चढ़ ज्यों द्वारकापुरी को चलीं त्यों सब राजाओं ने आय मार्ग रोका इसलिये कि प्रद्युम्न जी से लड़ कन्या को छीन लें। उनकी यह कुमति देख प्रद्युम्न जी भी अपने अस्त्र शस्त्र ले युद्ध करने को उपस्थित हुए। कितनी बेर तक इनसे उनसे युद्ध होता रहा। निदान प्रद्युम्न जी उन सब को मार भगाय आनन्द मंगल से द्वारकापुरी पहुँचे। इनके पहुँचने के समाचार पाय सब कुटुम्ब के लोग क्या स्त्री क्या पुरुष पुरी के बाहर आय आय रीति भाँति कर पाटम्बर के पाँवड़े डालते बाजे गाजे से इन्हें ले गये, सारे नगर में मंगल हुआ। ये राजमंदिर में सुख से रहने लगे।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, महाराज! कई वर्ष पीछे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द के पुत्र प्रद्युम्न जी के पुत्र हुआ। उस काल श्रीकृष्णचन्द्र जी ने ज्योतिषियों को बुलाय, सब कुटुम्ब को बैठाय, मंगलाचार करवाय, शास्त्र की रीति से नाम कर्ण किया। ज्योतिषियों ने पत्र देख वर्ष, मास, पक्ष, दिन, तिथि, घड़ी, लग्न, नक्षत्र ठहराय उस लड़के का नाम अनिरुद्ध रक्खा। उस काल,

सो० फूले अंग न समायँ, दान दक्षिणा द्विजन को।
देत न कृष्ण अघायँ, पूत भयो प्रद्युम्न के॥

महाराज! नाती के होने का समाचार पाय पहिले तो रुक्म ने बहिन बहनोई को अति हित कर यह पत्री में लिख भेजा कि तुम्हारे पोते से हमारी पोती का ब्याह होय तो बड़ा आनन्द है और पीछे एक ब्राह्मण को बुलाय रोली अक्षत रुपया नारियल दे उसे समझाय के कहा कि तुम द्वारकापुरी में जाय हमारी ओर से अति बिनती कर श्रीकृष्ण जी का पौत्र अनिरुद्ध हमारा दोहता है

तिसे टीका दे आवो। बात के सुनते ही ब्राह्मण टीका और लग्न साथ हो ले चला श्रीकृष्णचन्द्र के पास द्वारकापुरी में गया। उसे देख प्रभु ने अति मान सन्मान कर पूँछा कि, कहो देवता! आपका आना कहाँ से हुआ? ब्राह्मण बोला—महाराज! मैं राजा भीष्मक के पुत्र रुक्म का पठाया उनकी पौत्री और आपके पौत्र से सम्बन्ध करने को टीका और लग्न ले आया हूँ। इस बात के सुनते ही श्रीकृष्ण जी ने दश भाइयों को बुलाय टीका और लग्न ले उस ब्राह्मण को बहुत कुछ दे बिदा किया, और आप बलराम जी के निकट जाय चलने का बिचार करने लगे। निदान वे दोनों भाई वहाँ से उठ राजा उग्रसेन के पास जाय सब समाचार सुनाय, उनसे बिदा हो बाहर आय, बरात की सब सामा मँगवाय मँगवाय इकट्ठी करने लगे। कई एक दिन में जब सब सामान उपास्थित हो चुका, तब बड़ी धूमधाम से प्रभु बरात ले द्वारका से भोजकट नगर को चले।

उस काल एक झमझमाते रथ पर तो श्रीरुक्मिणी जी पुत्र पौत्र को लिये बैठी जाती थीं। और एक रथ पर श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम बैठे जाते थे। निदान कितने एक दिनों में सब समेत प्रभु वहाँ पहुँचे। महाराज! बरात के पहुँचते ही रुक्म कलिंगादि सब देश देश के राजाओं को साथ ले नगर के बाहर जा अगौनी कर सबको बागे पहराय अति आदर मान कर जनवासे लिवाय लाया। आगे सबको खिलाय पिलाय मढ़े के नीचे लिवाय ले गया; और उसने वेद के विधि से कन्यादान किया, उसके यौतुक में जो दान दिया उसको मैं कहाँ तक कहूँ? वह अकथ्य है। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले—महाराज! ब्याह हो चुकते ही राजा भीष्मक ने जनवासे में जाय हाथ जोड़ अति बिनती कर श्रीकृष्णचन्द्र जी से चुपचुपाते कहा,—महाराज! विवाह

हो चुका और रस रहा, अब आप शीघ्र चलने का विचार कीजै; क्योंकि,

चौ० भूप सगे जे रुक्म बुलाये। ते सब दुष्ट उपाधी आये॥
मत काहूँ सों उपजै रारि। याही तै हों कहत मुरारि॥

इतनी बात कह ज्यों राजा भीष्मक गये त्योंही श्रीरुक्मिणी जी के निकट रुक्म आया।

दो० कहत रुक्मिणी टेर कर, किम घर पहुँचे जाय।
बैरी भूपति पाहुने, जुरे तिहारे आय॥

चौ० जो तुम भैया चाहौ भलो। हमहिं बेगि पहुँचावन चलो॥

नहीं तो रस में अनरस होत दीखै है। यह बचन सुन रुक्म बोला कि, बहन! तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। मैं पहिले जो राजा देश देश के पाहने आये हैं, तिन्हें बिदा कर आऊँ, पीछे जो तुम कहौगी सो मैं करूँगा। इतना कह रुक्म वहाँ से उठ जो राजा पाहुने आये थे उनके पास गया, वे सब मिल के कहने लगे कि, रुक्म! तुमने कृष्ण बलदेव को इतना धन द्रव्य दिया और उन्होंने मारे अभिमान के कुछ भला न माना एक तो हमें इस बात का पछतावा है और दूसरे उस बात की करके हमारे मन से नहीं जाती कि, जो बलराम ने तुम्हें अभिराम किया था। महाराज! इस बात के सुनते ही रुक्म को क्रोध हुआ, तब राजा कलिङ्ग बोला, कि एक बात मेरे जी में आई है, कहो तो कहूँ। रुक्म ने कहा कहो। फिर उसने कहा कि हमें श्रीकृष्ण से कुछ काम नहीं, पर बलराम को बुला दो तो हम उससे चौपड़ खेल सब धन जीत लें; और जैसा उसे अभिमान है तैसा यहाँ से रीते हाथ बिदा करें, ज्यों कलिङ्ग ने यह बात कही, त्योंही रुक्म वहाँ से उठ कुछ शोच बिचार करता बलराम जी के निकट जा बोला कि,

महाराज ! आपको सब राजाओं ने प्रणाम कर बुलाया है चौपड़ खेलने को।

चौ० सुनि बलभद्र तबहिं तहँ आये। भूपति उठि के शीश नवाये॥

आगे सब राजा बलराम जी का शिष्टाचार कर बोले, कि आपको चौपड़ खेलने का बड़ा अभ्यास है, इसलिये हम आपके साथ खेला चाहते हैं। इतना कह उन्होंने चौपड़ मँगवाय बिछाई और रुक्म और बलराम जी से होने लगी। पहिले रुक्म दश बेर जीता, तो बलदेव जी से कहने लगा कि, धन तो सब बीता, अब काहे से खेलोगे? इससे राजा कलिङ्ग बड़ी बात कह हँसा, यह चरित्र देख बलदेव जी नीचा शिर कर शोच करने लगे, तब रुक्म ने दस कड़ोर रुपये एक बार लगाये सो बलदेव जी ने ज्यों जीत के उठाये, त्यों सब राजा धाँधल कर बोले कि, यह रुक्म का पाँसा पड़ा तुम क्यों रुपये समेटते हो।

चौ० सुन बलराम फेर सब दीने। अर्ब लगाये पाँसे लीने॥

फिर हलधर जीते और रुक्म हारा। उस समय भी रोंगटी कर सब राजाओं ने रुक्म को जिताया, और यों कह सुनाया।

चौ० जुआ खेल पाँसे की सारा। यह तुम जानो कहा गँवारा॥
जुआ युद्ध गति भूपनि जानै। ग्वाल गोप गैयन पहिचानै॥

इस बात के सुनते ही बलदेव जी का क्रोध यों बढ़ा कि, जैसे पूनो का समुद्र की तरंग बढ़े। निदान ज्यों त्यों कर बलराम जी ने क्रोध को रोका, मन को समझाय फिर सात अर्ब रुपये लगाये और चौपड़ खेलने लगे। फिर भी बलदेव जी जीते और सभों ने कपट कर रुक्म ही को जीता कहा। इस अनीति के होते ही आकाश से यह बाणी हुई कि हलधर जीते और रुक्म हारा। अरे राजाओ! तुमने क्यों झूँठ बचन उचारा? महाराज

जब रुक्म समेत सब राजाओं ने आकाशवाणी सुनी अनसुनी की, तब बलदेव जी महा क्रोध में आय बोले—

चौपाई

करी सगाई बैर न छाड़यों। हमसेां फेर कलह तुम माड़यो॥
मारों तोहिं अरे अन्याई। भलो बुरो मानहु भौजाई॥
अब काहू की कान न करिहौं। आज प्राण कपटी के हरिहौं॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! निदान बलराम जी ने सब के देखते देखते रुक्म को मार डाला और कलिङ्ग को पछाड़ मारे घूँसों से उसके दाँत उखाड़ डाले और कहा कि तू भी मुँह पसार के हँसा था। आगे सब राजाओं को मार भगाय, बलराम जी ने जनवासे में श्रीकृष्णचन्द्र जी के पास आय वहाँ का सब ब्योरा कह सुनाया! बात के सुनते ही हरि ने सब समेत वहाँ से प्रस्थान किया और चले चले आनन्द मङ्गल से द्वारका में आन पहुँचे इनके आते ही सारे नगर में सुख छाय गया घर घर मङ्गलाचार होने लगा। श्रीकृष्ण जी और बलदेव जी ने उग्रसेन राजा के सन्मुख जाय हाथ जोड़ कहा—महाराज! आपके पुण्य प्रताप से अनिरुद्ध को ब्याह लाये और महादुष्ट रुक्म को मार आये।

६३—ऊषा-स्वप्न, अनिरुद्ध-ग्रहण

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! अब जो श्रीद्वारकानाथ का बल पाऊँ, तो ऊषा हरण की कथा सब गाऊँ, जैसे उसने रात्रि समय स्वप्न में अनिरुद्ध जी को देखा और आसक्त हो खेद किया, पुनि चित्ररेखा ने ज्यों अनिरुद्ध को लाय ऊषा से मिलाया

तैसे मैं सब प्रसङ्ग कहता हूँ, तुम मन दे सुनो। ब्रह्मा के वंश में पहिले कश्यप हुआ, तिसका पुत्र हिरण्यकश्यप अति बली महा प्रतापी और अमर भया। उसका सुत हरिजन प्रभु भक्त प्रह्लाद नाम हुआ। उसका बेटा राजा विरोचन, विरोचन का पुत्र राजा बलि जिसका यश धर्म धरणी अब तक छाय रहा है कि, प्रभु ने वामन अवतार ले राजा बलि को छल पाताल पठाया, उस बलि का ज्येष्ठ पुत्र महा पराक्रमी बड़ा तेजस्वी बाणासुर हुआ। वह शोणितपुर में बसे नित प्रति कैलास में जाय शिव की पूजा करै ब्रह्मचर्य पालै सत्य बोले जितेन्द्रिय रहै महाराज! एक दिन बाणासुर कैलास में जाय हरि की पूजा कर प्रेम में आय लगा मग्न हो मृदंग बजाय बजाय नाचने गाने। उसका गाना बजाना सुन श्रीमहादेव भोलानाथ मग्न हो लगे पार्वती जी को साथ ले नाचने, और डमरू बजाने। निदान नाचते नाचते शंकर ने अति सुख पाय प्रसन्न हो बाणासुर को निकट बुला के कहा —मैं तुझ पर सन्तुष्ट हुआ। बर माँग जो बर माँगेगा सो मैं दूँगा।

चौ० तैंने बाजे भले बाजाये। सुनत श्रवण मेरे मन भाये॥

इतनी बात के सुनते ही, महाराज! बाणासुर हाथ जोड़ शिर नाय अति दीनता कर बोला कि, कृपानाथ! जो आपने मेरे ऊपर कृपा की तो पहिले अमर कर मुझे सब पृथ्वी का राज्य दीजै। पीछे मुझे ऐसा बली कीजै कि कोई मुझ से न जीतै। महादेव जी बोले कि मैंने तुझे यही बर दिया और सब भय से निर्भर किया। त्रिभुवन में तेरे बल को कोई न पावेगा और विधाता का भी तुझ पर कुछ वश न चलेगा।

दो० बाजे भले बजाय कै, दिये परम सुख मोहिं।
मैं अतिहिय आनन्द कर, दिये सहस भुज तोहिं॥

अब तू घर जाय निश्चिन्ताई से बैठ, अविचल राज्य कर। महाराज! इतना बचन श्रीभोलानाथ के मुख से सुन सहस्र भुज पाय बाणासुर अति प्रसन्न हो परिक्रमा दे शिरनाय बिदा हो आज्ञा ले शोणितपुर में आया। आगे त्रिलोक जीत सब देवताओं को बश कर नगर के चारों ओर जल की चुआन चौड़ी खाईं और अग्नि पवन का कोट बनाय निर्भय हो सुख से राज्य करने लगा, कितने एक दिन पीछे,

दो० लरबे बिन भुईं भुज सबल, फरकहिं अरु सहराँय।
कहत बाण कासों लरैं, कापर अब चढ़ि जायँ॥

चौ० भई खाज लरबे बिन भारी। केा पुजबे हिय हौंस हमारी॥

इतना कह बाणासुर घर से बाहर जाय लगा पहाड़ उठाय उठाय तोड़ तोड़ चूर करने और देश देश फिरने। जब सब पर्वत फोड़ चुका और उसके हाथों का सुर सुराहट खुजलाहट न गई तब,

चौ० कहत बाण अब कासों लरहौं। इतनी भुजा कहा लै करौं॥
सबल भार मैं कैसे सहौं। बहुरि जाय कै हरसों कहौं॥

महाराज! ऐसे मनहीं मन शोच बिचार कर बाणासुर महादेव जी के सन्मुख जाय हाथ जेाड़ शिर नाय बेाला कि, हे त्रिशूलपाणि! त्रिलेाकीनाथ! तुमने जेा कृपा कर सहस्र भुजा दीं सेा मेरे शरीर पर भारी भईं उनका बल अब मुझ से सँभाला नहीं जाता। इसका कुछ उपाय कीजै, कोई महाबली युद्ध करने को मुझे बताय दीजै। मैं त्रिभुवन में ऐसा पराक्रमी किसी को नहीं देखता, जेा मेरे सन्मुख हेा युद्ध करे हाँ दया कर जैसे आपने मुझे महाबली किया तैसे ही अब कृपा कर मुझ से लड़ मेरे मन की अभिलाषा पूरी कीजै तेा कीजै, नहीं तेा और किसी बली को बताय दीजै। जिससे मैं जाकर युद्ध करूँ और

अपने मन का शोक हरूँ। इतनी कथा कह शुकदेव जी बोले कि महाराज! बाणासुर से इस भाँति की बातें सुन श्रीमहादेव जी ने बिलखाय मनहीं मन इतना कहा कि मैंने तो इसे साधु जान के बर दिया अब यह मुझी से लड़ने को उपस्थित हुआ। इस मूरख को बल का गर्व भया यह जीता न बचेगा। जिसने अहंकार किया सो जगत् में आन बहुत न जिया। ऐसे मन ही मन महादेव जी कह बोले कि बाणासुर! तू मत घबराय तुझ से युद्ध करने वाला थोड़े दिन के बीच यदुकुल में श्रीकृष्णावतार होगा, उस बिन त्रिभुवन में तेरा सामना करने वाला कोई नहीं। यह बचन सुन बाणासुर अति प्रसन्न हो बोला—नाथ! वह पुरुष कब अवतार लेगा? और मैं कैसे जानूँगा कि वह वहाँ उपजा। हे राजा! शिव जी ने एक ध्वजा बाणासुर को दे के कहा कि इस बैरख को ले जाय अपने मन्दिर के ऊपर खड़ी कर दे। जब यह ध्वजा आप से आप टूट कर गिरे, तब तू जानियो कि मेरा रिपु जन्मा। महाराज! जब शंकर ने उसे ऐसे कहा समझाय, तब बाणासुर ध्वजा ले निज घर को चला शिर नाय। आगे घर जाय ध्वजा मन्दिर पर चढ़ाय दिन दिन यही मनाता था कि कब वह पुरुष प्रगटे और मैं उससे युद्ध करूँ। इसमें कितने एक वर्ष बीते उसकी बड़ी रानी जिसका बाणावती नाम था, तिसे गर्भ रहा और पूरे दिनों एक लड़की हुई। उस काल बाणासुर ने ज्योतिषियों को बुलाय बैठाय के कहा कि इस लड़की का नाम और गुण गिनकर कहो। इतनी बात के कहते ज्योतिषियों ने झट वर्ष, मास, पक्ष, तिथि, बार, घड़ी, मुहूर्त्त, नक्षत्र ठहराय लग्न बिचार उस लड़की का नाम ऊषा धर के कहा कि, महाराज! यह कन्या गुण रूप शील की खान महा रूपवान होगी, इसके ग्रह और लक्षण ऐसे ही

जान पड़ते हैं। इस बात के सुनते ही बाणासुर ने अति प्रसन्न हो पहिले बहुत कुछ ज्योतिषियों को दे बिदा किया; पीछे मंगलामुखियों को बुलाय मंगलाचार करवाय। पुनि ज्यों ज्यों वह कन्या बढ़ने लगी त्यों त्यों बाणासुर उसे अति प्यार करने लगा। जब ऊषा सात वर्ष की भई तब उसके पिता ने शोणितपुर के निकट ही कैलाश था वहाँ कई एक सखी सहेलियों के साथ उसे शिव पार्वती के पास पढ़ने को भेज दिया। ऊषा गणेश सरस्वती को मनाय, शिव पार्वती के सन्मुख जाय, हाथ जोड़ शिर नाय, बिनती कर बोली कि हे कृपासिन्धु शिव गौरी! दया कर मुझ दासी को विद्या दान कीजै; और जगत् में यश लीजै। महाराज! ऊषा के अति दीन बचन सुन शिव पार्वती जी ने उसे प्रसन्न हो विद्या का आरम्भ करवाया। वह नित प्रति जाय जाय पढ़ पढ़ आवै। इस में कितने एक दिनों के बीच सब शास्त्र पढ़ गुण विद्यावती हुई, और सब यंत्र बजाने लगी। एक दिन ऊषा पार्वती जी के साथ मिलकर बीणा बजाय सङ्गीत की रीति से गाय रही थी कि उस काल शिव जी ने आय पार्वती से कहा कि हे प्रिये! मैंने जो कामदेव को जलाया था तिसे अब श्रीकृष्ण जी ने उपजाया। इतना कह श्रीमहादेव जी गिरजा को साथ ले गंगा तीर पर जाय नीर में न्हाय न्हलाय सुख की इच्छा कर अति लाड़ प्यार से लगे पार्वती जी को बस्त्र आभूषण पहराने और हित करने। निदान अति आनन्द में मग्न हो डमरू बजाय बजाय ताण्डव नाच नाच सङ्गीत शास्त्र की रीति से गाय गाय शिवा को लगे रिझाने; और बड़े प्यार से कण्ठ लगाने उस समय ऊषा शिव गौरी का सुख प्यार देख देख पति के मिलने की अभिलाषा कर मनहीं मन कहने लगी कि मेरा भी कन्त होय तो मैं भी शिव पार्वती

की भाँति उसके साथ बिहार करूँ। पति बिन कामिनी ऐसी शोभा-हीन है, कि जैसे चन्द बिन यामिनी। महाराज! जो ऊषा मन ही मन इतनी बात कही तो अन्तर्यामिनी श्रीपार्वती जी ने ऊषा की अन्तर्गति जान उसे अति हित से निकट बुलाय प्यार कर समझाय के कहा कि, बेटी! तू किसी बात की चिन्ता मन में मत कर, तेरा पति तुझे स्वप्ने में आय मिलेगा तू उसे दुँढ़षाय लीजो और उसके साथ सुख भोग कीजो। ऐसे बर दे शिवरानी ने ऊषा को बिदा किया, वह सब विद्या पढ़ वर पाय दण्डवत् कर अपने पिता के पास आई। पिता ने एक मन्दिर अति सुन्दर निराला उसे रहने को दिया। और यह कितनी एक सखी सहेलियों को ले वहाँ रहने लगी और दिन दिन बढ़नें। महाराज! जिस काल वह बाला बारह वर्ष की हुई, तो उसके मुख-चन्द्र की ज्योति देख पूर्णमासी का चन्द्रमा छबि छीन हुआ; बालों के श्यामता के आगे अमावस की अँधेरी फीकी लगने लगी। उसकी चोटी की सटकाई लख नागिन अपनी कँचली छोड़ सटक गई। भौंह की बंकाई निरख धनुष धकधकाने लगा; आँखों की बड़ाई चञ्चलाई पेख मृग मीन खञ्जन खिसाय रहे। नाक की निकाई निहार तिल फूल मुरझाय गया। ऊपर के अधर की लाली लख बिम्बाफल बिलबिलाने लगा। दाँत की पाँति निरखि दाड़िम का हिया दड़क गया। कपोलों की कोमलता पेख गुलाब फूलने से रह गया। गले की गुलाई देख कपोत कल-मलाने लगे। कुचों की कोर निरखि कमल कली सरोवर में जाय गिरी। उसकी कटि की कृशता देखि केशरी ने बनवास लिया, जाँघों की चिकनाई देख केले ने कपूर खाया, देह की गुराई निरखि सोने को सकुच भई, और चम्पा मुँह चोर हुआ। कर पद के आगे पद्म की पदवी कुछ न रही। ऐसी वह

गजगामिनी, पिकवयनी, नवबाला, यौवन की सरसाई से शोभायमान भई कि जिसने इन सब की शोभा छीन ली। आगे एक दिन वह नवयौवना सुगन्ध उबटन लगाय, निर्मल नीर से मल मल न्हाय, कंघी चोटी कर पाटी सँवार माँग मोतियों से भर अञ्जन मंजन कर मेहदी महावर रचाय पान खाय अच्छे जड़ाऊ सोने के गहने मँगाय शीशफूल, बेना, बेंदी, बंदी, टीढ़ी, कर्णफूल, चौदानियाँ, छड़े, गजमोतियों की नथ, भल के लटकन समेत जुगुनू, मोतियों के दुलड़े में गुहा चन्द्रहार, मोहनमाला, पंचलड़ी, सतलड़ी, धुकधुकी, भुजबन्ध, चूरी, नौगरी, कंकण, कड़े, मुन्दरी, छाप छल्ले, किंकणीं, जेहर, तेहर, गुजरी, अनवट, बिछुवे पहिन, सुथरी झमझमाती मोतियों की कोरका, बड़े घेर का घाँघरा और चमचमाती आँचल, पल्लू की सारी पहिन, जगमगाती कंचुकी कस, ऊपर से झलमलाती ओढ़नी ओढ़ तिस पर सुगन्धि लगाय इस सज धज से हँसते हँसते सखियों के साथ माता पिता को प्रणाम करने गई कि जैसे लक्ष्मी, ज्यों सन्मुख जाय दण्डवत कर ऊषा खड़ी भई त्यों बाणासुर ने उसके यौवन की छटा देख निज मन में इतना कह उसे विदा किया, कि अब यह ब्याहने योग्य हुई। और पीछे से कई एक राक्षस उसके मन्दिर की रखवाली को भेजे और कितनी एक राक्षसी उसकी चौकसी को पठाई। वे वहाँ जाय आठ पहर सावधानी से रहने लगे और राक्षसियाँ सेवा करने लगीं। महाराज! वह राजकन्या पति के लिये नित प्रति तप दान व्रतकर श्रीपार्वती जी की पूजा किया करे। एक दिन नित्यकर्म से निश्चिन्त हो रात्रि समय सेज पर अकेली बैठी मनहीं मन यों शोच रही थी कि, देखिये पिता मेरा बिवाह कब करें और किस भाँति मेरा बर मुझे मिले। इतना कह पति ही के ध्यान

में सेा गई तो स्वप्न में देखती क्या है कि एक पुरुष किशोर वयस, श्यामवर्ण, चन्द्रमुख, कमलनयन, अति सुन्दर कामदेव का स्वरूप, पीताम्बर पहिने मोरमुकुट शिर धरे, त्रिभङ्गी छबि करे रत्नजटित आभूषण, मकराकृत कुण्डल, मोहन रूप, बन माला, गुञ्जहार पहिने और पीत बसन आढ़े, महाचञ्चल सन्मुख आय खड़ा हुआ। यह उसे देखते ही मोहित हो लजाय शिर झुकाय रही तब उसने कुछ प्रेमसनी बातें कर स्नेह बढ़ाय निकट आय हाथ पकड़ कण्ठ लगाय उसके मन का भ्रम और शोच संकोच सब बिसराय दिया। फिर तो परस्पर शोच संकोच तज लगे सेज पर बैठ हाव-भाव कटाक्ष और आलिंगन चुम्बन कर सुख लेने देने और आनन्द में मग्न हो प्रीति की बातें करने कि इसमें कितनी एक बेर पीछे ऊषा ने ज्यों प्यार कर कहा कि पति को अँकवार भर कण्ठ लगाऊँ तो नयनों से नींद गई, और जिस भाँति हाथ बढ़ाय मिलने को भई थी तिसी भाँति मुरझाय पछताय रह गई।

दो० जागि परी शोचति खड़ी, भयेा परम दुख ताहि।
कहाँ गयेा वह प्राणपति, देखत चहुँ दिशि चाहि॥

चौ० शोचत ऊषा मिलिहौं काहि। फिर कैसे मैं देखौं ताहि॥
सोवत जेा रहती हौं आज। प्रीतम कबहुँ न जातेा भाज॥
क्येां सुख में गहिबे को भई। जौ यह नींद नयन ते गई॥
जागत ही यामिनि यम भई। जैहै क्यों अब यह दुख दई॥
बिन प्रीतम जिय निपट अचैन। देखे बिन तरसत हैं नैन॥
श्रवण सुन्येा चाहत है बैन। कहाँ गये प्रीतम सुख दैन॥
जेा सपने पिय पुनि लखिलेऊँ। प्राण साथ करि उनके देऊँ॥

महाराज! इतना कह ऊषा अति उदास हो पिया का ध्यान कर सेज पर जाय मुख लपेट पड़ रही। जब रात गई भेार हुआ और डेढ़ पहर दिन चढ़ा, तब सखी सहेली मिल आपस में

कहने लगी कि आज क्या है जो ऊषा इतना दिन चढ़ा और अब तक सोती नहीं उठी ? यह बात सुन चित्ररेखा बाणासुर के प्रधान कुम्भाण्ड की बेटी चित्रशाला में जाय, क्या देखती है कि ऊषा छपरखट के बीच मन मारे जी हारे निढाल पड़ी रो रो लम्बी लम्बी साँस ले रही है, उसकी यह दशा देख :—

चौ० चित्ररेखा बोली अकुलाय। कह सखि तू मोसों समझाय॥
आज कहा शोचति है खड़ी। महा वियोग सिन्धु में पड़ी॥
रो रो अधिक उसासें लेत। तन मन व्याकुल है किहि हेत॥
तेरे मन को दुख परिहरौं। मन चीत्यो कारज सब करौं॥
मोसी सखी और न धनी। है परतीति मोहिं आपनी॥
सकल लोक में हौं फिर आऊँ। जहाँ जाऊँ कारज करि लाऊँ॥
मोको वर ब्रह्मा ने दीनौ। बश मेरे सब ही को कीनौ॥
मेरे संग शारदा रहैं। वाके बल करिहौं जो कहैं॥
ऐसी महा मोहनी जानौं। ब्रह्मा विष्णु रुद्र छलि आनौं॥
मेरे कोऊ भेद न जानै। अपनो गुण को आप बखानै॥
ऐसे और न कहि मैं कोऊ। भलो बुरो कोऊ किन होऊ॥
अब तू कह सब अपनी बात। कैसे कटी आज की रात॥
मोसो कपट करै जनि प्यारी। पुजवौंगी सब आश तुम्हारी॥

महाराज ! इतनी बात के सुनते ही ऊषा अति सकुचाय, शिर नाय, चित्ररेखा के निकट आय, मधुर बचन से बोली कि सखी ! मैं तुझे अपनी हितू जान रात की बात सब कह सुनाती हूँ, तू निज मन में रख और कुछ उपाय कर सके तो कर, आज रात को स्वप्न में एक पुरुष मेघवर्ण, चन्द्रवदन, कमल नयन, पीताम्बर पहिने, पीट पट ओढ़े मेरे पास आय बैठा, और अति हित कर उसने मेरा मन हाथ में ले लिया। मैं भी शोच संकोच तज उससे बातें करने लगी। निदान बतराते बतराते जो मुझे

प्यार आया, तो मैंने उसे पकड़ने को हाथ बढ़ाया। इस बीच मेरी नींद गई और उसकी मोहनी मूर्ति मेरे ध्यान में रही।

चौ० देख्यो सुन्यो और नहिं ऐसो। मैं कहुँ कहा बताऊँ जैसो॥
बाकी छवि बरणी नहिं जाय। मेरो चित लै गयो चुराय॥

जब कैलाश में श्रीमहादेवजी के पास विद्या पढ़ती थी, तब श्रीपार्वती जी ने मुझे कहा था कि तेरा पति मुझे स्वप्ने में आय मिलेगा, तू उसे ढुंढ़वाय लीजो। सो बर आज रात को मुझे स्वप्ने में मिला मैं उसे कहाँ पाऊँ और अपने बिरह की पीर किसे सुनाऊँ, कहाँ जाऊँ? उसे किस भाँति ढुँढ़वाऊँ? न उसका नाम जानूँ न गाँव। महाराज! इतना कह जब ऊषा लम्बी साँसें ले मुरझाय रह गई, तब चित्ररेखा बोली कि, सखी! अब तू किसी बात की चिन्ता मत करै, मैं तेरे कन्त को तुझे जहाँ होगा तहाँ से ढूँढ़ ला मिलाऊँगी। मुझे तीनों लोक में जाने की सामर्थ्य है। जहाँ होगा तहाँ जाय जैसे बनेगा तैसे ही ले आऊँगी; तू मुझे उसका नाम और जाने की आज्ञा दे।

ऊषा बोली—वीर! तेरी वही कहावत है कि मरी, क्योंकि सांस न आई। जो मैं उसका नाम गाँव ही जानती तो दुःख काहे का था! कुछ न कुछ उपाय करती। यह बात सुन चित्ररेखा बोली—सखी! तू इस बात का भी शोच न कर मैं तुझे त्रिलोकी के पुरुष लिख लिख दिखाती हूँ, उनमें से अपने चित्त चोर को देख बता दीजो, फिर ला मिलाना मेरा काम है। तब तो हँस कर ऊषा बोली—बहुत अच्छा, महाराज! यह बचन ऊषा के मुख से निकलते ही चित्ररेखा लिखने का सब सामान मँगाय आसन मार बैठी और गणेश शारदा को मनाय, गुरु का ध्यान कर, लिखने लगी। पहिले तो उसने तीन लोक, चौदह भुवन, सप्त द्वीप, नवखण्ड, पृथ्वी, आकाश, सातों समुद्र, आठों लोक,

बैकुण्ठ सहित लिख दिखाये। पीछे सब देव, दानव, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, ऋषि, मुनि, लोकपाल, दिग्पाल और सब देशों के भूपाल लिख लिख एक एक कर चित्ररेखा ने दिखाये, पर ऊषा ने अपना चाहता उनमें न पाया। फिर चित्ररेखा यदुवंशियों की मूर्त्ति एक एक लिख लिख दिखाने लगी, इसमें अनिरुद्ध का चित्र देखते ही ऊषा बोली:—

चौ० अब मन चोर सखी मैं पायेा। रात यहो मेरे ढिग आयेा॥
कर अब सखि तू कछू उपाव। याको ढूँढ़ कहूँ ते ल्याव॥
सुनकै चित्ररेखा यों कहै। अब यह मोते क्यों बच रहै॥

यों सुनाय चित्ररेखा पुनि बोली कि, सखी! तू इसे नहीं जानती मैं पहचानती हूँ। यह यदुबंशी श्रीकृष्णचन्द्र जी का पोता प्रद्युम्न जी का बेटा और अनिरुद्ध इसका नाम है समुद्र के तीर नीर में द्वारका नाम की एक पुरी है तहाँ यह रहता है। हरि आज्ञा से उस पुरी की चौकी आठ पहर सुदर्शन चक्र देता है इसलिये कि कोई दैत्य दानव दुष्ट आय यदुवंशियों को न सतावे। और जो कोई पुरी में आवै सेा बिना राजा उग्रसेन शूरसेन की आज्ञा न आने पावै। महाराज! इस बात के सुनते ही ऊषा अति उदास हेा बोली कि, सखी! जो वहाँ ऐसी बिकट ठाँव है तो तू किस भाँति तहाँ जाय मेरे कन्त को लावेगी? चित्ररेखा ने कहा कि, आली! तू इस बात से निश्चिन्त रहु। मैं हरि प्रताप से तेरे प्राणपति को ला मिलाती हूँ। इतना कह चित्ररेखा राम-नामी कपड़े पहिन गोपी चन्दन का उर्द्ध्व त्रिपुण्ड्र तिलक काढ़ छापे गर भुज मूल और कण्ठ में लगाय बहुत सी तुलसी की माला गले में डाल, हाथ में बड़े बड़े तुलसी के हीरों की स्मरणी ले, ऊपर से हिरावल ओढ़, काँख में भगवद्गीता की पोथी

दबाकर, परम भक्त वैष्णव का भेष बनाय ऊषा को यों सुनाय शिर नाय, बिदा हो द्वारका को चली।

दो० पैंड़े अब आकाश के, अन्तरिक्ष ह्वै जाऊँ॥
ल्याऊँ तेरे कन्त कों, चित्ररेखा तो नाऊँ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! चित्ररेखा अपनी माया कर, पवन के तुरङ्ग पर चढ़ अँधेरी रात में श्यामघटा के साथ बात की बात में द्वारकापुरी में जा बिजली सी चमकी और श्रीकृष्णचन्द्र के मन्दिर में बढ़ गई; ऐसी कि इसका जाना किसी ने न जाना। आगे यह ढूँढ़ती ढूँढ़ती वहाँ गई जहाँ पलँग पर सोये अनिरुद्ध जी अकेले स्वप्ने में ऊषा के साथ बिहार कर रहे थे। इसने देखते ही झट उस सोते का पलंग उठाय चट अपनी बाट ली।

चौ० सोवत ही पर्यङ्क समेत। लिये जात ऊषा के हेत॥
अनिरुद्ध को ले आई तहाँ। ऊषा चिन्तति बैठी जहाँ॥

महाराज! पलंग समेत अनिरुद्ध को देखते ही ऊषा पहिले तो हकबकाय चित्ररेखा के पाँवों पर जाय गिरी। पीछे यों कहने लगी, धन्य है धन्य है सखी! तेरे साहस और पराक्रम को? जो ऐसी कठिन ठौर जाय बात की बात में पर्यंक समेत उठा लाई और अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। मेरे लिये तैंने इतना कष्ट किया इसका पलटा मैं तुझे नहीं दे सकती तेरे ऋण की ऋणियाँ रहीं। चित्ररेखा बोली—सखी! संसार में बड़ा सुख यही है जो पर को सुख दीजै, और कार्य्य भी भला वही है कि उपकार कीजै; यह शरीर किसी काम का नहीं, इससे किसी के काम आ सके तो यही बड़ा काम है, इससे स्वार्थ परमार्थ दोनों होते हैं। महाराज! इतना बचन सुनाय चित्ररेखा पुनि यों कह बिदा हो अपने घर गई

कि, सखी ! भगवान के प्रताप से तेरा कन्त मैंने तुझे ला मिलाया, अब तू इसे जगाय अपना मनोरथ पूरा कर। चित्ररेखा के जाते ही ऊषा अति प्रसन्न हो लाज किये प्रथम मिलने का भय किये मनहीं मन कहने लगी :—

चौ० कहा बात कहि पियहि जगाऊँ। कैसे भुज भर कंठ लगाऊँ॥

निदान बीणा मिलाय मधुर मधुर स्वरों से बजाने लगी। बीणा की धुनि सुनते ही अनिरुद्ध जी जग पड़े, और चारों ओर देख देख मनमें यों कहने लगे कि यह कौन ठौर, किसका मन्दिर ? और मैं यहां कैसे आया और कौन मुझे सोते के पलंग समेत उठा लाया ? महाराज ! उस काल अनिरुद्ध जी तो अनेक अनेक प्रकार की बातें कह कह आश्चर्य करते थे और ऊषा शोच संकोच लिये प्रथम मिलने का भय किये एक ओर कोने में खड़ी पिय का चन्द्रमुख निरख निरख अपने लोचन चकोरों को सुख देती थी। इस बीच :—

चौ० अनिरुद्ध देखि कहै अकुलाय। कह सुन्दरि तू अपने भाय॥
है तू को मोपै क्यों आई। कै तू मोहिं आप लै आई॥
साँच झूँठ एक नहिं जानौ। सपनो सेा देखत हौं मानौ॥

महाराज ! अनिरुद्ध जी ने इतनी बातें कहीं, और ऊषा ने उत्तर कुछ न दिया; बरन् और भी लाजकर कोने में सट रही। तब तो उन्होंने झट उसे हाथ पकड़ पलंग पर ला बिठाया और प्रीति सनी प्यार की बातें कह उसके मन में शोच संकोच और भय सब मिटाय कर प्रसन्न किया। आगे वे दोनों परस्पर सेज पर बैठे हाव भाव कटाक्ष कर सुख देने लगे, और प्रेम कथा कहने लगे। इस बीच बातों ही बातों में अनिरुद्ध जी ने ऊषा से पूँछा कि, हे सुन्दरि तूने प्रथम मुझे कैसे देखा और पीछे किस

भाँति यहाँ मँगाया ? इसका भेद समझा कर कह जो मेरे मन का भ्रम जाय। इतनी बात के सुनते ही ऊषा पति का मुख निरख हर्ष से बोली :—

चौ० मोहिं मिले तुम सपने आय। मेरा चित्त ले गये चुराय॥
जागी मन भारी दुख लह्यो। तब मैं चित्ररेखा सों कह्यो॥
सोई प्रभु तुमको यहँ लाई। ताकी गति जानीं नहिं जाई॥

इतना कह पुनि ऊषा ने कहा—महाराज ! मैं तो जिस भाँति तुम्हें देखा और पाया तैसे सब कह सुनाया। अब आप कहिये अपनी बात समझाय, जैसे तुमने मुझे देखा यादवराय ! यह बचन सुन अनिरुद्ध अति आनन्द कर मुस्कराय के बोले कि, सुन्दरी ! मैं भी आज रात्रि को स्वप्न में तुझे देख रहा था कि नींद ही में कोई मुझे उठाय यहाँ ले आया, इसका भेद अब तक मैंने नहीं पाया कि मुझे कौन लाया, जगा तो मैंने तुझे ही देखा। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जो बोले कि महाराज ! ऐसे वे दोनों पिया प्यारी आपस में बतराय पुनि प्रीति बढ़ाय, अनेक अनेक प्रकार से लगे काम कलोल करने और बिरह की पीर हरने। आगे पान की मिठाई, मोतीमाल की शीतलताई और दीप ज्योति की मन्दताई निरखि ज्यों ऊषा बाहर जाय देखे त्यों ऊषःकाल हुआ, चन्द्र की ज्योति घटी, तारे द्युति हीन भये, आकाश में अरुणाई छाई, चारों ओर चिड़ियाँ चुहचुहाईं सरोवर में कुमुदिनी कुँभिलाई और कमल फूले, चकवा चकई, का संयोग हुआ।

महाराज ! ऐसा समय देख एक बार तो द्वार मूँद ऊषा बहुत घबराय घर में आय अति प्यार कर पिया को कण्ठ लगाय लेटी। पीछे पिया को दुराय सखी सहेलियों से छिपाय, छिप छिप कन्त की सेवा करने लगी। निदान अनिरुद्ध

का आना सखी सहेलियों ने जाना फिर तो वह दिन रात पति के संग सुख भोग किया करे। एक दिन ऊषा की माँ, बेटी की सुधि लेने आई तो उसने छिप कर देखा कि वह एक महा सुन्दर तरुण पुरुष के साथ कोठे पर बैठी आनन्द से चौपड़ खेल रही है। यह देखते ही बिन बोले चाले दबे पाँवों फिर मन ही मन प्रसन्न हो अशीश देती सूंट मार वह अपने घर चली गई। आगे कितने एक दिन पीछे एक दिन ऊषा पति को सोते देख जी में यह बिचार कर सकुचाती सकुचाती घर से बाहर निकली कि, कहीं ऐसा न हो जो कोई मुझे न देख अपने मन में जाने कि ऊषा पति के लिये घर से नहीं निकलती। महाराज! ऊषा कन्त को अकेला छोड़ जाते तो गई पर उससे रहा न गया, फिर घर में जाय किवाड़ लगाय बिहार करने लगी। यह चरित्र देख पौरियों ने आपस में कहा कि भाई! अब क्या है? जो राजकन्या अनेक दिन पीछे घर से निकली और फिर उलटे पावों चली गई। इतनी बात के सुनते ही उनमें से एक बोला कि भाई! मैं कई दिन से देखता हूँ कि ऊषा के मन्दिर का द्वार दिन रात लगा रहता है और घर के भीतर कोई पुरुष कभी हँस हँस बातें करता है और कभी चौपड़ खेलता है। दूसरे ने कहा—यह बात सत्य है तो चलो बाणासुर से जाय कहैं, समझ बूझ यहाँ क्यों बैठे रहैं।

चौ० एक कहै यह कही न जाय। तुम सब बैठे रहो अरगाय॥
भली बुरी जो होय सो होय। होन हार मेटै नहिं कोय॥
कछू न बात कुवँरि की कहिये। चुप ह्वै देख बैठ ही रहिये॥

महाराज! द्वारपाल आपस में ये बातें करते हो थे, कि कई एक योद्धा साथ लिये फिरता फिरता बाणासुर वहाँ आ निकला और मन्दिर के ऊपर दृष्टि कर शिव जी की दी हुई ध्वजा न देख बोला

कि यहाँ से ध्वजा क्या हुई? द्वारपालों ने उत्तर दिया कि, महाराज! वह तो बहुत दिन हुए कि टूट कर गिर पड़ी। इस बात के सुनते ही शिव जी का वचन स्मरण कर भाषित हो, बाणासुर बोला :—

चौ० कब की ध्वजा पताका गिरी। बैरी कहूँ औतरयो हरी॥

इतना बचन बाणासुर के मुख से निकलते ही एक द्वारपाल सन्मुख जा खड़ा हो हाथ जोड़ शिर नाय बोला कि, महाराज! एक बात है पर मैं वह कह नहीं सकता, जो आपकी आज्ञा पाऊँ तो ज्यों की त्यों कह सुनाऊँ। बाणासुर ने आज्ञा की, अच्छा कह। तब पौरिया बोला महाराज! अपराध क्षमा हो। कई दिन से हम देखते हैं कि राजकन्या के मन्दिर में कोई पुरुष आया है, वह दिन रात बातें किया करता है इसका भेद हम नहीं जानते कि वह कौन पुरुष है और कब कहाँ से आया है और क्या करता है? इतनी बात के सुनते प्रमाण बाणासुर अति क्रोध कर अस्त्र शस्त्र उठाय दबे पाँवों अकेला ऊषा के मन्दिर में जाय छिप कर क्या देखता है कि एक पुरुष श्यामवर्ण अति सुन्दर पीतपट ओढ़े निद्रा में अचेत ऊषा के साथ सोया पड़ा है।

चौ० शोचत बाणासुर यों हिये। होय पाप सोवत बध किये॥

महाराज! यों मन ही मन बिचार बाणासुर तो कई एक रखवाले वहाँ रख उनसे यह कह कर कि तुम इसके जागते ही हमें आय कहियो वह अपने घर जाय सभा कर सब राक्षसों को बुलाय कहने लगा कि मेरा बैरी आन पहुँचा है। तुम सब दल ले ऊषा का मन्दिर जाय घेरो, पीछे से मैं भी आता हूँ। आगे इधर तो बाणासुर की आज्ञा पाय सब राक्षसों ने आय ऊषा का घर घेरा और उधर अनिरुद्ध जो और राजकन्या नींद से चौंक पुनि सार पाँसे खेलने लगे। इसमें चौपड़ खेलते खेलते ऊषा

क्या देखती है कि चहुँ ओर से घनघोर घटा घिर आई, बिजुली चमकने लगी, दादुर, मोर पपीहे बोलने लगे। महाराज! पपीहे की बोली सुनते ही इतना कह पिय के कण्ठ लगी।

चौ० तुम पपीहा पो पी मत करौ। यह बियोग भाषा परिहरौ॥

इतने में किसी ने जाय बाणासुर से कहा कि, महाराज! तुम्हारा बैरी जागा। बैरी का नाम सुनते ही बाणासुर क्रोध कर के उठा और अस्त्र शस्त्र ले ऊषा की पौली में आय खड़ा हुआ और लगा छिपकर देखने। निदान देखते देखते :—

चौ० बाणासुर यों कहै हँकार। को है रे तू गेह मँझार॥

घन तन बरण मदन मनहारी। कमल नयन पीताम्बर धारी॥
अरे चोर बाहर किन आवै। जान कहाँ अब मोसे पावै॥

महाराज! जब बाणासुर ने टेर के यों कहे बैन तब ऊषा और अनिरुद्ध सुन और देख भये निपट अचैन। पुनि राजकन्या ने अति चिन्ता कर भयमान हो लम्बी साँस ले कन्त से कहा कि, महाराज! मेरा पिता असुर दल ले चढ़ि आया। अब तुम इसके हाथ से कैसे बचोगे?

दो० तबहीं कोपि अनिरुद्ध कह, मत डरपै तू नारि।
स्यार झुण्ड राक्षस असुर, पल में डारौं मारि॥

ऐसे कह अनिरुद्ध जी ने वेद मंत्र पढ़ एक सौ आठ हाथ की शिला मँगाय हाथ में ले बाहर निकल दल में जाय बाणासुर को ललकारा। इनके निकलते ही बाणासुर धनुष चढ़ाय सब दल ले अनिरुद्ध जी पर यों टूटा कि, जैसे मधुमाखियों का झुण्ड किसी पै टूटै। जब असुर अनेक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र चलाने लगे, तब क्रोध कर अनिरुद्ध जी ने शिला के हाथ कई एक मारे कि सब असुरदल काई सा फट गया। कुछ मरे, कुछ

घायल हुये, बचे सेा भाग गये। पुनि बाणासुर जाय सब को घेर लाया और युद्ध करने लगा। महाराज जितने अस्त्र शस्त्र असुर चलाते थे, तितने इधर उधर हो जाते थे अनिरुद्ध जी के अंग में एक भी न लगता था।

चौ० जेा अनिरुद्ध पर परैं हथियार। अधबर कटैं शिला की धार॥
शिला प्रहार सह्यो नहिं परै। बज्र चोट जनु सुरपति करै॥
लागत शीश बीच ते फटै। टूटहि जाँघ भुजा धर कटै॥

निदान लड़ते लड़ते जब बाणासुर अकेला रह गया और सब कटक कट गया तब उसने मन ही मन आश्चर्य कर इतना कह नागफाँस से अनिरुद्ध जी को पकड़ बाँधा कि इस अजित को मैं कैसे जीतूँगा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा—महाराज! जिस समय अनिरुद्ध जी को बाणासुर नागफाँस से बाँध अपनी सभा में ले गया उस काल अनिरुद्ध जी तो मन ही मन यों विचारते थे कि मुझे कष्ट होय तो होय पर ब्रह्मा का बचन झूँठ करना उचित नहीं क्योंकि जेा मैं नागफांस से बच कर निकलूँगा उसकी मर्य्याद भंग होयगी इसमें बँधे रहना ही भला है। और बाणासुर कह रहा था कि, अरे लड़के! तुझे अब मारता हूँ, जेा कोई तेरा सहायक हेा तो तू बुला। इस बीच ऊषा ने पिय की यह दशा सुन चित्ररेखा से कहा कि, सखी धिक्कार है मेरे जीने को जेा पति मेरा दुःख में रहे और मैं सुख से खाऊँ पीऊँ और सेाऊँ। चित्ररेखा बोली—सखी! तू कुछ चिन्ता मत करै तेरे पति का कोई कुछ न कर सकेगा निश्चिन्त रहु, अभी श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी सब यदुवंशियों को साथ ले चढ़ि आवेंगे और असुरदल को संहार तुझ समेत अनिरुद्ध को छुड़ाय ले जायँगे। उनकी यही रीति है

कि जिस राजा के सुन्दरी कन्या सुनते हैं वहाँ से बल छल कर जैसे बनै तैसे ले जाते हैं, उन्हीं का यह पोता है जो कुण्डिनपुर से राजा भीष्मक की बेटी रुक्मिणी को महाबली बड़े प्रतापी राजा शिशुपाल और जरासन्ध से संग्राम कर ले गये थे तैसे ही अब तुझे ले जायँगे; तू किसी बात की भावना मत कर। ऊषा बोली—सखी! यह दुःख मुझ से सहा नहीं जाता।

चौपाई

नागफाँस बाँधे पिय हरी। दहै गात ज्वाला विष भरी॥
हौं कैसे सेाऊँ सुख शयना। पिय दुख कैसे देखूँ नयना॥
प्रीतम बिपति परे क्यों जीवों। भोजन करों न पानी पीओं॥
बरु बध अब बाणासुर कीजे। मेाकों शरण कन्त की दीजे॥
होनहार होनी है होय। तासेा कहा कहैगेा कोय॥
लेाक वेद की लाज न मानौं। पिय संग दुःख सुख ही में जानौं॥

महाराज! चित्ररेखा से ऐसे कह जब ऊषा कन्त के निकट जाय निडर निश्शंक होकर बैठी तब किसी ने बाणासुर को जा सुनाया कि, महाराज! राजकन्या घर से निकल उस पुरुष के पास गई। इतनी बात के सुनते ही बाणासुर ने अपने पुत्र स्कन्द को बुलाय के कहा कि, बेटा! तुम अपनी बहिन को सभा से उठाय घर में ले जाय पकड़ रक्खो और निकलने न दो। पिता की आज्ञा पाते ही स्कन्द बहिन के पास जा अति क्रोध कर बोला कि, तैंने यह क्या किया पापिनी? जेा छोड़ी लोकलाज और कान आपनी। हे नीचनी! मैं तुझे क्या बध करूँ होगा पाप और अपयश से भी डरूँ हूँ। ऊषा बोली कि, भाई! जेा तुझे भावै सेा करो, मुझे पार्वती जी ने जेा बर दिया था सेा बर मैंने पाया, अब इसे छोड़ और को धाऊँ, तेा अपने को गाली चढ़ाऊँ। तजती हैं पति को अकुलीना नारी, यही रीति परम्परा से चली

द्वारकापुरी से धौंसा दे शोणितपुर को चले, उस समय की कुछ शोभा बरणी नहीं जाती कि सब के आगे तो बड़े बड़े दँतीले मतवाले हाथियों की पाँति तिस पर धौंसा बाजता जाता था। और ध्वजा पताका फहराती थी, तिनके पीछे एक ओर गजों की अवली अम्बारियों समेत जिन पर बड़े बड़े रावत योद्धा शूरवीर यादव झिलम टोप पहिने सब अस्त्र अस्त्र लगाये बैठे जाते थे, उनके पीछे रथों के तातों के तांते दृष्टि आते थे। उनकी पीठ पर घुड़चढ़ों के यूथ के यूथ वर्ण वर्ण के घोड़े, गोटे, पट्टे वाले, गजगाह, पाखर, डाले, जमाते, ठहराते, नचाते, कुदाते, चले जाते थे, और उनके बीच बीच चारण यश गाते थे, और कड़खैत का कड़खा तिस पीछे फरी, खाँड़े, छुरी, कटारी, जमधर, धोपे, बरछी, बरछे, आले, बल्लम, बाने, पटे, धनुष, बाण, गदा, चक्र, फरसे, गड़ासे, लुहाँगी, बाँक, बिछुए समेत अनेक अनेक प्रकार के गुप्त अस्त्र शस्त्र लिये पैदलों का दल टीड़ी दल सा चला जाता था। उनके मध्य मध्य धौंसे, ढोल, डफ, बाँसुरी, भेर नरसिंहों का जो शब्द होता था सो अति ही सुहावना लगता था।

चौपाई

उड़ी रेणु आकाश लों छाई। छिप्यो भानु भयो निसि के भाई॥
चकई चकवा भयो बियोग। सुन्दरि करे कन्त सो भोग॥
फूले कुमुद कमल कुँभिलाने। निशिचर फिरैं निशा जिय जाने॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! जिस समय बलराम जी बारह अक्षौहिणी सेना ले अति धूमधाम से उसके गढ़ गढ़ी कोट तोड़ते और देश उजाड़ते जाय शोणितपुर में पहुँचे और श्रीकृष्णचन्द्र और प्रद्युम्न जी भी आन मिले तिसी समय किसी ने अति भय खाय घबराय जाय हाथ जोड़ शिर नाय बाणासुर से कहा कि, महाराज! कृष्ण बलराम

अपनी सब सेना ले चढ़ आये और उन्होंने हमारे देश के गढ़ गढ़ी कोट धाय गिराये और नगर को चारों ओर से आय घेरा। अब क्या आज्ञा होती है? इतनी बात के सुनते ही बाणासुर महा क्रोध कर अपने बड़े बड़े राक्षसों को बुलाय बोला—तुम सब दल अपना ले जाय नगर के बाहर जाय कृष्ण बलराम के सन्मुख खड़े हो पीछे से मैं भी आता हूँ। महाराज! आज्ञा पाते ही वे असुर बात की बात में बारह अक्षौहिणी सेना ले श्रीकृष्ण बलराम जी के सोंहीं लड़ने को अस्त्र शस्त्र लिये आ खड़े रहे। उनके पीछे ही श्री महादेव जी का भजन स्मरण ध्यान कर बाणासुर भी आ उपस्थित हुआ। शुकदेव मुनि बोले कि, महाराज! ध्यान करते ही शिव जी का आसन डोला और ध्यान छूटा तो उन्होंने ध्यान धर जाना कि मेरे भक्त पर भीड़ पड़ी है इस समय चल कर उसकी चिन्ता मेटा चाहिये। यह मनहीं मन विचार जब पार्वती को अर्द्धाङ्ग धर जटा जूट बाँध भस्म चढ़ाय बहुत सी भाँग और आक धतूरा खाय श्वेत नागों का जनेऊ पहिन गजचर्म ओढ़ मुण्डमाल सर्पहार पहन, त्रिशूल, पिनाक, डमरू, खप्पर ले नन्दी पर चढ़, प्रेत भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी, भूतनी, पिशाचनी, प्रेतनी आदि सेना ले भोलानाथ चले। उस समय की शोभा कुछ बरणी नहीं जाती कि कान में गजमणि की मुद्रा, ललाट पै चंद्रमा, शीश पै गंगा धरे, लाल लाल लोचन कर अति भयंकर भेष, महाकाल की मूर्त्ति बनाये इस रीति से बजाते गाते सेना को नचाते थे कि, वह रूप देखते ही बनि आवै, कहने में न आवे। निदान कितनी एक बेर में शिव जी अपनी सेना लिये वहाँ पहुँचे कि जहाँ सब असुर दल लिये बाणासुर खड़ा था। हर को देखते ही बाणासुर हर्ष के बोला कि, कृपासिन्धु! आप बिन कौन इस समय मेरी सुधि ले।

चौ० तेज तुम्हारे इनको दहै। यादव कुल अब कैसे रहै॥

यों सुनाय कहने लगा कि महाराज! इस समय धर्म युद्ध करो और एक एक के सन्मुख हो एक एक लड़ो। महाराज! इतनी बात ज्यों बाणासुर के मुख से निकली त्यों इधर असुर दल लड़ने को तुल कर खड़ा हुआ और उधर यदुवंशी आ उपस्थित हुए दोनों ओर जुझाऊ बाजा बजने लगा, शूर वीर रावत योद्धा धीर लगे अस्त्र शस्त्र साजने और अधीर नपुंसक कायर खेत छोड़ छोड़ जी ले ले भागने, उस काल महाकाल स्वरूप शिव जी श्रीकृष्णचन्द्र के सन्मुख हुए, बाणासुर बलराम जी के सोंही हुआ, स्कन्द प्रद्युम्न से भिड़ा और इसी भाँति एक एक से जुट गया और लगा दोनों ओर से शस्त्र चलने। उधर धनुष पिनाक महादेव जी के हाथ, इधर सारङ्ग धनुष लिये यदुनाथ। शिव जी ने ब्रह्मबाण चलाया, श्रीकृष्ण जी ने ब्रह्मशस्त्र से काट गिराया। फिर रुद्र ने चलाई महा बयार, हरि ने तेज से दीनी टार पुनि महादेव ने अग्नि उपजाई वह मुरारी ने मेंह बर्षाय बुझाई, और एक महाज्वाला उपजाई, जो सदा शिव जी के दल में धाई, उसने डाढ़ी और मूछ जलाय के केश, कीन्हें सब असुर भयानक भेष, जब असुर दल जलने लगा और बड़ा त्राह काल हुआ, तब भोलानाथ ने जले अध जले राक्षसों और भूत प्रेतों को तो जल बर्षाय ठण्डा किया और आप अति क्रोध कर नारायणी बाण चलाने को लिया। पुनि मनहीं मन कुछ सोच समझ न चलाय रख दिया। फिर तो श्री कृष्ण जी आलस्य बाण चलाय सबको अचेत कर लगे असुर दल काटने। ऐसे कि जैसे किसान खेती काटे। यह चरित्र देख जो महादेव जी ने अपने मन में शोच कर कहा कि अब प्रलय युद्ध बिन किये नहीं बनता त्योंहीं स्कन्ध मोर पर चढ़ धाया और अन्तरिक्ष हो श्रीकृष्ण जी की सेना पर बाण चलाया।

चौ० तब हरि सों प्रद्युम्न उचरै। मोर चढ़्यो ऊपर तें लरै
आज्ञा देहु युद्ध अति करैं। मारों अबहिं भूमि गिर परैं॥

इतनी बात के सुनते ही प्रभु ने आज्ञा दी और प्रद्युम्न जी ने एक बाण मारा सेा मेार के लगा स्कंद नीचे गिरा। स्कंद के गिरते ही बाणासुर अति कोप कर पांच सौ धनुष चढ़ाय एक एक धनुष पर दो दो बाण धर लगा मेह सा बर्षाने, और श्रीकृष्णचन्द्र बीच ही लगे काटने। महाराज! उस काल इधर उधर के मारू ढोल डफ से बजाते थे, कड़खैत धमालसी गाते थे, घावों से लोहू की धारें पिचकारियां सी चल रहीं थीं, जिधर तिधर जहां तहां लाल लाल लोहू गुलाल सा दृष्टि आता था, बीच बीच भूत प्रेत पिशाच जेा भांति भांति के भेष भयावने बनाये फिरते थे सेा भगत सी खेल खेलते थे। और रक्त की नदी रंग की सी नदी बह निकली थी, लड़ाई क्या दोनों ओर होली सी हेा रही थी। इसमें लड़ते लड़ते कितनी एक बेर पीछे श्रीकृष्ण ने एक बाण ऐसा मारा कि उसका सारथी उड़ गया और घोड़े भड़के। निदान सारथी मरते ही बाणासुर भागा श्रीकृष्ण ने उसका पीछा किया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! बाणासुर के भागने का समाचार पाय उसकी माँ जिसका नाम कोटरा था सेा उसी समय भयानक भेष छुटे केश नङ्गी सुनंगी आ श्रीकृष्णचन्द्र जी के सन्मुख हुई और लगी पुकार पुकार कहने।

चौपाई

देखते ही प्रभु मूँदे नयन। पीठ दई ताके सुन बयन॥
तौलों बाणासुर भज गयो। फिर अपनो दल जोरत भयेा॥

महाराज ! जब तक बाणासुर एक अक्षौहिणी दल साज वहाँ आया तब तक कोटरा श्रीकृष्ण जी के आगे से न टली पुत्र की सेना देख अपने घर गई। आगे बाणासुर ने आय बड़ा युद्ध किया पर प्रभु के सन्मुख न ठहरा, फिर भाग महादेव जी के पास गया। बाणासुर को भयातुर देख श्रीशिव जी ने अति क्रोध कर महा विषमज्वर को बुलाय श्रीकृष्ण जी की सेना पर चलाया, वह महा बड़ा तेजस्वी जिसका तेज सूर्य के समान तीन मूड़ नव पग छः कर वाला त्रिलोचन भयानक भेष श्रीकृष्णचंद्र के दल को आय घाला। उसके तेज से यदुवंशी लगे जलने और थरथर काँपने निदान अति दुःख पाय घबराय यदुवंशियों ने आय श्रीकृष्णचंद्र जी से कहा कि, महाराज ! शिव जी के ज्वर ने आय सारे कटक को जलाय मारा, अब इसके हाथ से बचाइये नहीं तो एक भी यदुवंशी जीता न बचेगा, महाराज ! इतनी बात सुन सब को कातर देख हरि ने शीतज्वर चलाया वह महादेव के ज्वर पर धाया। इसे देखते ही वह डर कर पलाया और चला चला सदा शिव के पास आया।

चौ० तब ज्वर महादेव सो कहै। राखहु शरण कृष्ण ज्वर दहै॥

यह बचन सुन महादेव जी बोले कि, श्रीकृष्ण जी के ज्वर को बिन श्रीकृष्णचंद्र के ऐसा त्रिभुवन में कोई नहीं जो हरै। इससे उत्तम यही है कि तू भक्त हितकारी श्रीमुरारी के पास जा। शिव वाक्य सुन सोच बिचार विषमज्वर श्रीकृष्णचंद्र आनंदकन्द जी के सन्मुख जा हाथ जोड़ अति बिनती कर गिड़गिड़ाय हा हा खाय बोला कि हे कृपासिंधु ! दीनबंधु ! पतितपावन ! दीनदयाल ! मेरा अपराध क्षमा कीजै और अपने ज्वर से बचाय लीजै।

चौपाई

प्रभु तुम हौ ब्रह्मादिक ईश। तुम्हरी शक्ति अगम जगदीश॥
तुमहीं रचि कर सृष्टि सवाँरी। सब माया जग कृष्ण तुम्हारी॥
कृपा तुम्हारी अब मैं बूझ्यो। ज्ञान भये जग कर्त्ता सूझ्यो॥

इतनी बात के सुनते ही हरि दयाल बोले कि तू मेरी शरण आया इससे बचा नहीं तो जीता न बचता। मैंने तेरा अबका अपराध क्षमा किया पर फिर मेरे भक्त और दासों को मत व्यापियो। तुझे मेरी ही आन है। ज्वर बोला कि, कृपासिन्धु! जो इस कथा को सुनेगा उसे शीतज्वर अतरा और तिजारी कभी न व्यापेगी पुनि श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि तू अब महादेव के निकट जा यहां मत रह नहीं तो मेरा ज्वर तुझे दुःख देगा। आज्ञा पाते ही बिदा हो दण्डवत् कर बिषमज्वर सदा शिव जी के पास गया और ज्वर का भय सब मिट गया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज!

चौ० यह संबाद सुने जो कोय। ज्वर को डर ताको नहिं होय॥

आगे बाणासुर अति कोप कर सब हाथों से धनुष बाण ले प्रभु के सन्मुख आ ललकारा और यह बोला :—

चौ० तुम तें युद्ध कियो मैं भारी। तौ हूँ साध न पुजी हमारी॥

जब यह कह कर लगा सब हाथों से बाण चलाने, तब श्री-कृष्णचन्द्र जी ने सुदर्शन चक्र को छोड़ उसके चार हाथ रख सब हाथ काट डाले, ऐसे कि जैसे कोई बात के कहते वृक्ष के गुह छाँट डाले। हाथ के कटते ही बाणासुर शिथिल हो गिरा घावों से लोहू की नदी बह निकली। तिस में भुजायें मगर मच्छ सी जनाती थीं, कटे हुए हाथियों के मस्तक घड़ियाल से डूबते जाते थे, बीच बीच रथ बेड़े नवाड़े से बहे जाते थे। और

जिधर तिधर रणभूमि में श्वान स्यार गिद्ध आदि पशु पक्षी लोथैं खैंच खैंच आपस में लड़ लड़ झगड़ झगड़ फाड़ फाड़ खाते थे। पुनि कौवे शिरों से आँखें निकाल निकाल ले ले उड़ जाते थे। श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! रणभूमि की यही गति देख बाणासुर अति उदास हो पछताने लगा। निदान निर्बल हो सदाशिव जी के निकट गया तब,

चौ० कहत रुद्र मन माहिं बिचार। अब हरि की कीजै मनुहारि॥

इतना कह श्रीमहादेव जी बाणासुर को साथ ले वेद पाठ करते वहाँ आये कि जहाँ रणभूमि में श्रीकृष्णचन्द्र खड़े थे; बाणासुर को पाँवों पर डाल शिवजी हाथ जोड़ बोले कि, हे शरणागत वत्सल! अब यह बाणासुर आपकी शरण आया। इस पर कृपा दृष्टि कीजै और इसका अपराध मन में न लीजै। तुम तो बार बार अवतार लेते हो भूमि का भार उतारने को और दुष्ट हनन और संसार के तारण को, तुम हौ प्रभु अलख अभेद अनन्त, भक्तों के हेतु संसार में आय प्रगटते हौ भगवन्त; नहीं तो सदा रहते हो बिराट स्वरूप तिसका यह है रूप; स्वर्ग शिर, नाभि आकाश, पृथ्वी पाँव, समुद्र पेट, इन्द्र भुजा, पर्वत, नख, बादल केश, रोम वृक्ष, लोचन शशि और भानु, ब्रह्मामन, रुद्र, अहंकार, पवन श्वास, पलक लगना रात दिन, गर्जन शब्द

चौ० ऐसे रूप सदा अनुसरौ। काहू पै नहिं जानो परौ॥

और यह संसार दुःख का समुद्र है, इसमें चिन्ता और मोह रूपी जल भरा है। प्रभु बिन तुम्हारे नाम की नाव के सहारे कोई इस महा कठिन समुद्र के पार नहीं जा सकता। और यों तो बहुतेरे डूबते उछलते हैं। जो नर देह पाकर तुम्हारा भजन स्मरण और ध्यान न करेगा जाप, सेा भूलेगा धर्म, और बढ़ावैगा पाप।

जिसने संसार में आय तुम्हारा नाम न लिया, तिसने अमृत छोड़ विष पिया। जिसके हृदय में तुम बसो आय, उसी की भुक्ति मुक्ति मिली गुण गाय। इतना कह पुनि श्रीमहादेव जी बोले कि, हे कृपासिन्धु! दीनबन्धु! तुम्हारी महिमा अपरम्पार है। किसे इतनी सामर्थ्य है जो उसे बखाने और तुम्हारे चरित्रों को जाने। अब मुझ पर कृपा कर इस बाणासुर का अपराध क्षमा कीजै और इसे अपनी भक्ति दीजै यह भी तुम्हारी भक्ति का अधिकारी है, क्योंकि प्रह्लाद का बंश अंश है। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि शिव जी! हम तुम में कुछ भेद नहीं और जो भेद समझेगा सो महा नरक में पड़ेगा और मुझे कभी न पावेगा। जिसने तुमको ध्याया तिसने अन्त समय मुझे पाया। इसने निष्कपट तुम्हारा नाम लिया, तिसी से मैंने इसे चतुर्भुज किया। जिसे तुमने वर दिया और दोगे तिसका निर्वाह मैंने किया और करूँगा। महाराज! इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही सदाशिव जी दण्डवत् कर विदा हो अपनी सेना ले कैलाश को गये और श्रीकृष्णचन्द्र वहाँ हीं खड़े रहे, तब बाणासुर हाथ जोड़ शिर नाय बिनती कर बोला कि, दीनानाथ! जैसे आपने कृपा कर मुझे तारा तैसे अब चल के दास का घर पवित्र कीजै और अनिरुद्ध जी और ऊषा को अपने साथ लीजै। इस बात के सुनते ही श्रीविहारी भक्त हितकारी प्रद्युम्न जी को साथ ले बाणासुर के धाम पधारे। महाराज! उस काल बाणासुर अति प्रसन्न हो प्रभु को बड़ी आवभक्ति के पाटम्बर के पाँवड़े डालता लिवाय ले गया, आगे:—

चौ० चरण धोय चरणोदक लियो। अचमन कर माथे पर दियो॥

पुनि कहने लगा कि जो चरणोदक सब को दुर्लभ है सो मैंने हरि की कृपा से पाया, जन्म जन्म का पाप गवाँया; यही

चरणोदक त्रिभुवन को पवित्र करता है, इसी का नाम गङ्गा है। इसे ब्रह्मा ने कमण्डलु में भरा, शिव जी ने शीश परा धरा। पुनि सुर मुनि ऋषि ने माना और भगीरथ ने तीनों देवताओं की तपस्या कर संसार में आना। तब से इसका नाम भागीरथी हुआ। यह पाप बल हरणी पवित्र करणी साधु सन्त को सुखदेनी बैकुण्ठ की निशेनी है। और जेा इसमें न्हाया, उसने जन्म जन्म का पाप गवाँया। जिसने गङ्गा जल पिया तिसने निस्सन्देह परम-पद लिया; जिनने भागीरथी का दर्शन किया तिसने सारे संसार को जीत लिया। महाराज! इतना कह बाणासुर अनिरुद्ध जी और ऊषा को ले आय प्रभु के सन्मुख हाथ जेाड़ बेाला :—

चौ० क्षमिये देाष भावई। यह मैं ऊषा दासी दई॥

येां कह वेद की विधि से बाणासुर ने कन्यादान किया और तिसके यौतुक में बहुत कुछ दिया, येां जिसका वारापार नहीं। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! ब्याह के होते ही श्रीकृष्णचन्द्र बाणासुर को आशा भरोसा दे राजगद्दी पर बैठाय पोते बहू को साथ ले बिदा हेा धौंसा बजाय सब यदुबंशियों समेत वहाँ से द्वारकापुरी को पधारे। इनके आने का समाचार पाय सब द्वारका वासी नगर के बाहर जाय प्रभु को गाजे बाजे से लिवाय गये। उस काल पुरवासी हाट बाट चौहट्टों चौतरों कोठों से मंगली गीत गाय मंगलाचार करते थे और राजमन्दिर में श्रीरुक्मणी आदि सब सुन्दरी बधाये गाय रीति भाँति करती थीं और देवता अपने अपने बिमानों पर बैठे अधर से फूल बर्षाय बर्षाय जय जय करते थे और घर बाहर सारे नगर में आनन्द हेा रहा था कि उसी समय बलराम सुखधाम और श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द सब यदुबंशियों को बिदा दे अनिरुद्ध ऊषा को साथ ले राजमन्दिर में जा बिराजे।

चौ० आनी ऊषा गेह मँझारी। हर्षहिं देखि कृष्ण की नारी॥
देहिं अशीश सासु उर लावैं। निरखि हर्षि भूषण पहरावैं॥

६५—राजा नृग-मोक्ष

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! इक्ष्वाकुवंशी राजा नृग बड़ा ज्ञानी दानी धर्मात्मा साहसी था। उसने अनगिनत गोदान किये जो गंगा की बालू के कण भादों के मेह की बूँदें और आकाश के तारे गिने जायँ तो राजा नृग के दान की गायें भी गिनी जायँ। ऐसा जो ज्ञानी महा दानी सो थोड़े अधर्म से गिरगिट हो अन्धे कुएँ में रहा तिसे श्रीकृष्णचन्द्र जी ने मोक्ष कर दिया। इतनी कथा सुन श्रीशुकदेव जी से राजा परीक्षित ने पूँछा कि महाराज! ऐसा धर्मात्मा दानी राजा किस पाप से गिरगिट हो अन्धे कुएँ में रहा और श्रीकृष्ण जी ने कैसे उसे तारा? यह कथा तुम मुझे समझा कर कहो जो मेरे मन का सन्देह जाय। श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! आप चित्त दे मन लगाय सुनिये मैं ज्यों की त्यों सब कथा कह सुनाता हूँ कि राजा नृग तो नित्य प्रति गोदान किया करते ही थे पर एक दिन प्रात ही न्हाय सन्ध्या पूजा करके सहस्र धौली, घूमरी, काली, पीली, भूरी, कबरी, गौ मँगाय रूपे के खुर सोने की सींग पीठ ताँबे की समेत पाटम्बर उढ़ाय संकल्पी और उसके ऊपर बहुत सा अन्न धन ब्राह्मणों को दिया वे ले अपने घर गये। दूसरे दिन फिर राजा उसी भाँति गोदान करने लगा तो एक गाय पहिले दिन की संकल्पी अनजाने आन मिली सो भी राजा ने उन गायों के साथ दान कर दी, ब्राह्मण ले अपने घर को चला। आगे दूसरे ब्राह्मण ने अपनी गौ पहिचान बाट में रोकी और कहा कि यह गाय मेरी है, मुझे कल राजा के यहाँ

से मिली है, भाई ! तू क्यों इसे लिये जाता है ? वह ब्राह्मण बोला—इसे तो मैं अभी राजा के यहाँ से लिये आता हूँ तेरी कहाँ से हुई, महाराज ! वे दोनों ब्राह्मण इसी भाँति मेरी मेरी कर झगड़ने लगे। निदान झगड़ते झगड़ते वे दोनों राजा के पास गये, राजा ने दोनों की बात सुन हाथ जोड़ अति बिनती कर कहा कि :—

चौ० कोऊ लाख रुपैया लेऊ। गैया इक काहू को देऊ॥

इतनी बात के सुनते ही दोनों झगड़ालू ब्राह्मण अति क्रोध कर बोले कि महाराज ! जो गाय हमने स्वस्ति बोल के ली सो करोड़ रुपये पाने से भी हम न देंगे। वह तो हमारे प्राण के साथ है। महाराज ! पुनि राजा ने उन ब्राह्मणों के पाँवों पड़ पड़ अनेक अनेक भाँति फुसलाय समझाया पर तामसी ब्राह्मणों ने राजा का कहना न माना। निदान महा क्रोध कर इतना कह दोनों ब्राह्मण गाय छोड़ चले गये कि महाराज। जो गाय आप ने संकल्प कर हमे दी और हमने स्वस्ति बोल हाथ पसार ली वह रुपये ले नहीं दी जाती। अच्छा जो तुम्हारे यहाँ रही तो कुछ चिन्ता नहीं। महाराज ! ब्राह्मणों के जाते ही राजा नृग पहिले तो अति उदास हो मन ही मन कहने लगा कि यह अधर्म अन जाने मुझे से हुआ सो कैसे छुटेगा और पीछे अति दान पुण्य करने लगा। कितने एक दिन बीते राजा नृग कालवश हो मर गया। उसे यम के गण धर्मराज के पास ले गये। धर्मराज राजा को देखते ही सिंहासन से उठ खड़ा हुआ पुनि आध भक्ति कर आसन पर बैठाय अति हित कर बोला कि, महाराज ! तुम्हारा पुण्य है बहुत, और पाप है थोड़ा कहो पहिले क्या भुगतोगे।

चौ० सुनि नृग कहत जोर कै हाथ। मेरो धर्म बड़ो जिन नाथ॥
पहिले हौ भुगतो गो पाप। तन धरि कै सहिहौं सन्ताप॥

इतनी बात के सुनते ही धर्म राज ने राजा नृग से कहा कि, महाराज ! तुमने अनजाने जो दान की हुई गाय फिर दान की, उसी पाप से आपको गिरगिट हो बन बीच गोमती तीर अन्धे कुएँ में रहना होगा, जब द्वापर के अन्त में श्रीकृष्ण-चन्द्र अवतार लेंगे तब तुम्हें वे मोक्ष देंगे। महाराज ! इतना कह धर्मराज चुप रहा और राजा नृग उसी समय गिरगिट हो अन्धे कुएँ में जा गिरा, और जीव भक्षण कर कर वहाँ रहने लगा। आगे कई युग बीते द्वापर के अन्त में श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अवतार लिया और व्रजलीला कर जब द्वारका को गये और उनके बेटे पोते भये, तब एक दिन कितने एक श्रीकृष्ण जी के बेटे पोते मिल अहेर को गये और बन में अहेर करते करते प्यासे भये। दैवी से वे बन में ढूँढ़ते ढूँढ़ते उसी अन्धे कुएँ पर गये, जहाँ राजा नृग गिरगिट का जन्म ले रहा था। कुएँ में झाँकते ही एक ने पुकार के सब से कहा कि, अरे भाई ! देखो इस कुएँ में कितना बड़ा एक गिरगिट है। इतनी बात के सुनते ही सब दौड़ आये और कुएँ के पनघट पर खड़े हो लगे पगड़ी फेंटे मिलाय मिलाय लटकाय लटकाय उसे काढ़ने और आपस में यों कहने कि, भाई ! इसे कुएँ से बिन निकाले हम यहाँ से न जायँगे। महाराज ! जब वह पगड़ी फेंट की रस्सी से न निकला तब उन्होंने गाँव से सन सूत मूँज चाम की मोटी मोटी भारी भारी बरतें मँगवाईं और कुएँ में फाँसी, गिरगिट को बाँध बलकर खैंचने लगे पर वह वहाँ से टसका भी नहीं। तब किसी ने द्वारका में जाय श्रीकृष्ण जी से कहा कि, महाराज ! बन में अन्धे कुएँ के भीतर एक बड़ा मोटा भारी गिरगिट है उसे अब सब कुथँर काढ़ हारे, पर वह नहीं निकलता। इतनी बात के सुनते ही हरि उठि धाये और चले चले वहाँ आये जहाँ सब लड़के गिरगिट को

निकाल रहे थे। प्रभु को देखते ही सब लड़के बोले कि, पिता! देखो यह कितना बड़ा गिरगिट है, हम बड़ी देर से इसे निकाल रहे हैं यह निकलता नहीं। महाराज! इस बचन को सुन ज्यों श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कुएँ में उतर उसके शरीर में चरण लगाया त्यों वह देह छोड़ अति सुन्दर पुरुष हुआ।

चौ० भूपति रूप रह्यो गहि पाय। हाथ जोड़ बिनवै शिर नाय॥

कृपासिन्धु! आपने बड़ी कृपा की जो इस महा विपत्ति में आय सुधि ली। श्रीशुकदेव जी बोले कि राजा! जब यह मनुष्य-रूप हो हरि से इस ढब की बातें कहने लगा तब यादवों के बालक और हरि के बेटे पोते आश्चर्य कर श्रीकृष्णचन्द्र जी से पूँछने लगे कि, महाराज! यह कौन है और किस पाप से गिरगिट हो यहाँ आ रहा था? सो कृपा कर कहो तो हमारे मन का सन्देह जाय। उस काल प्रभु ने आप कुछ न कहा उस राजा से बोले :—

चौ० अपनो भेद कहो समुझाय। जैसे सबै सुनैं मन लाय॥
को है आप कहाँ ते आये। कौन पाप यह काया पाये॥
सुनि कै नृप कर जोरे हाथ। तुम सब जानत हौ यदुनाथ॥

तिस पर आप पूँछते हौ तौ मैं कहता हूँ। मेरा, नाम है राजा नृग मैंने अनगिनत गौवें ब्राह्मणों को तुम्हारे निमित्त दीं। एक दिन की बात है कि मैंने कितनी एक गाय संकल्प कर ब्राह्मणों को दीं, दूसरे दिन उन गायों में से एक गाय फिर आई, सो मैंने और गायों के साथ अनजाने दूसरे द्विज को दान करदी। ज्यों लेकर निकला त्यों पहिले ब्राह्मण ने अपनी गौ पहिचान इससे कहा यह गाय मेरी है मुझे कल राजा के यहाँ से मिली है। तू इसे क्यों लिये जाता है? वह बोला, मैं अभी राजा के यहाँ से

लिये चला आता हूँ तेरी कैसे हुई ? महाराज ! वे दोनों विप्र इसी बात पर झगड़ते झगड़ते मेरे पास आये मैंने उन्हें समझाया और कहा कि एक गाय के पलटे मुझ से लाख गौ लो और तुममें से कोई यह गाय छोड़ दो। महाराज ! मेरा कहा हठ कर उन दोनों ने न माना। निदान गौ छोड़ क्रोध कर वे दोनों चले गये। मैं अछताय पछताय मन मार बैठ रहा। अन्त समय यम के दूत मुझे धर्मराज के पास ले गये, धर्मराज ने मुझ से पूँछा कि राजा ! तेरा धर्म है बहुत और पाप है थोड़ा ; पहिले क्या भुगतेगा ? मैंने कहा-पाप। इस बात के सुनते ही, महाराज ! धर्मराज बोले कि, राजा ! तैंने ब्राह्मण को दी दुई गाय फिर दान की इस अधर्म से तू गिरगिट हो पृथ्वी पर जाय गोमती तीर बन के बीच अन्धे कुएँ में रह ; जब द्वापर युग के अन्त में श्रीकृष्णचन्द्र अवतार ले तेरे पास जायँगे तब तेरा उद्धार होगा। महाराज ! तभी से मैं सरट स्वरूप इस अन्धे कुएँ में पड़ा आपके चरण कमल का ध्यान करता था अब आय आपने मुझे महा कष्ट से उबारा और भवसागर से पार उतारा। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज ! इतना कह राजा नृग तो विदा हो बिमान में बैठ बैकुण्ठ को गया और श्रीकृष्णचन्द्र जी सब बाल गोपालों को समझाय कर कहने लगे :—

चौपाई

विप्र दोष जिन कोऊ करौ। मत कोउ अंश विप्र को हरो॥
मन संकल्प किया जिन राख्यो। सत्य बचन विप्रन सों भाष्यो॥
विप्रन दियो फेरि जो लेई। ताको दण्ड इतो यम देई॥
विप्रन के सेवक ह्वै रहियो। सब अपराध विप्र को सहियो॥
विप्रहि माने सो मोहिं माने। विप्रन मोहिं भिन्न नहिं जाने॥

जेा मुझ में और ब्राह्मण में भेद जानेगा सेा नरक में पड़ेगा और विप्र को मानेगा वह मुझे पावेगा और निस्सन्देह परमधाम को जावेगा। महाराज! यह बात कह श्रीकृष्ण जी सब को वहाँ से ले द्वारकापुरी को पधारे।

६६—बलभद्र-चरित्र

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! एक समय श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द और बलराम सुखधाम मणिमय मन्दिर में बैठे थे कि बलदेव जी ने प्रभु से कहा—भाई! जब हमें वृन्दाबन में कंस ने बुला भेजा था और हम मथुरा को चले थे तब गेापियों और नन्द यशेादा को हमने तुमने यह बचन दिया था कि हम शीघ्र ही आय मिलेंगे, सेा वहाँ न जाय द्वारका में आय बसे वे हमारी सुरत करते होंगे। जेा आप आज्ञा करें तेा हम जन्म भूमि देख आवें और उनका समाधान करि आवें, प्रभु बेाले कि अच्छा, इतनी बात के सुनते ही बलराम जी सब से बिदा हेा हल मूशल ले रथ पर चढ़ सिधारे।

महाराज! बलराम जी जिस पुरी नगर नाँव में जाते थे तहाँ के राजा आगे बढ़ अति शिष्टाचार कर इन्हें ले जाते थे। और यह एक एक का समाधान करते जाते थे, कितने एक दिन में चले चले बलराम जी अवन्तिकापुरी पहुँचे।

चौ० विद्या गुरु को किये प्रणाम। दिन दश तहाँ रहे बलराम॥

आगे गुरू से बिदा हेा बलदेव जी चले चले गेाकुल में पधारे तेा देखते क्या हैं कि बन में चारों ओर गायें मुँह बाये बिन तृण खाये श्रीकृष्णचन्द्र को सुरत किये बाँसुरी की तान में मन दिये रांभती होंकती फिरती हैं। जिनके पीछे पीछे ग्वालबाल हरि यश

गाते प्रेम रंगराते चले जाते हैं और जिधर तिधर नगरनिवासी लोग प्रभु के चरित्र और लीला बखान रहे हैं। महाराज! जन्म-भूमि में जाय व्रजवासियों और गायों की यह अवस्था देखि बलराम जी करुणा कर नयनों में नीर भर लाये। आगे रथ की ध्वजा पताका देख श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी का आना जान सब ग्वालबाल दौड़ आये, प्रभु उनके आते ही रथ से उतर लगे एक एक से गले लग लग अति हित से क्षेम कुशल पूँछने। इस बीच किसी ने जाय नन्द यशोदा से कहा कि बलदेव जी आये यह समाचार पाते ही नन्द यशोदा और बड़े बड़े गोप ग्वाल उठ धाये। उन्हें दूर से आते देख बलराम जी दौड़ कर नन्दराय के पांव पर जाय गिरे, तब नन्द जी ने अति आनन्द कर नयनों में जल भर बड़े प्यार से बलराम जी को उठाय कण्ठ से लगाय और वियोग दुःख गँवाया, पुनि प्रभु ने,

चौपाई

गहे चरण यशुमति के जाय। उन हित कर उर लियेा लगाय॥
भुज भरि भेंट कण्ठ गहि रही। लोचन ते जल सरिता बही॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा से कहा कि, महाराज! ऐसे मिलजुल नन्दराय जी बलराम जी को घर में ले जाय कुशल क्षेम पूछने लगे कि, कहो उग्रसेन बसुदेव आदि सब यादव और श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द आनन्द से हैं और कभी हमारी सुरत करते हैं? बलराम जी बोले कि आपकी कृपा से सब आनन्द मङ्गल से हैं सदा सर्वदा आपका गुण गाते हैं। इतना बचन सुन नन्दराय चुप रहे, पुनि यशोदा रानी श्रीकृष्ण जी की सुरत कर लोचन में नीर भर अति व्याकुल हो बोलीं कि बलदेव जी हमारे प्यारे नयनों के तारे श्रीकृष्ण जी अच्छे हैं?

बलराम जी ने कहा—बहुत अच्छे हैं, पुनि नन्दरानी कहने लगीं कि, बलदेव ! जब से हरि यहां से सिधारे तब से हमारी आँख के आगे अँधेरा हो रहा है। हम आठ पहर उन्हीं का ध्यान किये रहती हैं और वे हमारी सुरत भुलाय द्वारका में जाय छाय रहे और देखो बहिन देवकी रोहिणी भी हमारी प्रीति छोड़ बैठीं।

चौ० मथुरा ते गोकुल ढिग जान्यों। बसी दूर तबहीं कुछ मान्यो॥
भेंट न मिलन आवते हरी। फिर न मिले ऐसी उन करी॥

महाराज ! इतना कह जब यशोदा जी अति व्याकुल हो रोने लगीं। तब बलराम जी ने बहुत समझाय बुझाय आशा भरोसा दे उनको ढाढ़स बँधाया। पुनि आप भोजन कर पान खाय घर से बाहर निकले तो क्या देखते हैं कि सब ब्रज युवती तन क्षीण मन मलीन, छूटे केश, मैले भेष, जी हारे, घर बार की सुरत बिसारे, प्रेम रंगराती, यौवन की माती, हरि गुण गाती, बिरह में व्याकुल जिधर तिधर मत्तवत् चली जाती हैं। महाराज ! बलराम जी को देखते ही अति प्रसन्न हो सब दौड़ आईं और दण्डवत् कर हाथ जोड़ चारों ओर खड़ी हो लगी पूँछने और कहने कि, कहो बलराम सुखधाम ! अब कहाँ बिराजते हैं हमारे प्राण सुन्दर श्याम। कभी हमारी सुरत करते हैं बिहारी, कै राजपाट पाय पिछली प्रीति सब बिसारी। जब से यहां से गये हैं तब से एक बार उद्धव के हाथ योग का संदेशा कह पठाया था फिर किसी की सुधि न ली, अब जाय समुद्र माहिं बसे तो काहे को किसी की सुधि लेंगे। इतनी बात के सुनते ही एक गोपी बोल उठी कि, सखी ! हरि की प्रीति का कौन परेखा, उनका तो देखा सब से यही लेखा।

चौ० वे काहू के नाहिन ईठ। मात पिता को जिन दइ पीठ॥
राधा बिन रहते नहिं घरी। सोऊ है बरसाने परी॥

पुनि हम तुमने घर बार छोड़ कुलकान लोक लाज तज, सुत पति त्याग, हरि से स्नेह लगाय क्या फल पाया ? निदान स्नेह की नाव पर चढ़ाय बिरह समुद्र माँझ छोड़ गये। अब सुनती हैं कि द्वारका में जाय प्रभु ने बहुत ब्याह किये और सोलह सहस्र एक सौ राजकन्या जो भौमासुर ने घेर रक्खी थीं तिन्हें भी श्रीकृष्ण ने लाय ब्याहा, अब उनसे बेटे पोते नाती भये उन्हें छोड़ यहाँ क्यों आवेंगे। यह बात सुन एक और गोपी बोली कि, सखी ! तुम हरि की बातों का कुछ पछितावा ही मत करो क्योंकि उनके तो गुण सब उद्धव जी ने आप ही सुनाये थे। इतना कह पुनि वह बोली कि, आली मेरी बात मानो तो अब,

चौ० हलधर जू के परसो पाँय। रहि हैं इनहीं के गुणगाय॥
ये हैं गौर श्याम नहिं गात। करि हैं नहीं कपट की बात॥
सुनि संकर्षण उत्तर दियेा। तुम्हरे हेतु गमन हम कियेा॥
आवन हम तुमसों कहि गये। तातें कृष्ण पठय व्रज दिये॥
रहि द्वै मास करेंगे रास। पुजवेंगे सब तुम्हरी आस॥

महाराज बलराम जी ने इतना कह सब व्रजयुवतियों को आज्ञा दी कि आज मधुमास की रात है तुम शृङ्गार कर बन में आओ हम तुम्हारे साथ में रास करेंगे; यह कह बलराम जी साँझ समय बन को सिधारे, तिनके पीछे सब व्रजयुवती भी सुथरे वस्त्र आभूषण पहिन, नख शिख से शृङ्गार कर, बलदेव जी के पास पहुँचीं।

चौपाई

ठाढ़ी भईं सबै शिर नाय। हलधर छबि बरणी नहिं जाय॥
कनक बरण नीलाम्बर धरे। शशि मुख कमल नयन मन हरे॥
कुंडल एक श्रवण छबि छाजै। मनौं भानु शशि संग बिराजै॥
एक श्रवण हरि यश रसपान। दूजो कुंडल धरत न कान॥

अंग अंग प्रति भूषण घने। तिनकी शोभा कहत न बने॥
यों कह पांयन परीं सुन्दरी। लीला रास करहु रस भरी॥

महाराज! इतनी बात के सुनते ही बलराम जी ने हूँ किया, हूँ के करते ही रास की सब वस्तु आय उपस्थित हुई। तब तो सब गोपियां शोच सङ्कोच तज अनुराग कर बीणा, मृदङ्ग, करताल, उपंग, मुरली आदिक सब यन्त्र ले ले लगी बजाने गाने और थेई थेई कर नाच नाच भाव बताय बताय प्रभु को रिझाने। उनका बजाना गाना नाचना सुन देख मग्न हो बारुणी पान कर बलदेव जी भी सब के साथ मिल गाने नाचने और अनेक अनेक भाँति के कुतूहल कर कर सुख देने लगे। उस काल देवता गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, अपनी अपनी स्त्रियों समेत आय विमान पर बैठे प्रभु गुण गाय गाय अधर से फूल बर्षाते थे। चन्द्रमा तारामण्डल समेत रासमण्डली का सुख देख किरणों से अमृत बर्षाता था और पवन पानी भी थँम रहा था।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! इसी भाँति बलराम जी ने ब्रज में रह चैत्र वैशाख दो महीने रात्रि को तो ब्रजयुवतियों के साथ रास बिलास किया और दिन को हरि कथा सुनाय नन्द यशोदा को सुख दिया, एक दिन रात समय रास करते करते बलराम जी ने जा,

चौ० नदी तीर करके विश्राम। बोले तहाँ कोपि के राम॥
यमुना तू इतही बह आव। सहस धार कर मोहिं अन्हवाव॥
जो न मानि है कह्यो हमारो। खण्ड खण्ड जल होइ तिहारो॥

महाराज! जब बलराम जी की बात अभिमान कर यमुना ने सुनी अनसुनी की तब तो इन्होंने क्रोध कर उसे हल से खैंच ली और स्नान किया। उसी दिन से वहाँ यमुना अब तक टेढ़ी हैं।

आगे न्हाय श्रम मिटाय बलराम जी सब गोपियों को सुख दे साथ ले बन से चले नगर में आये तहाँ,

चौ० गोपी कहैं सुनो ब्रजनाथ। हमहूँ को ले चलिये साथ॥

यह बात सुन बलराम जी गोपियों को आशा भरोसा दे ढाढ़स बँधाय बिदा कर बिदा होके नन्द यशोदा के पास गये। पुनि उन्हें भी समझाय बुझाय धीर्य बँधाय कई दिन रह बिदा हो द्वारका को चले और कितने एक दिनों में जाय पहुँचे।

६७—नृप पौंड्रक मोक्ष

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! काशी पुरी में पौंड्रक नाम राजा सेा महाबली और बड़ा प्रतापी था, तिसने विष्णु का भेष किया और छलबल कर सब का मन हर लिया। सदा पीतबसन, वैजयन्तीमाल, मुक्तमाल, मणिमाल, पहिने रहै और शंख चक्र, गदा, पद्म, लिये दो हाथ काठ के किये एक घोड़े पर काठ ही का गरुड़ धरे उस पर चढ़ा फिरे, वह बासुदेव पौंड्रक कहावे और सब से आप को पुजावे। जेा राजा उसकी आज्ञा न माने उस पर चढ़ जाय फिर मार धाड़ कर अपने बश में रक्खे। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि राजा उसका यह आचरण देख सुन देश देश नगर नगर गाँव गाँव घर घर में लेाग चर्चा करने लगे कि एक बासुदेव तेा ब्रजभूमि के बीच यदुकुल में प्रगट हुए थे, सेा द्वारकापुरी में बिराजते हैं, दूसरा अब काशी में हुआ है। दोनों में हम किसे सच्चा जानें और मानें, महाराज! देश देश में यह चर्चा हेा रही थी कि, कुछ सन्धान पाय बासुदेव पौंड्रक एक दिन अपनी सभा में बोला :—

चौ० को है कृष्ण द्वारका रहै। ताको बासुदेव जग कहै॥

भक्त हेतु भू हौं अवतर्‌यो। मेरेा भेष तहाँ तिन धर्‌यो॥

इतनी बात कह एक दूत को बुलाय उसने ऊँच नीच की बातें सब समझाय बुझाय इतना कह द्वारका में श्रीकृष्णचन्द्र जी के पास भेज दिया कि, कै तो मेरा भेष बनाये फिरता है सो छोड़ दे नहीं तो लड़ने का विचार कर। आज्ञा पाते ही दूत बिदा हो काशी से चला चला द्वारका पुरी पहुँचा और श्रीकृष्णचन्द्र जी की सभा में जा उपस्थित हुआ। प्रभु ने इससे पूँछा कि, तू कौन है? वह बोला मैं काशी पुरी के बासुदेव पौंड्रक का दूत हूँ स्वामी का पठाया कुछ सन्देशा कहने आपके पास आया हूँ, कहो तो कहूँ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि अच्छा कह। प्रभु के मुख से यह वचन निकलते ही दूत खड़ा हो हाथ जोड़ कहने लगा कि महाराज! बासुदेव पौंड्रक ने कहा है कि त्रिभुवन पति जगत-कर्त्ता तो मैं हूँ, तू कौन है? जो मेरा भेष बनाये जरासन्ध के डर से भाग द्वारका में जाय रहा, तू मेरा बाना छोड़ शीघ्र आय मेरी शरण गह; नहीं तो तेरे सब यदुवंशियों समेत तुम्हें आय मारूँगा और भूमि का भार उतार अपने भक्तों को पालूँगा। मैं ही हूँ अलख अगोचर निराकार, मेरा ही जप, तप, यज्ञ, दान, करते हैं सुर मुनि ऋषि वर बार बार मैं ही ब्रह्मा हो बनाता हूँ, विष्णु हो पालता हूँ, शिव हो संहारता हूँ। मैंने ही मच्छरूप हो वेद डूबते निकाले, कच्छप हो गिरि धारण किया, बाराह बन भूमि को रख लिया, नृसिंह अवतार ले हिरण्यकश्यपु को बध किया, बामन अवतार ले बलि को छला, रामावतार ले महादुष्ट रावण को मारा। मेरा यही काम है कि जब जब मेरे भक्तों को असुर आय सताते हैं तब तब मैं अवतार ले भूमि का भार उतारता हूँ। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! बासुदेव पौंड्रक का दूत तो इस ढब की बातें करता था और श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द रत्न सिंहासन पर बैठे यादवों

की सभा में हँस हँस कर सुनते थे कि इस बीच कोई यदुवंशी बोल उठा :—

चौ० तोहिं कहा यम आयेा लैन। भाषत जेा तू ऐसे बैन॥
मारें कहा तोहिं हम नीच। आयेा है कपटी के बीच॥

जेा तू बसीठ न होता तेा बिन मारे न छोड़ते, दूत को मारना उचित नहीं महाराज! जब यदुवंशियों ने यह बात कही, तब श्रीकृष्ण जी ने उस दूत को निकट बुलाय समझाय बुझाय के कहा कि तू जाय अपने बासुदेव से कह कि कृष्ण ने कहा है जा मैं तेरा बाना छोड़ शरण आता हूँ सावधान हो रहे। इतनी बात के सुनते ही दूत दण्डवत् कर बिदा हुआ और श्रीकृष्णचन्द्र जी भी अपनी सेना ले काशीपुरी को सिधारे। दूत ने जाय बासुदेव पौंड्रक से कहा कि, महाराज! मैंने द्वारका में जाय आपका सन्देशा कहा श्रीकृष्ण सुनकर बोले कि तू अपने स्वामी से जाय कह कि सावधान हो रहें; मैं उसका बाना छोड़ शरण लेने आता हूँ। महाराज! बसीठ यह कहता ही था कि किसी ने आय कहा कि, महाराज! आप निश्चिन्त क्या बैठे हैं, श्रीकृष्ण अपनी सेना ले चढ़ आया। इतनी बात के सुनते ही बासुदेव पौंड्रक उसी भेष से अपना सब कटक ले चढ़ धाया और चला चला श्रीकृष्णचन्द्र जी के सन्मुख आया, तिसके साथ एक और भी काशी का राजा चढ़ दौड़ा दोनों ओर दल तुल कर खड़े हुए जुझाऊ बाजा बजने लगे, शूरबीर रावत लगे लड़ने और कायर खेत छोड़ छोड़ अपना जी ले ले भागने। उस काल युद्ध करता कालबश हो बासुदेव पौंड्रक उसी भाँति श्रीकृष्णचन्द्र जी के सन्मुख हो ललकारा। उसे विष्णु भेष देख सब यदुवंशियों ने श्रीकृष्णचन्द्र जी से पूँछा कि महाराज! इसे

इस भेष से कैसे मारेंगे ? प्रभु ने कहा—कपटी के मारने का कुछ दोष नहीं।

इतना कह हरि ने सुनर्शन चक्र को आज्ञा दी उसने जाते ही जो दो भुजा काठ की थीं सो उखाड़ लीं। उसके साथ गरुड़ भी टूटा और तुरङ्ग भागा जब बासुदेव पौंड्रक नीचे गिरा, तब सुदर्शन ने उसका शिर काट फेंका।

चौ० कटत शीश नृप पौंड्रक तर्‌यो। शीश जाय काशी में पर्‌यो॥
जहाँ हतो ताको रनवास। देखत शीश सुन्दरी तासु॥
रोवें यों कहि खैंचे बार। यह गति कहा भई कर्त्तार॥
तुम तो अजर अमर हे भये। कैसे प्राण पलक में गये॥

महाराज ! रानियों का रोना सुन सुदक्षिण नाम उसका एक बेटा था सो वहाँ आय बाप का शिर कटा देख अति क्रोध कर कहने लगा कि जिसने मेरे पिता को मारा है उससे मैं बिन पलटा लिये न रहूँगा इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज ! बासुदेव पौंड्रक को मार श्रीकृष्णचन्द्र जी तो अपना सब कटक ले द्वारका को सिधारे। और उसका बेटा अपने बाप का बैर लेने को महादेव जी की अति कठिन तपस्या करने लगा। इसमें कितने एक दिन पीछे एक दिन प्रसन्न हो महादेव भोलानाथ ने आय कहा कि बर माँग। वह बोला कि महाराज ! मुझे यही बर दीजे कि श्रीकृष्ण से मैं अपने पिता का बैर लूँ। शिव जी बोले—अच्छा जो तू बर लिया चाहता है तो एक काम कर। वह बोला क्या ? उलटे वेद मंत्रों से यज्ञ कर इसमें एक राक्षसी अग्नि से निकलेगी उससे जो तू कहेगा सो वह करेगी। इतना बचन शिव जी के मुख से सुन महाराज ! वह जाय ब्राह्मणों को बुलवाय बेदी रच तिल यव घी चीनी आदि सब होम की सामा ले साकल्य बनाय लगा उलटे वेद मंत्र पढ़ पढ़ होम करने।

निदान यज्ञ करते करते अग्निकुण्ड से कृत्या नाम एक राक्षसी निकली, सेा श्रीकृष्ण जी के पीछे पीछे नगर देश गाँव जलाती जलाती द्वारकापुरी में पहुँची और लगी पुरी को जलाने। नगर को जलता देख यदुवंशी भय खाय श्रीकृष्णचन्द्र जी के पास जा पुकारे कि, महाराज! इस आग से कैसे बचेंगे? यह तेा सारे नगर को जलाती चली आती है। प्रभु बोले—तुम किसी बात की चिन्ता मत करेा यह कृत्या नाम राक्षसी काशी से आई है, मैं भी इसका उपाय करता हूँ। महाराज! इतना कह श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सुदर्शनचक्र को आज्ञा दी कि इसे मार भगाय और इसी समय काशी को जलाय आवेा। हरि की आज्ञा पाते ही सुदर्शनचक्र ने कृत्या को मार भगाया और बात कहते ही काशी को जलाया।

चौ० परजा भागी फिरै दुखारी। गारी देहिं सुदर्शहि भारी॥
फिरयो चक्र शिवपुरी जलाय। सेाई कही कृष्ण सों आय॥

६८—बलभद्र चरित्र, द्विविद कपि बध

श्रीशुकदेव मुनि जी बोले कि महाराज! जैसे बलराम सुखधाम रूपनिधान ने द्विविद कपि को मारा तैसे ही मैं कथा कहता हूँ तुम चित्त दे सुनेा। एक दिन द्विविद जेा सुग्रीव का मंत्री और मयन्द कपि का भाई भौमासुर का सखा था कहने लगा कि एक शूल मेरे मन में है सेा जब तब खटकता है। यह बात सुन किसी ने उससे पूँछा कि, महाराज! सेा क्या? बोला—जिसने मेरे मित्र भौमासुर को मारा जिसे मारूँ तेा मेरे मन का दुःख जाय।

महाराज! इतना कह वह उसी समय अति क्रोध कर द्वारका-

दुःख देता, किसी को पानी बर्षाय बहाया, किसी को आग बर्षाय जलाया, किसी को पहाड़ से पटका, किसी पर पहाड़ दे पटका किसी को समुद्र में डुबाया, किसी को पकड़ बाँध गुफा में छिपाया, किसी का पेट फाड़ डाला, किसी पर वृक्ष उखाड़ मारा। इसी रीति से लोगों को सताता जाता था और जहाँ मुनि ऋषि देवताओं को बैठे पाता था तहाँ मल मूत्र रुधिर बर्षाता था। निदान इसी भाँति लोगों को दुःख देता और उपाधि करता जा द्वारकापुरी पहुँचा। और अल्प तनु धर श्रीकृष्णचन्द्र के मन्दिर पर जा बैठा उसको सब सुन्दरी देख मन्दिर के भीतर किवाड़ दे दे भाग कर जाय छिपों तब तो वह मनहीं मन यह विचार बलराम जी के समाचार पाय रैवतगिर पर गया कि,

चौ० पहले हलधर को बध करौं। पीछे प्राण कृष्ण के हरौं॥

जहाँ बलदेव जी स्त्रियों के साथ बिहार करते थे, महाराज! यह छिप कर वहाँ क्या देखता है कि बलराम मद पी सब स्त्रियों को साथ ले एक सरोवर बीच अनेक अनेक भाँति की लीला कर गाय गाय नहाय नहलाय रहे हैं। यह चरित्र देख द्विविद एक पेड़ पर चढ़ा और किलकारियाँ मार मार घुरक घुरक लगा डाल डाल कूद कूद फिर फिर चरित्र करने और जहाँ मदिरा का कलश भरा और सब के चीर धरे थे तिन पर मल करने। बन्दर को सब सुन्दरी देखते डर कर पुकारीं कि, महाराज! यह कपि कहाँ से आया जो हमें डराय डराय हमारे वस्त्रों पर मल मूत्र कर रहा है। इतनी बात के सुनते ही बलदेव जी ने सरोवर से निकल जो हँस के ढेला चलाया तो वह इनको मतवाला जान महाक्रोध कर किलकारी मार नीचे आया। आते ही उसने मदिरा का भरा घड़ा जो तीर पर धरा था सो लुढ़काय दिया और सारे चीर फाड़ लीर लीर कर डाले, तब तो क्रोध कर बलराम जी ने हल मूसल सँभाला

और वह भी पर्वत सम हो प्रभु के सोंहीं युद्ध करने आय उपस्थित हुआ, इधर से वे हल मूसल चलाते थे और उधर से वह पेड़ पर्वत।

चौ० महायुद्ध दोऊ मिल करें। नेक न कहूँ ठौर ते टरें॥

महाराज! ये तो दोनों बली अनेक अनेक प्रकार की घातें बातें कर निधड़क लड़ते थे पर देखने वालों के मारे भय के प्राण ही निकलते थे, निदान प्रभु ने सबको दुखित जान द्विविद को मार गिराया, उसके मरते ही सुर नर मुनि सब के जी को आनन्द हुआ और दुःख द्वन्द्व गया।

चौ० फूले देव पुष्प बर्षावैं। जय जय कर हलधरहिं सुनावैं॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने कहा कि महाराज! त्रेतायुग से वह बन्दर ही था तिसे बलदेव जी ने मार उद्धार किया आगे बलराम सुख धाम सबको सुख दे वहाँ से साथ ले द्वारकापुरी में आये और द्विविद के मारने का समाचार सारे यदुवंशियों को सुनाया।

६९—शाम्ब विवाह कथन

श्रीशुकदेव जी बोले कि राजा! अब दुर्योधन की बेटी लक्ष्मणा के विवाह की कथा कहता हूँ, कि जैसे शाम्ब हस्तिनापुर जाय उसे ब्याह लाये। महाराज! राजा दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा ब्याहने योग्य हुई, तब उसके पिता ने सब देश देश के नरेशों को पत्र लिख लिख बुलाया और स्वयम्बर किया। स्वयम्बर के समाचार पाय श्रीकृष्णचन्द्र का पुत्र जो जाम्बवती से था शाम्ब नाम वह भी वहाँ पहुँचा। वहाँ जाय शाम्ब क्या देखता है कि देश देश के नरेश बलवान् गुणवान् रूपवान महाजन बस्त्र सुथरे आभूषण रत्न जटित

पहिने अस्त्र शस्त्र बाँधे मौन साधे, स्वयम्बर के बीच पाँति पाँति खड़े हैं और उनके पीछे उसी भाँति सब कौरव भी। जहाँ तहाँ बाजा बाज रहे हैं भीतर मङ्गली लोग मंगलाचार कर रहे हैं, सब के बीच राजकुमारी, माता पिता की दुलारी, परम प्यारी, मन ही मन यों कहती हार लिये आँखों की सी पुतली फिरती है कि मैं किसे बरूँ। महाराज! जब वह शीलवान् रूपनिधान माला लिये लाज किये फिरती फिरती शाम्ब के सन्मुख आई, तब उन्होंने शोच सङ्कोच तज निर्भय उसे हाथ पकड़ रथ में बैठाय अपनी बाट ली। सब राजा खड़े मुँह देखते रह गये और कर्ण, द्रोण, शल्य, भूरिश्रवा, दुर्योधन आदि सारे कौरव भी उस समय कुछ न बोले, पुनि अति क्रोध कर आपस में कहने लगे कि देखो इसने क्या काम किया जो रस में आय अनरस किया। कर्ण बोला कि यदुवंशियों की सदा से यही टेव है कि जहाँ कहीं शुभ काज में जाते हैं तहाँ उपाधि ही करते हैं, शल्य ने कहा :—

चौ० जाति हीन अबहीं ये बढ़े। राज पाय माथे पर चढ़े॥

इतनी बात के सुनते ही सब कौरव महाकोप कर अपने अपने अस्त्र शस्त्र ले यों कह चढ़ दौड़े कि देखें यह कैसा बली है जो हमारे आगे से कन्या ले निकल जायगा और बीच बाट में शाम्ब को जा घेरा। आगे दोनों ओर से शस्त्र चलने लगे, निदान कितनी एक बेर के लड़ने में जब शाम्ब का सारथी मारा गया। और वह नीचे उतरा तब ये उसे घेर पकड़ कर बाँध लाये। सभा के बीचों बीच खड़ा कर उन्होंने उससे पूँछा कि अब तेरा पराक्रम कहाँ गया? यह बात सुन वह लजाय रहा। इतने में नारद जी ने आय राजा दुर्योधन समेत सब कौरवों से कहा कि यह शाम्ब श्रीकृष्णचन्द्र का पुत्र है तुम इसे मत कुछ कहो। जो होना था सो हुआ अभी इसके समाचार पाय दल साज आवैंगे श्रीकृष्ण

और बलराम जेा कुछ कहना सुनना हो सेा उनसे कह सुन लीजेा, लड़के से बात कहना तुम्हें किसी भाँति उचित नहीं इसने लड़क बुद्धि की तेा की। महाराज! इतना बचन कह नारद जी वहाँ से बिदा हेा चले चले द्वारकापुरी को गये और राजा उग्रसेन की सभा में जा खड़े हुये।

चौ० देखत सबै उठे शिर नाय। आसन दिये तत्तक्षण जाय॥

बैठते ही नारद जी बोले कि महाराज! कौरवों ने शाम्ब को बाँध महा दुःख दिया और देते हैं। जेा इस समय जाय उसकी सुधि लो तेा लो, नहीं तो फिर शाम्ब का बचना कठिन है।

चौ० गर्व भयो कौरव को भारी। लाज सकुच नहिं करी तिहारी॥
बालक को बाँध्यो उन ऐसे। अरि को बाँधे कोऊ जैसे॥

इस बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति कोप कर यदुवंशियों को बुलाय के कहा कि तुम अभी सब हमारा कटक ले हस्तिनापुर पर चढ़ जाओ और कौरवों को मार शाम्ब को छुड़ाय ले आओ। राजा की आज्ञा पाते ही ज्यों सब दल चलने को उपस्थित हुआ त्यों बलराम जी ने जाय राजा उग्रसेन को समझाय कर कहा कि महाराज! आप उन पर सेना न पठाइये, मुझे आज्ञा कीजे जेा मैं जाय उन्हें उलहना दे शाम्ब को छुड़ाय लाऊँ। देखूँ किसलिये शाम्ब को पकड़ बाँधा है, इस बात का भेद बिन मेरे गये न खुलेगा। इतनी बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने बलराम जी को हस्तिनापुर जाने की आज्ञा दी। और बलदेव जी कितने एक बड़े बड़े पण्डित ब्राम्हण और नारद मुनि को साथ ले द्वारका से चले चले हस्तिनापुर पहुँचे। उस समय प्रभु ने नगर के बाहर एक बाड़ी में डेरा कर नारद जी से कहा कि महाराज! हम यहाँ उतरे हैं आप जाय कौरवों से हमारे आने का समाचार

कहिये। प्रभु की आज्ञा पाय नारद जी ने नगर में जाय बलराम जी के आने का समाचार सुनाया।

चौ० सुन के सावधान सब भये। आगे होय लेन तहँ गये।
भीषम कर्ण द्रोण मिल चले। लीने बसन पटम्बर भले॥
दुर्योधन यों कह कर धायो। मेरो गुरू संकर्षण आयो॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! सब कौरवों ने उस बाड़ी में जाय बलराम जी से भेंट कर भेंट दी और पावों पर हाथ जोड़ बहुत सी स्तुति की। आगे चोवा चन्दन लगाय फूल माला पहराय पाटम्बर के पाँवड़े बिछाय बाजे गाजे से नगर में लिवाय लाये। पुनि षट्रस भोजन करवाय पास बैठ सबकी कुशल क्षेम पूँछ पूँछा कि, महाराज! आपका आना यहाँ कैसे हुआ? कौरवों के मुख से यह बात निकलते ही बलराम जी बोले कि—हम राजा उग्रसेन के पठाये सन्देशा कहने तुम्हारे पास आये हैं। कौरव बोले—कहो। बलदेव जी ने कहा कि राजा जी ने कहा कि तुम्हें हम से विरोध करना उचित न था।

चौपाई

तुम हौ बहुत से बालक एक। किये युद्ध तजि ज्ञान विवेक॥
महा अधर्म जान कै किये। लोक लाज तज सुत गहि लिये॥
ऐसो गर्व तुम्हें अब भयो। समझ बूझ ताको दुख दयो॥

महाराज! इतनी बात के सुनते ही कौरव महा कोप कर बोले कि, बलराम जी! बस करो, अधिक बड़ाई उग्रसेन की मत करो, हम से यह बात सुनी नहीं जाती। चार दिन की बात है कि उग्रसेन को कोई नहीं जानता मानता था जब से हमारे यहाँ सगाई की तभी से प्रभुता पाई अब हमीं से अभिमान की बात कह पठाई। उसे लाज नहीं आती? द्वारका में बैठा राज पाय

पिछली बात सब गवाँय जेा मन मानता है सेा कहता है। यह दिन भूल गया कि मथुरा में ग्वाल गूजरों के साथ रहता खाता था। जैसा हमने साथ खिलाय सम्बन्ध कर राज दिलवाया तिसका फल हाथों हाथ पाया, जेा किसी पूरे पर गुण करते तो वह जन्म भर हमारा गुण मानता। किसी ने सत्य कहा है कि, ओछे की प्रीति बालू की भीत समान है। इतनी कथा कह श्री-शुकदेव जी बोले कि, महाराज! ऐसे अनेक अनेक प्रकार की बातें कह कह कर्ण द्रोण भीष्म दुर्योधन आदि सब कौरव गर्व कर उठ उठ अपने अपने घर गये और बलराम जी उनकी बातें सुन सुन हँसि हँसि वहाँ बैठे मन ही मन यों कहते रहे कि इनको राज और बल का गर्व भया है जेा ऐसी ऐसी बातें कहते हैं। नहीं तेा ब्रह्मा रुद्र इन्द्र का ईश, जिसे नवावै शीश; तिस उग्रसेन की निन्दा करें, तेा मेरा नाम बलदेव नहीं जेा सब कौरवों को नगर समेत यमुना में डुबाऊँ नहीं।

महाराज! इतना कह बलदेव जी अति क्रोध कर सब कौरवों को नगर समेत हल में खैंच यमुना तीर पर ले गये। और चाहें कि डुबेावें त्यों ही अति घबराय भय खाय सब कौरव आय हाथ जेाड़ शिर नाय गिड़गिड़ाय बिनती कर बेाले कि, महाराज! हमारा अपराध क्षमा कीजै, हम आपकी शरण आये अब बचाय लीजै; जेा कहेागे सेा करैंगे सदा राजा उग्रसेन की आज्ञा में रहैंगे। महाराज! इतनी बात के कहते ही बलराम जी का क्रोध शान्त हुआ और जेा हल से खैंच नगर यमुना तीर पर लाये थे सेा वहीं रक्खा। तिसी दिन से हस्तिनापुर यमुना पर है पहले वह न था। आगे उन्होंने शाम्ब को छोड़ दिया। राजा दुर्योधन ने चचा भतीजों को मनाय घर में ले जाय मङ्गलाचार करवाय वेद की विधि से शाम्ब को कन्यादान दिया-

और उसके यौतुक में बहुत कुछ संकल्प किया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने कहा—महाराज! ऐसे बलराम जी हस्तिनापुर जाय कौरवों का गर्व गवाँय भतीजे को छुड़ाय ब्याह लाये। उस काल सारी द्वारकापुरी में आनन्द हो गया और बलदेव जी ने हस्तिनापुर का सब समाज ब्यौरे समेत समझाय राजा उग्रसेन के पास जाय कहा।

७०—नारद माया-दर्शन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! एक समय नारद जी के मन में आई कि श्रीकृष्णचन्द्र सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्री ले कैसे गृहस्थाश्रम करते हैं सो चल कर देखा चाहिये। इतना विचार, चले चले द्वारकापुरी में आये तो नगर के बाहर क्या देखते हैं कि कहीं बाड़ियों में नाना भाँति के बड़े बड़े ऊँचे वृक्ष हरे फल फूलों से भरे खड़े झूम रहे हैं और उन पर कपोत, कीर, चातक, मोर आदि पक्षी मन भावन बोलियाँ बैठे बोल रहे हैं। कहीं सुन्दर सरोवरों में कमल खिले हुए तिन पर भौंरों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे हैं। तीर में हंस सारस समेत खग कुलाहल कर रहे हैं। कहीं फुलवारियों में माली मीठे स्वरों से गाय गाय ऊँचे नीचे नीर चढ़ाय क्यारियों से जल खैंच रहे हैं। कहीं इन्दारे बावड़ियों पर रहँट परोहे चल रहे हैं, और पनघट पर पनहारियों के ठट्ठ के ठट्ठ लगे हैं। तिनकी शोभा कुछ बरणी नहीं जाती वह देखे ही बन आवै। महाराज! यह शोभा बन उपबन की निरख हरष नारद जी पुरी में जाय देखें तो अति सुन्दर कञ्चन के मणियों के मन्दिर जग मगाय रहे हैं तिन पर ध्वजा पताका फहराय रही हैं। द्वार द्वार पर केले के खम्भ और कञ्चन के कुम्भ सपल्लव भरे धरे हैं घर घर की जाली

झरोखों मोखों से धूप का धुवाँ निकल श्यामघटा सा मण्डलाय रहा है। उसके बीच बीच सोने के कलश कलशियाँ बिजलियाँ बिजली सी चमक रही हैं। घर घर पूजा पाठ होम यज्ञ दान हो रहा है, ठौर ठौर भजन स्मरण गान कथा पुराण चर्चा चल रही है। जहाँ तहाँ यदुवंशी इन्द्र की सी सभा किये बैठे हैं और सारे नगर में सुख छाय रहा है।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! नारद जी पुरी में जाते ही मग्न हो कहने लगे कि प्रथम किस मन्दिर में जाऊँ जो श्रीकृष्णचन्द्र को पाऊँ। महाराज! मन ही मन इतना कह नारद जी पहिले श्रीरुक्मिणी जी के मन्दिर में गये वहाँ श्रीकृष्णचन्द्र बिराजते थे सो इन्हें देख उठ खड़े भये। रुक्मिणी जी जल की झारी भर लाईं, प्रभु ने पाँव धोय आसन पर बैठाय धूप दीप नेवैद्य धर पूजा कर हाथ जोड़ नारद जी से कहा :—

चौ० सुनो मुनीश सोई बड़ भागी। जो सुर धेनु विप्र अनुरागी॥
जा घर चरण साधु के परें। ते नर सुख सम्पत्ति अनुसरें॥
हम से कुटमी तारण हेतु। घरहि आय तुम दर्शन देतु॥

महाराज! प्रभु के मुख से इतना बचन निकलते ही यह आशीश दी कि जगदीश तुम चिर थिर रहो, श्री रुक्मिणी जी को अशीश दी फिर नारद जी जाम्बवती के मन्दिर में गये, देखा कि हरि सार पाँसे खेल रहे हैं। नारद जी को देखते ही ज्यों प्रभु उठे त्यों नारद जी आशीर्वाद दे उलटे फिरे। पुनि सत्यभामा के यहाँ गये तो देखा कि श्रीकृष्णचन्द्र बैठे तेल उबटन लगवाय रहे हैं वहाँ से चुपचाप नारद जी फिर आये इसलिये कि शास्त्र में लिखा है कि तेल लगाने के समय न राजा प्रणाम करे न ब्राह्मण अशीश दे। आगे नारद जी कालिन्दी के घर गये, वहाँ

देखा कि हरि सेा रहे हैं। महाराज! कालिन्दी ने नारद जी को देखते ही हरि के पाँव दाब जगाया। प्रभु जागते ही ऋषि के निकट जाय दण्डवत् कर हाथ जेाड़ बेाले कि साधु के चरण तीर्थ के जल समान हैं जहाँ पड़ें वहाँ पवित्र करते हैं। यह सुन वहाँ से भी आशीश दे नारद जी चल खड़े हुए। और मित्रवृन्दा के धाम गये, तहाँ देखा कि ब्रह्मभोज हेा रहा है और श्रीकृष्ण परोसते हैं नारद जी को देख प्रभु ने कहा कि, महाराज! जेा कृपाकर आये हेा तेा आप भी प्रसाद ले हमें उच्छिष्ट दीजै और घर पवित्र कीजै। नारद जी ने कहा, महाराज! मैं थोड़ा फिर आऊँ तब खाऊँगा ब्राह्मणों को जिमा लीजै, फिर ब्रह्म शेष आय मैं पाऊँगा। येां सुनाय नारद जी बिदा हेा सत्या के गृह पधारे, वहाँ क्या देखते हैं कि श्रीबिहारी भक्त हितकारी आनन्द से बैठे बिहार कर रहे हैं। यह चरित्र देख नारद जी उलटे पाँवों फिरे पुनि भद्रा के स्थान पर गये, तेा देखा कि हरि भेाजन कर रहे हैं। वहाँ से फिरे तेा लक्ष्मणा के घर पधारे, तेा वहाँ देखा कि प्रभु स्नान कर रहे हैं इतनी कथा सुनाय शुकदेव जी बेाले—कि, महाराज! इसी भाँति नारद मुनि जी सेालह सहस्र एक सौ आठ घर फिरे, पर बिन श्रीकृष्ण कोई न देखा, जहाँ देखा तहाँ हरि को गृहस्थाश्रम का काज ही करते देखा, यह चरित्र लख :—

चौपाई

नारद के मन अचरज येह। कृष्ण बिना नहिं कोऊ गेह॥
जा घर जाऊँ तहँ हरि प्यारी। ऐसी प्रभु लीला बिस्तारी॥
सेालह सहस्र अठोत्तर सौ घर। तहाँ तहाँ सुन्दरि सँग गिरिधर॥
मगन होय ऋषि कहत बिचारी। यह माया यदुनाथ तिहारी॥
काहू सों नहिं जानी परै। कौन तिहारी माया तरै॥

महाराज ! जब नारद जी ने अचम्भा कर कहे ये बैन, तब बोले प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र सुख दैन, कि नारद ! तू अपने मन में कुछ खेद मत करे मेरी माया अति प्रबल है और सारे संसार में फैल रही है यह मुझे ही मोहती है तो दूसरे की क्या समर्थ है जो इसके हाथ से बचे और जगत् के बीच आय इसमें न रचे।

चौ० नारद मुनि बिनवैं शिर नाय। मोपै कृपा करो यदुराय॥

जो आपकी भक्ति सदा मेरे चित्त में रहै और मेरा मन माया के बश होय विषय की बासना न चहै। महाराज ! इतना कह नारद जी प्रभु से बिदा हो दण्डवत् कर बीण बजाते गुण गाते अपने स्थान को गये और श्रीकृष्णचन्द्र जी द्वारका में लीला करते रहे।

७१—राजा युधिष्ठिर संदेश

शुकदेव जी बोले कि, महाराज ! एक दिन श्रीकृष्णचंद्र रात्रि समय श्रीरुक्मिणी जी के साथ बिहार करते थे और रुक्मिणी जी आनन्द में मग्न बैठी प्रीतम का चन्द्रमुख निरख निरख अपने नयन चकोरों को सुख देती थीं कि इस बीच रात्रि व्यतीत भई, चिड़िया चुहचुहाई, अम्बर में अरुणाई छाई, चकोरों को बियोग हुआ और चकवा चकइयों के संयोग, कमल बिकसे, कुमोदिनी कुँभिलाई, चन्द्रमा छविहीन भया और सूर्य का तेज बढ़ा, सब लोग जागे और अपना अपना गृह काज करने लगे। उस काल रुक्मिणी जी तो हरि के समीप से उठ शोच संकोच लिये घर की टहल टकोर करने लगीं और श्रीकृष्णचन्द्र जी देह शुद्ध कर, हाथ मुँह धोय स्नान कर, जप ध्यान पूजा तर्पण से निश्चिन्त हो, ब्रह्मणों को नाना प्रकार के दान दे नित्य कर्म से सुचित हो बाल भोग पाय पान, लौंग, इलायची, जावित्री, जायफल के

साथ खाय, सुथरे वस्त्र आभूषण मँगाय पहिन शस्त्र लगाय राजा उग्रसेन के पास गये। पुनि जुहार कर यदुवंशियों के सभा के बीच आय रत्न सिंहासन पर बिराजे। महाराज! उसी समय एक ब्राह्मण ने जाय द्वारपालों से कहा कि तुम श्रीकृष्णचन्द्र जी से जाकर कहो कि एक ब्राह्मण आपके दर्शन की अभिलाषा किये द्वार पर खड़ा है जेा प्रभु की आज्ञा पावे तेा भीतर आवे। ब्राह्मण की बात सुन द्वारपाल ने भगवान् से जा कहा कि, महाराज! एक ब्राह्मण आप के दर्शन की अभिलाषा किये पौर पर खड़ा है जेा आज्ञा पावे तेा भीतर आवे। हरि बोले—अभी लाव। प्रभु के मुख से बात निकलते ही हाथों हाथ ब्राह्मण को सन्मुख द्वारपाल ले गये। विप्र को देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र सिंहासन से उतर दण्डवत् कर आगे बढ़ हाथ पकड़ उसे मन्दिर में ले गये और रत्न सिंहासन पर अपने साथ बिठाय पूँछने लगे कि, कहो देवता! आप का आना कहाँ से भया और किस कार्य के हेतु पधारे? ब्राह्मण बोला—कृपासिन्धु! दीनबन्धु! मैं मगध देश से आया हूँ और बीस सहस्र राजाओं का संदेशा लाया हूँ। प्रभु बोले सेा क्या? ब्राह्मण ने कहा—महाराज! जिन बीस सहस्र राजाओं को जरासन्ध ने बल कर पकड़ हथकड़ी और बेड़ी दे रक्खा है, तिन्होंने मेरे हाथ आप को अति बिनती कर यह संदेशा कहला भेजा है कि, दीनानाथ! तुम्हारी सदा सर्वदा यह रीति है कि, जब जब असुर तुम्हारे भक्तों को सताते हैं, तब तब तुम अवतार ले अपने भक्तों की रक्षा करते हो। नाथ! जैसे हिरण्यकश्यप से प्रह्लाद को छुड़ाया और गज को ग्राह से तैसे हीं दया कर अब हमें इस महादुष्ट के हाथ से छुड़ाओ, हम महा कष्ट में हैं। तुम बिन और किसी की सामर्थ नहीं जेा इस महा विपत्ति से निकाले और हमारा

उद्धार करे। महाराज! इतनी बात के सुनते ही प्रभु दयाल हो बोले कि, हे देवता! तुम अब चिन्ता मत करो उनकी चिन्ता मुझे है। इतनी बात के सुनते ही ब्राह्मण सन्तोष कर श्रीकृष्णचन्द्र को अशीश देने लगा। इस बीच नारद जी आ उपस्थित हुए, प्रणाम कर श्रीकृष्णचन्द्र ने उनसे पूँछा कि नारद जी! तुम सब ठौर जाते हो कहो हमारे भाई युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डव इन दिनों कैसे हैं और क्या करते हैं? बहुत दिनों से हमने उनके कुछ समाचार नहीं पाये इससे हमारा चित्त उन्हीं में लगा है। नारद जी बोले कि, महाराज! मैं उन्हीं के पास से आता हूँ, हैं तो कुशल क्षेम से, पर इन दिनों राजसूय यज्ञ करने के लिये निपट भावित हो रहे हैं और घड़ी घड़ी यही कहते हैं कि बिना श्रीकृष्णचन्द्र जी की सहायता के हमारा यज्ञ पूरा न होगा। इससे महाराज! मेरा कहा मानिये तो :—

चौ० पहिले उनको यज्ञ सँवारो। पीछे कहूँ अन्त पग धारो॥

महाराज! इतनी बात नारद जी के मुख से निकलते ही प्रभु ने उद्धव जी को बुला के कहा,

चौ० उद्धव तुम हो सखा हमारे। मन आँखन तें कबहुँ न न्यारे॥
दुहूँ ओर की भारी भीर। पहिले कहाँ चलैं कहु बीर॥
उत राजा संकट में भारी। दुख पावत किये आश हमारी॥
इत पाण्डव मिलि यज्ञ रचायो। ऐसे कहि प्रभु बचन सुनायो॥

७२—श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! पहिले तो श्रीकृष्णचन्द्र जी ने उस ब्राह्मण को इतना कह बिदा किया जो राजाओं का सँदेशा लाया था कि, देवता! तुम हमारी ओर से सब

राजाओं से जाय कहो कि तुम किसी बात की चिन्ता मत करो हम बेग आय तुम्हें छुड़ावें हैं। महाराज! यह बात कर श्री-कृष्णचन्द्र ब्राह्मण को बिदा कर उद्धव जी को साथ ले राजा उग्रसेन शूरसेन की सभा में गये। इन्होंने सब समाचार उनके आगे कहे वे सुनकर चुप हो रहे। इसमें उद्धव जी बोले कि, महाराज! ये दोनों काज कीजै, पहिले राजाओं को जरासन्ध से छुड़ा दीजै पीछे चल कर यज्ञ सँवारिये, क्योंकि राजसूय यज्ञ का काम बिना राजाओं के और कोई नहीं कर सकता और वहां बीस सहस्र नृप इकट्ठे हैं उन्हें छुड़ाओगे तो वे सब गुण मान यज्ञ का काज बिन बुलाये जाकर करेंगे महाराज! और कोई दशों दिशा जीत आवेगा, तौ भी इतने राजा इकट्ठे न पावेगा। इससे अब उत्तम यही है कि हस्तिनापुर को चलिये पाँडवों से मिल मता कर जो काम करना हो सो करिये। महाराज! इतना कह पुनि उद्धव जी बोले कि, महाराज! राजा जरासन्ध बड़े दाता और गौ ब्राह्मण मानने और पूजने वाला है जो कोई उससे जाकर माँगता है सो पाता है। याचक उसके यहाँ से बिमुख नहीं आता, वह झूँठ नहीं बोलता, जिससे बचन बद्ध होता है उससे निबाहता है और दश सहस्र हाथी का बल रखता है। उसके बल के समान भीमसेन का बल है। नाथ! जो तुम वहां चलो तो भीमसेन को भी साथ ले चलो, मेरी बुद्धि में आता है कि उसकी मीच भीमसेन ही के हाथ है। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! जब उद्धव जी ने ये बातें कहीं तभी श्रीकृष्णचन्द्र जी ने राजा उग्रसेन शूरसेन से बिदा हो सब यदुवंशियों से कहा कि हमारा कटक साजो हम हस्तिनापुर को चलेंगे। बात के सुनते ही सब यदुबंशी सेना साज ले आये और प्रभु भी आठों

पटरानियों समेत कटक के साथ हो लिये। महाराज ! जिस काल श्रीकृष्णचन्द्र कुटुम्ब सहित सब सेना ले धौंसा दे द्वारकापुरी से हस्तिनापुर को चले, उस समय की शोभा कुछ बरणी नहीं जाती। आगे हाथियों का कोट, बायें दाहिने रथ घोड़ों की ओट, बीच में रनिवास और पीछे सब सेना साथ लिये सब की रक्षा किये श्रीकृष्णचन्द्र चले जाते थे। जहाँ डेरा होता था तहाँ कई योजन के बीच एक सुन्दर सुहावना नगर सा बन जाता था। देश देश के नरेश भय खाय आय आय भेंट पर भेंट करते थे और प्रभु उन्हें भयातुर देख तिनका सब भाँति समाधान करते थे। निदान इसी धूमधाम से चले चले हरि सब समेत हस्तिनापुर के निकट पहुँचे इसमें किसी ने राजा युधिष्ठिर से जाय कहा कि, महाराज ! कोई नृपति अति सेना ले बड़ी भीड़भाड़ से आपके देश पर चढ़ आया है, आप वेग उसे देखिये नहीं तो उसे पहुँचा जानिये। महाराज ! इस बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने अति भय खाय अपने नकुल सहदेव दोनों छोटे भाइयों को यह कह कर प्रभु के पास भेजा कि तुम देखि आओ कि कौन राजा चढ़ा आता है राजा की आज्ञा पाते ही,

चौ० सहदेव नकुल देखि फिर आये। राजा को यह वचन सुनाये॥
प्राणनाथ आये हैं हरी। सुन राजा चिन्ता परिहरी॥

आगे अति आनन्द कर राजा युधिष्ठिर ने भीम अर्जुन को बुला के कहा कि, भाई ! तुम चारों भैया आगू जाय श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द को ले आओ। महाराज ! राजा की आज्ञा पाय और प्रभु का आना सुन वे चारों भाई अति प्रसन्न हो भेंट पूजा की सब सामा और बड़े बड़े पण्डितों को साथ ले बाजे गाजे से प्रभु को लेने चले। निदान अति आदर मान से मिल वेद की विधि से भेंट पूजा कर ये चारों भाई श्रीकृष्ण जी को सब समेत पाटम्बर के

पाँवड़े डालते, चोवा चन्दन गुलाब-नीर छिड़कते, चाँदी सोने के फूल बर्षाते, धूप दीप नैवेद्य करते, बाजे गाजे से नगर में ले आये। राजा युधिष्ठिर ने प्रभु से मिल अति सुख माना और अपना जीवन सुफल जाना। आगे बाहर भीतर सब ने सब से मिल मिल यथा योग्य परस्पर सन्मान किया और नयनों को सुख दिया। घर बाहर सारे नगर में आनन्द हो गया और श्रीकृष्णचन्द्र वहाँ रह सब को सुख देने लगे।

७३—जरासन्ध-बध

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र करुणासिन्धु दीनबंधु भक्तहितकारी ऋषि मुनि ब्राह्मणों की सभा में बैठे थे, कि राजा युधिष्ठिर ने आय अति गिड़गिड़ाय बिनती कर हाथ जोड़ शिर नाय के कहा कि, हे शिव विरंचि के ईश! तुम्हारा ध्यान करते हैं सदा सुर मुनि ऋषि योगीश। तुम हो अलख अगोचर अभेद, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेद।

चौपाई

मुनि योगीश्वर इक चित ध्यावत। तिनके मन क्षण कभूँ न आवत॥
हमको घरहीं दर्शन देतु। मानत प्रेम भक्त के हेतु॥
जैसी मोहन लीला करौ। काहू पै नहिं जाने परो॥
माया में भूलो संसार। तुम सों करत लोक व्यवहार॥
जो तुम को सुमिरत जगदीश। ताहि आपनो जानत ईश॥
अभिमानी ते हौ तुम दूर। सतवादी के जीवन मूर॥

महाराज! इतना कह राजा युधिष्ठिर बोले कि, हे दीनदयालु! आप की दया से मेरे सब काम सिद्ध हुए पर एक ही अभिलाषा रही। प्रभु बोले सो क्या? राजा ने कहा कि, महाराज!

मेरा यही मनोरथ है कि राजसूय यज्ञ कर आपको अर्पण करूँ तो भवसागर तरूँ।

इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हो बोले कि, राजा! यह तुमने भला मनोरथ किया। इसमें सुर, नर, मुनि, ऋषि सब सन्तुष्ट होंगे। यह सब को भाता है और इसका करना तुम्हें कुछ कठिन नहीं; क्योंकि तुम्हारे चारों भाई अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव बड़े प्रतापी और अति बली हैं। संसार में ऐसा अब कोई नहीं जो इनके सन्मुख हो। पहिले इन्हें भेजिये कि ये दशों दिशा के राजाओं को जीत अपने वश कर आवें पीछे आप निश्चिन्ताई से यज्ञ कीजे।

राजा! प्रभु के मुख से इतनी बात ज्यों निकली त्यों ही राजा युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को बुलाय कटक दे चारों को चारों ओर भेज दिया। दक्षिण को सहदेव जी पधारे, पश्चिम को नकुल सिधारे, उत्तर को अर्जुन धाये, पूर्व में भीमसेन जी आये। आगे कितने एक दिन के बीच, महाराज! वे चारों हरि प्रताप से सात द्वीप नवखण्ड जीत दशों दिशा के राजाओं को बश कर अपने साथ ले आये। उस काल राजा युधिष्ठर ने हाथ जोड़ श्री कृष्णचन्द्र जी से कहा कि, महाराज! आपकी सहायता से यह काम तो हुआ अब क्या आज्ञा होती है? इसमें उद्धव जी बोले कि, धर्मावतार! सब देश के तो नरेश आये पर अब एक मगध देश का राजा जरासन्ध ही आपके वश नहीं और जब तक वह वश में न होगा, तब तक यज्ञ भी करना सफल न होगा। महाराज! जरासन्ध राजा वृहद्रथ का बेटा महाबली बड़ा प्रतापी और अति दानी धर्मात्मा है। हर किसी की सामर्थ्य नहीं जो उसका सामना करे। इस बात को सुन ज्यों राजा युधिष्ठिर उदास हुए त्यों श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, महाराज! आप किसी

बात की चिन्ता न कीजै, भाई भीम अर्जुन समेत हमें आज्ञा दीजै, कैतो बल छल कर हम उसे पकड़ लावें कै मार आवें। इस बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने दोनों भाइयों को आज्ञा दी, तब हरि ने दोनों को अपने साथ ले मगध देश की बाट ली। आगे जाय पन्थ में श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन और भीम से कहा कि,

चौ० विप्र रूप ह्वै पग धारिये। छल बल कर बैरी मारिये॥

महाराज! इतनी बात कह श्रीकृष्णचन्द्र जी ने ब्राह्मण का भेष किया, उनके साथ भीम अर्जुन ने भी विप्र वेष लिया। तीनों त्रिपुण्ड दिये, पुस्तक काँख में लिये, अति उज्ज्वल स्वरूप, सुन्दर रूप बन ठन कर ऐसे चले कि, जैसे तीनों गुण सत्व, रज, तम, देह धरे जाते होयँ; कै तीनों काल। निदान कितने एक दिनों में चले चले ये मगध देश में पहुँचे और दोपहर के समय राजा जरासन्ध की पौर पर जा खड़े हुए। इनका भेष देख पौरियों ने अपने राजा से कहा कि महाराज! तीन ब्राह्मण अतिथि बड़े तेजस्वी, महा पण्डित, अति ज्ञानी, कुछ कांछा लिए द्वार पर खड़े हैं हमें क्या आज्ञा होती है। महाराज! बात के सुनते ही राजा जरासन्ध उठ आया और इन तीनों को प्रणाम कर अति मान सन्मान से घर में ले आया। आगे वह इन्हें सिंहासन पर बैठाय आप सन्मुख हाथ जोड़ खड़ा हो देख देख शोच शोच बोला—

चौपाई

याचक जो द्वारे पर आवे। बड़ा नृपति सो अतिथि कहावे॥
बिप्र नहीं तुम योधा बली। बात न कछू कपट की भली॥
जो ठग ठगनि रूप धरि आवे। ठग तो जाय भलो न कहावे॥
छिपै न क्षत्री कान्ति तिहारी। दीखत शूर बीर बल भारी॥
तेजवन्त तुम तीनों भाई। शिव विरञ्चि हरि से बरदाई॥

मैं जान्यों जिय कर निर्मान। करो देव तुम आप बखान॥
तुम्हरी इच्छा हो सेा करौं। अपनी बाचा ते नहिं टरौं॥
दानी मिथ्या कबहुँ न भाखै। धन तन सर्वस कछू न राखै॥
माँगो सेाई देहौं दान। सुत सुन्दरि सर्वस्व परान॥

महाराज! इस बात के सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा कि, महाराज! किसी समय राजा हरिश्चन्द्र बड़ा दानी हेा गया है कि, जिसकी कीर्त्ति अब तक संसार में छाय रही है। सुनिये, एक समय राजा हरिश्चन्द्र के देश में काल पड़ा और अन्न बिन सब लेाग मरने लगे। तब राजा ने अपना सर्वस्व बेंच के सब को खिलाया। देश नगर का धन गया और निर्धन हेा राजा रहा। तब एक दिन-साँझ समय यह तेा कुटुम्ब सहित भूखा बैठा था कि, इसमें विश्वामित्र ने आय इन का सत देखने को यह बचन कहा—महाराज! मुझे धन दीजै और कन्यादान का फल लीजै। इस बचन के सुनते ही जेा कुछ घर में था सेा दिया। पुनि ऋषि ने कहा—महाराज! मेरा काम इतने में न होगा। फिर राजा ने दास दासी बेच धन ला दिया, और धन जन गवाँय निर्द्धन निर्जन हेा स्त्री पुत्र को ले रहा। पुनि ऋषि ने कहा कि धर्ममूर्त्ति। इतने धन से मेरा काम न होगा। अब मैं किसके पास जाय माँगूँ मुझे तेा संसार में तुझसे अधिक धनवान् धर्मात्मा दानी कोई नहीं दृष्टि आता है। एक श्वपच मायापात्र है कहेा तेा उससे जाय धन माँगू, पर इसमें भी लाज आती है कि ऐसे दानी राजा को यांच उससे क्या यांचूँ। महाराज! इतनी बात के सुनते ही राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्र को साथ ले उस चाण्डाल के घर गये और इन्होंने उससे कहा कि, भाई! तू हमें एक वर्ष के लिये गहने धर और इनका मनेारथ पूरा कर, श्वपच बेाला :—

चौ० कैसे टहल हमारी करिहौ। राजस तामस मन तें हरिहौ॥
तुम नृप महातेज बलधारी। नीच टहल है खरी हमारी॥

महाराज! हमारा तो यही काम है कि श्मशान में जाय चौकी दे और जो मृतक आवे उसका कर ले पुनि हमारे घरबार की चौकसी करै तुमसे यह हो सकै तो मैं रुपये दूँ और तुम्हें बन्धक रक्खूँ। राजा ने कहा—अच्छा मैं वर्ष भर तुम्हारी सेवा करूँगा तुम इन्हें रुपये दो। महाराज! इतना बचन राजा के मुख से निकलते ही श्वपच ने विश्वामित्र को रुपये गिन दिये। वह ले अपने घर गया और राजा वहाँ रह उसकी सेवा करने लगा। कितने एक दिन पीछे कालबश हो राजा हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहिताश्व मर गया। उस मृतक को ले रानी मरघट में गई और ज्यों चिता बनाय अग्निसंस्कार करने लगी त्यों ही राजा ने आय कर माँगा।

चौ० रानी बिलखि कहै शिर नाय। देखो समझ हिये तुम राय॥

यह तुम्हारा पुत्र रोहित है और देने को मेरे पास और कुछ नहीं एक यही चीर है जो पहिरे खड़ी हूँ। राजा ने कहा—मेरा इसमें कुछ बश नहीं मैं स्वामी के कार्य पर खड़ा हूँ जो स्वामी का काम न करूँ तो मेरा सत जाय। महाराज! इस बात के सुनते ही रानी ने चीर उतारने को ज्यों आँचल पर हाथ डाला त्यों तीनों लोक काँप उठे। वहीं भगवान् ने राजा रानी का सत देख पहिले एक बिमान भेज दिया और पीछे से आय दर्शन दे तीनों का उद्धार किया। महाराज! जब बिधाता ने रोहित को जिलाया राजा रानी को पुत्र सहित बिमान पर बैठाय बैकुण्ठ जाने की आज्ञा की, तब राजा हरिश्चन्द्र ने हाथ जोड़ भगवान्

से कहा कि, हे दीनबन्धु ! पतितपावन ! दीनदयालु ! मैं श्वपच बिना वैकुण्ठ धाम में जा क्या करूँ विश्राम ? इतना बचन सुन और राजा के मन का अभिप्राय जान श्रीभक्तहितकारी करुणासिन्धु हरि ने पुरी समेत श्वपच को भी राजा रानी कुँवर के साथ तारा।

चौपाई

वहाँ हरिश्चन्द्र अमर पद पायो। यहाँ युगन युग यश चलि आयो॥

महाराज ! यह प्रसंग जरासन्ध को सुनाय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा कि, महाराज ! और सुनिये कि, रन्तिदेव ने ऐसा तप किया कि अड़तालिस दिन बिन पानी रहा और जब जल पीने बैठा तिसी समय कोई प्यासा आया इसने वह नीर आप न पी उस तृषावन्त को पिलाया, उस जल दान से उसने मुक्ति पाई। पुनि राजा बलि ने अति दान किया तो पाताल का राज्य लिया और अब तक उसका यश चला जाता है फिर देखिये कि उद्दालक मुनि छठे महीने अन्न खाते थे एक समय खाती बिरियाँ उसके यहाँ अतिथि आया, उसने अपना भोजन आप न खाया भूँखे को खिलाया और उस क्षुधा ही में मरे। निदान अन्न दान करने से बैकुण्ठ को गये चढ़ कर बिमान। पुनि एक समय देवताओं को साथ ले राजा इन्द्र ने जाय दधीचि से कहा कि, महाराज ! हम बृत्रासुर के हाथ से अब बच नहीं सकते जो आप अपनी अस्थि हमें दीजै तो उसके हाथ से बचें नहीं तो बचना कठिन है क्योंकि तुम्हारे हाड़ के आयुध बिन किसी भाँति न मारा जायगा। महाराज ! इतनी बात के सुनते ही दधीचि ने शरीर गाय से चटवाय जाँघ का हाड़ निकाल दिया। देवताओं ने ले उस अस्थि का बज्र बनाया और दधीचि ने प्राण गवाँया, बैकुण्ठ धाम पाया।

चौ० ऐसे दाता भये अपार। तिनको यश गावत संसार॥

राजा! यों कह श्रीकृष्णचन्द्र जी ने जरासन्ध से कहा कि, महाराज! जैसे आगे और युगों में धर्मात्मा दानी राजा हो गये हैं तैसे अब इस काल में तुम हो। ज्यों आगे उन्होंने याचकों की अभिलाषा पूरी की त्यों तुम अब हमारी आश पुजाओ, कहा है,—

दो० याचक काह न माँगई, दाता काह न देय।
गृह सुत सुन्दरि लोभ नहिं, तन धन दे यश लेय॥

इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही जरासन्ध बोला कि याचक को दाता की पीर नहीं होती तौ भी दानी धीर अपनी प्रकृति नहीं छोड़ता इसमें सुख पावै कै दुःख। देखो हरि ने कपट रूप कर बामन बन राजा बलि के पास जाय तीन पग पृथ्वी माँगी। उस समय शुक्र ने बलि को चिताया, तौ भी राजा ने अपना प्रण न छोड़ा।

चौ० देह समेत मही तिन दई। ताकी जग में कीरति भई॥
याचक विष्णु कहा यश लीना। सर्वस ले तौऊ हठ कीना॥

इससे तुम पहिले अपना नाम भेद कहो तब जो तुम माँगोगे सो मैं दूँगा, मैं मिथ्या नहीं भाषता। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, राजा! हम क्षत्री हैं बासुदेव मेरा नाम है, तुम भली भाँति हमें जानते हौ और ये दोनों अर्जुन, भीम हमारे फुफेरे भाई हैं, हम युद्ध करने को तुम्हारे पास आये हैं हमसे युद्ध कीजै। हम यही तुमसे माँगने आये हैं और कुछ नहीं माँगते। महाराज! यह बात श्रीकृष्णचन्द्र जी से सुन जरासन्ध हँस कर बोला कि मैं तुझ से क्या लड़ूँ? तू मेरे सोंहीं से भाग चुका है और अर्जुन से भी न लड़ूँगा, क्योंकि यह विदर्भ देश गया था तहाँ नारी का भेष करके

रहा। भीमसेन से कहो तो इससे लड़ूँ, यह मेरे समान का है इससे लड़ने में मुझे कुछ लाज नहीं।

चौ० पहिले तुम भोजन करो। पाछे मल्ल अखाड़े करो॥
भोजन दे नृप बाहर आयो। भीमसेन तहँ बोलि पठायो॥
अपनी गदा ताहि तिन दई। गदा दूसरी आपुनि लई॥
दो० जहाँ सभा मण्डप बन्यो, बैठे जाय मुरारि॥
जरासन्ध अरु भीम तहँ, भये ठाढ़ इकबारि॥
चौ० टोपा शीश काछनी काछे। बने रूप नटवर के आछे॥

महाराज! जिस समय दोनों बीर अखाड़े में खम ठोंक गदा तान ध्वजा पलट झूम कर सन्मुख आये, उस काल ऐसे जनाये कि मानों दो मतङ्ग मतवाले उठ धाये। आगे जरासन्ध ने भीम से कहा कि पहिले गदा तू चला क्योंकि तू ब्राह्मण का भेष ले मेरी पौर पर आया था इससे मैं पहिले प्रहार तुझ पर न करूँगा यह बात सुन भीमसेन बोले कि, राजा! हम से तुम से धर्म युद्ध है इससे यह ज्ञान न चाहिये। जिसका जी चाहे सेा पहिले शस्त्र करे, महाराज! उन दोनों बीरों ने परस्पर ये बातें कर एक साथ ही गदा चलाई और युद्ध करने लगे।

चौ० ताकत घातैं अपनी अपनी। चोट करत बाईं अरु दहिनी॥
अंग बचाय उछरि पग धरैं। झरपैं गदा गदा सों लरैं॥
खटपट चोट गदा पटकारी। लागत शब्द कुलाहल भारी॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! इसी भाँति वे दोनों बली दिन भर तो धर्म युद्ध करते और साँझ को घर आय एक साथ भोजन कर विश्राम करते। ऐसे नित्य लड़ते लड़ते सत्ताइस दिन भये, तब एक दिवस उन दोनों के लड़ने के समय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने मनहीं मन

बिचारा कि यह तो न मारा जायगा क्योंकि जब यह जन्मा था तब दो फाँक हो जन्मा था। उस समय जरा राक्षसी ने आय जरासन्ध का मुँह और नाक मूँदी तब दोनों फाँक मिल गईं। यह समाचार सुन उसके पिता बृहद्रथ ने ज्योतिषियों को बुलाय के पूँछा कि, कहो! इस लड़के का नाम क्या होगा? और क्या होगा? ज्योंतिषियों ने कहा कि, महाराज! इसका नाम जरासंध हुआ और यह बड़ा प्रतापी और अजर अमर होगा, जब तक इसकी सन्धि न फटेगी तब तक यह किसी से न मारा जायगा। इतना कह ज्योतिषी बिदा हो चले गये। महाराज! यह बात श्रीकृष्ण जी ने मन में शोच और अपना बल दे भीमसेन को तिनका चीर सैन से जताया कि इसी रीति से चीर डालो। प्रभु के चिताते ही भीमसेन ने जरासंध को पकड़ कर दे मारा और एक जाँघ पर पाँव दे दूसरा पाँव हाथ से पकड़ यों चीर डाला कि जैसे कोई दाँतुन चीर डाले जरासंध के मरते ही सुर नर गन्धर्ब ढोल दमामे भेर बजाय बजाय फूल बर्षाय बर्षाय जय जय कार करने लगे और दुःख द्वन्द्व जाय सारे नगर में आनन्द हो गया। उसी बिरियाँ जरासंध की नारी रोती पीटती आ श्रीकृष्णचन्द्र जी के सन्मुख खड़ी हो हाथ जोड़ बोली कि धन्य है धन्य है नाथ! तुमने जो ऐसा काम किया, कि जिसने सर्वस्व दिया तुमने उसका प्राण लिया। जो जन तुम्हें सुत बित्त और समर्पे देह, उससे तुम करते हो ऐसा ही स्नेह।

चौपाई

कपट रूप कर छल कियो। जगत आय तुम यह यश लियो॥

महाराज! जरासंध की रानी ने जब करुणा कर करुणानिधान के आगे हाथ जोड़ बिनती कर यों कहा तब प्रभु ने

दयालु हो पहिले जरासंध की क्रिया की। पीछे उसके सुत सहदेव को बुलाय राजतिलक दे सिंहासन पर बिठाय के कहा कि, पुत्र! नीति सहित राज्य कीजो और ऋषि मुनि गो ब्राह्मण की रक्षा करो।

७४—सर्वभूपति हस्तिनापुर गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! राजपाट पर बैठाय समझाय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सहदेव से कहा कि राजा! अब तुम जाय उन राजाओं को ले आओ जिन्हें तुम्हारे पिता ने पहाड़ की कन्दरा में मूँद रक्खा है। इतना बचन प्रभु के मुख से सुनते ही जरासंध का पुत्र सहदेव बहुत अच्छा कह कन्दरा के निकट जाय उसके मुख से शिला उठाय आठ सौ बीस सहस्र राजाओं को निकाल हरि के सन्मुख ले आया। आते ही हथकड़ियां बेड़ियां पहिने गले में साँकल लोहे की डाले, नख केश बढ़ाये तन क्षीन मन मलीन मैले भेष, सब राजा प्रभु के सन्मुख पाँति पाँति खड़े हो हाथ जोड़ बिनती कर बोले—हे कृपासिन्धु! दीनबन्धु! आपने भले समय आय हमारी सुधि ली नहीं तो सब मर चुके थे। तुम्हारा दर्शन पाया हमारे जी में जी आया, पिछला दुःख सब गवाया, महाराज! इस बात के सुनते ही कृपासागर श्रीकृष्णचन्द्र ने ज्यों उन पर दृष्टि की त्यों बात की बात में सहदेव उनको ले जाय हथकड़ी बेड़ी कटवाय क्षौर कराय निहलाय धुलवाय षटरस भोजन खिलाय बस्त्र आभूषण पहराय शस्त्र अस्त्र बँधवाय पुनि हरि के सोंहीं लिवाय लाया। उस काल श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने उन्हें चतुर्भुजी हो शंख चक्र गदा पद्म धारण कर दर्शन दिया। प्रभु का स्वरूप भूप देखते ही हाथ जोड़ बोले—नाथ! तुम संसार के कठिन बन्धन से जीव को छुड़ाते हो। तुम्हें जरासन्ध की बन्दि से

हमें छुड़ाते क्या कठिन था ? जैसे आपने कृपाकर हमें इस कठिन बन्धन से छुड़ाया तैसे ही अब हमें गृहरूप कूप से निकाल काम, क्रोध, लोभ, मोह से छुड़ाइये जो हम एक एकान्त बैठ आप का ध्यान धरैं और भवसागर तरैं। श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा ? जब सब राजाओं ने ऐसे ज्ञान बैराग भरे बचन कहे तब श्रीकृष्णचन्द्र जी प्रसन्न हो बोले कि सुनो जिसके मन में मेरी भक्ति है वे निस्सन्देह भुक्ति मुक्ति पावेंगे। बंध मोक्ष मनहीं का कारण है, जिसका मन स्थिर है, तिन्हें घर और बन समान है। तुम किसी बात की चिन्ता मत करो आनन्द से घर में बैठ नीति सहित राज्य कर प्रजा को पालो, गो ब्राह्मण की सेवा में रहो, झूँठ मत भाषो, काम लोभ क्रोध अभिमान तजो भाव, भुक्ति से हरि को भजो, तुम निस्सन्देह परम पद पाओगे। संसार में आय जिसने अभिमान किया वह बहुत न जिया, देखो अभिमान ने किसे किसे न खो दिया।

चौपाई

सहस बाहु अति बली बखान्यो। परशुराम ताको बल भान्यो॥
बेणु भूप रावण हो भयो। गर्व आपने सोऊ गयो॥
भौमासुर बाणासुर कंस। भये गर्व ते ते बिध्वंस॥
श्रीमद् गर्व करो जिन कोय। त्यागे गर्व सेा निर्भय होय॥

इतना कह श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सब राजाओं से कहा कि अब तुम अपने अपने घर जाओ कुटुम्ब से मिल अपना राजपाट सँभाल हमारे न पहुँचते पहुँचते हस्तिनापुर में राजा युधिष्ठिर के यहाँ राजसूय यज्ञ में शीघ्र आओ, महाराज ! इतना बचन श्रीकृष्णचन्द्र जी के मुख से निकलते ही सहदेव ने सब राजाओं के जाने का सामान जितना चाहिये तितना बात की बात में ला उपस्थित किया। वे ले प्रभु से बिदा हो अपने अपने

देश को गये और श्रीकृष्णचन्द्र जी भी सहदेव को साथ ले भीम अर्जुन सहित वहाँ से चले चले आनन्द मङ्गल से हस्तिनापुर आये। आगे प्रभु ने राजा युधिष्ठिर के पास जाय जरासन्ध के मारने के समाचार और सब राजाओं के छुड़ाने के ब्योरे समेत कह सुनाये। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द जी के हस्तिनापुर पहुँचते पहुँचते वे सब राजा भी अपनी अपनी सेना ले भेंट सहित आन पहुँचे और राजा युधिष्ठिर से भेंट कर भेंट दी श्रीकृष्णचन्द्र जी की आज्ञा ले हस्तिनापुर के चारों ओर जा उतरे और यज्ञ की टहल में आ उपस्थित हुए।

७५—शिशुपाल मोक्ष

श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! जैसे यज्ञ राजा युधिष्ठिर ने किया और शिशुपाल मारा गया, तैसे मैं सब कथा कहता हूँ तुम चित्त दे सुनो। बीस सहस्र आठ सौ राजाओं के जाते ही चारों ओर के और जितने राजा थे क्या सूर्यवंशी और क्या चन्द्रवंशी तितने सब आय हस्तिनापुर में उपस्थित हुए। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र और राजा युधिष्ठिर ने मिल कर सब राजाओं का सब भाँति शिष्टाचार कर समाधान किया और हर एक को एक एक काम यज्ञ का सौंपा। आगे श्रीकृष्णचन्द्र जी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि, महाराज! भीम अर्जुन नकुल सहदेव सहित हम पाँचों भाई तो सब राजाओं को साथ ले ऊपर की टहल करैं और आप ऋषि मुनि ब्राह्मणों को बुलाय यज्ञ का आरम्भ कीजिये। महाराज! इतनी बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने सब ऋषि मुनि ब्राह्मणों को बुलाय कर पूछा कि, महाराज! जो जो बस्तु यज्ञ में चाहिये सो सो आज्ञा कीजै। महाराज! इस बात के सुनते

ही ऋषि मुनि ब्राह्मणों ने ग्रंथ देख देख यज्ञ की सब सामग्री एक पत्र पर लिख दी। और राजा ने वहीं मँगवाय उनके आगे धरवा दीं। ऋषि मुनि ब्राह्मणों ने मिल यज्ञ की बेदी रची, चारों बेद के सब ऋषि मुनि ब्राह्मण वेदी के बीच आसन बिछाय बिछाय जा बैठे। पुनि पवित्र होय स्त्री सहित गाँठ जोड़ बाँध राजा युधिष्ठिर भी आय बैठे और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, शिशुपाल आदि जितने योद्धा और बड़े बड़े राजा थे वे भी आन बैठे। ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन कर गणेश पुजवाय, कलश स्थापन कर ग्रहस्थापन किया। राजा ने भरद्वाज गौतम, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, पाराशर, व्यास, कश्यप आदि बड़े बड़े ऋषि मुनि ब्राह्मणों का बरण किया और उन्होंने वेद मंत्र पढ़ पढ़ सब देवताओं का आवाहन किया और राजा से यज्ञ का सङ्कल्प करवाय होम का आरम्भ किया। महाराज! मंत्र पढ़ पढ़ ऋषि मुनि ब्राह्मण आहुति लगे देने और देवता प्रत्यक्ष हाथ बढ़ाय बढ़ाय लेने। उस समय ब्राह्मण वेद पाठ करते थे और सब राजा होमने की सामग्री ला ला देते थे और राजा युधिष्ठिर होमते थे कि, इसमें निर्द्वन्द यज्ञ पूर्ण हुआ और राजा ने पूर्णाहुति दी उस काल सुर नर मुनि सब राजा को धन्य धन्य कहने लगे और यक्ष गंधर्ब, किन्नर, बाजन बजाय बजाय यश गाय गाय फूल बर्षाने लगे। इतनी कथा कह श्री-शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! यज्ञ से निश्चिन्त हो राजा युधिष्ठिर ने सहदेव को बुलाय के पूँछा :—

चौ० पहिले पूजा काकी कीजै। अक्षत तिलक कौन को दीजै।
कौन बड़ो देवन को ईश। ताहि पूज हम नावैं शीश॥

सहदेव जी बोले कि महाराज! सब देवों के देव हैं बासु-देव, कोई नहीं जानता इनका भेव। ये हैं ब्रह्मा रुद्र इन्द्र के ईश,

इन्हीं को पहिले पूज नवाइये शीश जैसे तरुवर की जड़ में जल देने से सब शाखा हरी होती हैं, तैसे हरि की पूजा करने से सब देवता संतुष्ट होते हैं। यही जगत् के कर्त्ता हैं और यही उपजाते पालते मारते हैं। इनकी लीला है अनन्त, कोई नहीं जानता इनका अन्त। येई हैं प्रभु अलख अगोचर अविनाशी, इन्हीं के चरण कमल सदा सेवती हैं कमला भई दासी। भक्तों के हेतु बार बार लेते हैं अवतार, तनु धर करते हैं लोक व्यवहार।

चौ० बंधु कहत घर बैठे आवैं। अपनी माया मोहिं भुलावैं॥
महा मोह हम प्रेम भुलाने। ईश्वर को भ्राता करि जाने॥
इनते बड़ो न दीसत कोई। पूजा प्रथम इन्हीं को होई॥

महाराज! इस बात के सुनते ही सब ऋषि मुनि और राजा बोल उठे कि, राजा! सहदेव जो ने सत्य कहा, प्रथम पूजने योग्य हरि ही हैं। तब तो राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णचन्द्र जो को सिंहासन पर बैठाय आठों पटरानियों समेत चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य कर पूजा पुनि सब देवताओं ऋषियों मुनियों ब्राह्मणों और राजाओं की पूजा की, रंग रंग के जोड़े पहिनाय चन्दन केशर की खौरें कीं, फूलों के हार पहराय, सुगन्ध लगाय, यथायोग्य, राजा ने सब की मनुहार की, श्रीशुकदेव जो बोले कि, राजा।

चौपाई

हरि पूजत सब को सुख भयेा। शिशुपालहिं को शिर भू नयेा॥

कितनी एक बेर तक तो वह शिर झुकाये मनहीं मन कुछ शोच विचार करता रहा। निदान कालवश हो अति क्रोधकर सिंहासन से उतर सभा के बीच निस्संकोच निडर हो बोला

कि, इस सभा में धृतराष्ट्र, दुर्योधन, भीम, कर्ण, द्रोणाचार्य आदि सब बड़े बड़े ज्ञानी मानी हैं पर इस समय सबकी गति मति मारी गई। बड़े बड़े मुनीश बैठे रहे और नन्दगोप के सुत की पूजा भई और कोई कुछ न बोला। जिसने ब्रज में जन्म ले ग्वालबालों की जूँठी छाक खाई, तिसी की इस सभा में भई प्रभुताई बड़ाई।

चौपाई

ताहि बड़ो सब कहत अचेत। सुरपति को बलि कागहि देत॥

जिसने गोपी और ग्वालों से स्नेह किया, इस सभा में तिसही को सब से बड़ा साधु बनाय दिया। जिसने दूध दही, मही, माखन, घर घर चुराय खाया, उसी का यश सब ने मिल गाया। बाट घाट में जिनने लिया दान, उसी का यहाँ हुआ सन्मान। परनारी से जिसने छल बल कर भोग किया, सब ने मता कर उसी को पहिले तिलक दिया। ब्रज में से इन्द्र की पूजा जिसने उड़ाई और पर्वत की पूजा ठहराई, पुनि पूजा की सब सामग्री गिरि के निकट लिवाय ले जाय मिसकर आपही खाई, तौ भी उसे लाज न आई। जिसकी जाति पाँति और माता पिता कुल धर्म का नहीं ठिकाना तिसी को अलख अविनाशी कर सब ने माना। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! इस भाँति से कालवश होय राजा शिशुपाल अनेक अनेक बुरी बातें श्रीकृष्णचन्द्र जी को कहता था और श्रीकृष्णचन्द्र जी सभा के बीच सिंहासन पर बैठे सुन सुन एक बात पर एक एक लकीर खैंचते थे। इस बीच भीष्म, कर्ण, द्रोण, और बड़े बड़े राजा हरि-निन्दा सुन अति क्रोध कर बोले कि अरे मूर्ख! तू सभा में बैठा हमारे सन्मुख प्रभु की निन्दा करता है। रे चाण्डाल! चुप रह नहीं अभी

पछाड़ मार डालते हैं। महाराज ! यह कह शस्त्र ले ले सब राजा शिशुपाल के मारने को उठ धाये। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने सबको रोक कर कहा कि तुम इस पर शस्त्र मत करो, खड़े खड़े देखो यह आपसे आप ही मारा जाता है। मैं इसके सौ अपराध सहूँगा, क्योंकि मैंने बचन हारा है। सौ से बढ़ती न सहूँगा, इसीलिये मैं रेखा काढ़ता जाता हूँ। महाराज ! इतनी बात के सुनते ही सबने हाथ जोड़ श्रीकृष्णचन्द्र से पूँछा कि, कृपानाथ ! इसका क्या भेद है जो आप इसके सौ अपराध क्षमा करियेगा सो कृपा कर हमें समझाइये जो हमारे मन का सन्देह जाय। प्रभु बोले कि जिस समय यह जन्मा था तिस समय इसके तीन नेत्र और चार भुजा थीं। यह समाचार पाय इसके पिता दमघोष राजा ने ज्योतिषियों और बड़े बड़े पण्डितों को बुलाय के पूँछा कि यह लड़का कैसा हुआ ? इसका विचार कर मुझे उत्तर दो। राजा की बात सुनते ही पण्डित और ज्योतिषियों ने शास्त्र विचार के कहा कि, महाराज ! यह बड़ा बली और प्रतापी होगा और यह भी हमारे विचार में आता है कि जिसके मिलने से इसकी एक आँख और दो बाँह गिर पड़ेंगी यह उसी के हाथ मारा जायगा। इतना सुन इसकी मा महादेवी शूरसेन की बेटी बसुदेव की बहिन हमारी फूफी अति उदास भई और आठ पहर पुत्र ही की चिन्ता में रहने लगी। कितने एक दिन पीछे एक समय पुत्र को लिये पिता के घर मथुरा आई और इसे सबसे मिलाया जब यह मुझसे मिला तब इसकी एक आँख और दो बाँह गिर पड़ीं। तब फूफी ने मुझे बचन बद्ध करके कहा कि इसकी मीच तुम्हारे हाथ है तुम इसे मत मारियो, मैं यह भीख तुमसे माँगती हूँ। मैंने कहा—अच्छा सौ अपराध हम इसके न गिनेंगे, इस उपरान्त अपराध करेगा तो हनेंगे।

हम से यह बचन ले फूफू सब से बिदा हो इतना कह पुत्र सहित अपने घर गई कि, यह सौ अपराध क्यों करेगा, जो कृष्ण के हाथ से मरैगा। महाराज! इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्ण जी ने सब राजाओं के मन का भ्रम मिटाय उन लकीरों को गिना जो एक एक अपराध पर खैंची थीं, गिनते ही सौ से बढ़ती हुईं। तभी प्रभु ने सुदर्शनचक्र को आज्ञा दी उसने झट शिशुपाल का शिर काट डाला। उसके धड़ से जो ज्योति निकली सो एकबार तो आकाश को धाई फिर आय सबके देखत ही श्रीकृष्णचन्द्र के मुख में समाई, यह चरित्र देख सुर मुनि जयजयकार करने लगे और पुष्प बर्षाने लगे, उस काल श्रीमुरारी भक्त हितकारी ने उसे तीसरी मुक्ति दी और उसकी क्रिया की। इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूँछा कि, महाराज! तीसरी मुक्ति प्रभु ने किस भाँति दी सो मुझे समझाय के कहिये। श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! एक बार यह हिरण्यकशिपु हुआ, तब प्रभु ने नृसिंह अवतार ले तारा। दूसरी बेर रावण भया, तो हरि ने रामावतार ले इसका उद्धार किया। अब तीसरी बिरिया यह है इसी से तीसरी मुक्ति भई। इतना सुन राजा ने मुनि से कहा कि, महाराज! अब आगे कथा कहिये। श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! यज्ञ के हो चुकते ही राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को स्त्री सहित बागे पहिराय ब्राह्मणों को अगणित दान दिया। देने का काम यज्ञ में राजा दुर्योधन का था, द्वेष कर एक की ठौर अनेक दिये। इसमें उसका यश हुआ तौ भी वह प्रसन्न न हुआ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! यज्ञ के पूर्ण होते ही श्रीकृष्ण जी राजा युधिष्ठिर से बिदा हो सब सेना ले कुटुम्ब सहित हस्तिनापुर से चले चले

द्वारकापुरी पधारे। प्रभु के पहुँचते ही घर घर मंगलाचार होने लगा और सारे नगर में आनन्द हो गया।

७६—दुर्योधन-मानमर्दन

राजा परीक्षित बोले कि, महाराज! राजसूय यज्ञ होने से सब कोई प्रसन्न हुये, एक दुर्योधन अप्रसन्न हुआ। इसका कारण क्या है सो तुम मुझे समझाय के कहो जो मेरे मन का भ्रम जाय। श्रीशुकदेव जी बोले कि राजा! तुम्हारे पितामह बड़े ज्ञानी थे उन्होंने यज्ञ में जिसे जैसा देखा तिसे तैसा काम दिया। भीम को भोजन करवाने का अधिकारी किया; पूजा पर सहदेव को रक्खा। धन लाने को नकुल रहे। सेवा करने पर अर्जुन ठहरे, श्रीकृष्ण जी ने पाँव धोने और जूँठा पत्तल उठाने का काम लिया। दुर्योधन को धन बाँटने का कार्य दिया, और सब जितने राजा थे तिन्होंने एक एक काम बाँट लिया। महाराज! सब निष्कपट यज्ञ की टहल करते थे पर एक राजा दुर्योधन ही कपट सहित काम करता था, इससे वह एक की ठौर अनेक उठाता था, निज मन में यह बात ठान के कि इनका भण्डार टूटे तो अप्रतिष्ठा हो, पर भगवत्कृपा से अप्रतिष्ठा न हुई और यश होता था, इसलिये वह अप्रसन्न था और वह यह भी नहीं जानता था कि मेरे हाथ में चक्र है एक रुपया दूँगा तो चार इकट्ठे होंगे। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! अब आगे कथा सुनिये श्रीकृष्णचन्द्र जी के पधारते ही राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को खिलाय पिलाय पहराय अति शिष्टाचार कर बिदा किया, वे दल साज साज अपने अपने देश को सिधारे। आगे राजा युधिष्ठिर पाण्डव और कौरवों को ले गङ्गा स्नान को बाजे गाजे से गये। तीर पर जाय दण्डवत

कर रज लगाय आचमन कर स्त्री सहित नीर में पैठे उनके साथ सबने स्नान किया, पुनि न्हाय धोय सन्ध्या पूजा से निश्चिन्त होय बस्त्र आभूषण पहिन सब को साथ लिये राजा युधिष्ठिर कहाँ आते हैं कि जहाँ मय दैत्य ने मन्दिर अति सुन्दर सुवर्ण के रत्न जटित बनाये थे। महाराज! वहाँ जाय राजा युधिष्ठिर सिंहासन पर बिराजे उस काल गन्धर्व गुण गाते थे बन्दीजन यश बखानते थे, सभा के बीच पातुर नृत्य करती थीं घर बाहर में मङ्गली लोग गाय बजाय मंगलाचार करते और राजा युधिष्ठिर की सभा इन्द्र की सभा सी हो रही थी। इस बीच राजा युधिष्ठिर के आने के समाचार पाय राजा दुर्योधन भी कपट स्नेह किये वहाँ मिलने को बड़ी धूम धाम से आया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! वहाँ मय ने चौक के बीच ऐसा काम किया था कि जो कोई जाता था तिसे थल में जल का भ्रम होता था और जल में थल का। महाराज! ज्यों दुर्योधन मन्दिर में पैठा त्यों उसे थल देख जल का भ्रम भया उसने बस्त्र समेट उठाय लिये, पुनि आगे बढ़ जल देख थल का धोखा हुआ ज्यों पाँव बढ़ाया त्यों उसके कपड़े भीगे। यह चरित्र देख सब सभा के लोग खिलखिला उठे, राजा युधिष्ठिर ने हँसी को रोक मुँह फेर लिया। महाराज! सब के हँस पड़ते ही राजा दुर्योधन अति लज्जित हो महा क्रोध कर उलटा फिर गया और सभा में बैठ कहने लगा—श्रीकृष्णचन्द्र का बल पाय युधिष्ठिर को अति अभिमान हुआ है, आज सभा में बैठ मेरी हँसी की, इसका पलटा मैं लूँ और उसका गर्व तोड़ूँ तो मेरा नाम दुर्योधन नहीं तो नहीं।

७७—शाल्वदैत्य-बध

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी हस्तिनापुर में थे तिसी समय शाल्व नाम दैत्य शिशुपाल का साथी जो रुक्मिणी के ब्याह में श्रीकृष्णचन्द्र जी के हाथ की मार खाय भागा था सेा मनहीं मन इतना कहने लगा, महादेव जी की तपस्या करके अब मैं अपना बैर यदुवंशियों से लूँगा ।

चौपाई

इन्द्रीजीत सबै बश कीनी । भूख प्यास सब ऋतु सह लीनी ॥
ऐसी बिधि तप लाग्यो करन । सुमिरै महादेव के चरन ॥
नित उठ मुठी रेत लै खाय । करै कठिन तप शिव मन लाय ॥
वर्ष एक याही बिधि गयो । तबही महादेव बर दयो ॥

कि आज से तू अजर अमर हुआ और एक रथ माया का तुझे मय दैत्य बना देगा । तू जहाँ जाने चाहेगा वह तुझे तहाँ ले जायगा । बिमान की भाँति त्रिलोकी में उसे मेरे बर से सब ठौर जाने की सामर्थ होगी । महाराज ! सदाशिव जी ने ज्यों बर दिया त्यों एक रथ आय इसके सन्मुख खड़ा हुआ । यह शिव जी केा प्रणाम कर रथ पर चढ़ द्वारकापुरी को धर धमका । वहाँ जाय नगर निवासियों को अनेक अनेक भाँति की पीड़ा उपजाने लगा । कभी अग्नि बर्षाता था, कभी जल, कभी वृक्ष उखाड़ नगर पर फेंकता था, कभी पहाड़, उसके डर से सब नगर निवासी अति भय मान हेा भाग राजा उग्रसेन के पास जा पुकारे कि, महाराज की दुहाई दैत्य ने आय नगर में अति धूम मचाई, जेा इसी भाँति उपाधि करेगा तेा केाई जीता न रहेगा । महाराज ! इतनी बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने प्रद्युम्न जी और शाम्ब को बुलाय के कहा

कि देखो हरि का पीछा ताक यह असुर आया है प्रजा को दुःख देने तुम इसका कुछ उपाय करो। राजा की आज्ञा पाय प्रद्युम्न जी सब कटक ले रथ पर बैठ नगर के बाहर लड़ने को जा उपस्थित हुए, और शाम्ब को भयातुर देख बोले कि तुम किसी बात की चिन्ता मति करौ मैं हरि प्रताप से इस असुर को बात की बात में मार लेता हूँ। इतना बचन कह प्रद्युम्न जी सेना ले शस्त्र पकड़ ज्यों उसके सन्मुख हुए त्यों उसने ऐसी माया की कि दिन की महा अंधेरी रात हो गई, प्रद्युम्न जी ने त्योंही तेज बाण चलाया यों महा अन्धकार को दूर किया कि ज्यों सूर्य का तेज कुहार को दूर करे। पुनि कई एक बाण उन्होंने ऐसे मारे कि उसका रथ अस्त व्यस्त हो गये और वह घबराकर कभी भाग जाता था कभी आय अनेक अनेक राक्षसी माया उपजाय उपजाय लड़ता था और प्रभु की प्रजा को अति दुःख देता था। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! दोनों ओर से महायुद्ध होता ही था इस बीच एकाएकी आय शाल्व दैत्य के मन्त्री प्रद्युमित ने प्रद्युम्न जी की छाती में एक गदा ऐसी मारी कि ये मूर्छा खाय गिरे। इनके गिरते ही वह किलकारी मार के पुकारा कि मैंने कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न को मारा, महाराज! यादव तो राक्षसों से महायुद्ध कर रहे थे, उसी समय प्रद्युम्न जी को मूर्च्छित देख दारुक सारथी का बेटा रथ में डाल रण से ले भागा और नगर में ले आया। चैतन्य होते ही प्रद्युम्न जी ने अति क्रोध कर सूत से कहा—

चौ० ऐसो नाहिं उचित हैं तोहिं। जान अचेत भजायो मोहिं॥
रण तज कै तू ल्यायेा धाम। यह तेा नहीं शूर को काम॥
यदुकुल में ऐसो नहिं कोय। तज के खेत जेा भाग्यो होय॥

क्या तैने कभी मुझे भागते देखा था ? जो तू आज मुझे रण से भगाय लाया। यह बात जो सुनेगा सो मेरी हँसी और निन्दा करेगा तैने यह काम भला न किया जो बिना काम कलङ्क का टीका लगा दिया। महाराज ! इतनी बात के सुनते ही सारथी रथ से उतर सन्मुख खड़ा हो हाथ जोड़ शिर नाय बोला कि, हे प्रभु ! तुम सब नीति जानते हो, ऐसा संसार में कोई धर्म नहीं जिसे तुम नहीं जानते, कहा है :—

चौपाई

रथी शूर जो घायल परै। ताहि सारथी लै नीकरे॥
जो सारथी परै खा घाय। ताहि बचाय रथी लै जाय॥
लागी प्रबल गदा अति भारी। मूर्च्छित ह्वै सुध देह बिसारी॥
तब हौं रण से ले नीसरयो। स्वामि द्रोह अपयश तें डरयो॥
घड़ी एक लीनो बिश्राम। अब चल कर कीजै संग्राम॥
तुम तें धर्म नीति जानिये। जग उपहास न मन आनिये॥
अब तुम सबही को बध करिहौ। माया मय दानव की हरिहौ॥

महाराज! ऐसे कह सूत प्रद्युम्न जी को जल के निकट ले गया वहाँ जाय उन्होंने मुख हाथ पाँव धोये सावधान होय कवच टोप पहिन धनुष बाण सँभाल सारथी से कहा—भला जो भया सो भया पर अब मुझे वहाँ ले चल जहाँ द्युमित यदुवंशियों से युद्ध कर रहा है। बात के सुनते ही सारथी बात की बात में रथ वहाँ ले गया जहाँ वह लड़ रहा था, जाते ही इन्होंने ललकार कर कहा कि तू इधर उधर क्या लड़ता है आ मेरे सन्मुख हो जो तुझे शिशुपाल के पास भेजूँ। यह बचन सुनते ही वह ज्यों प्रद्युम्न पर आय टूटा त्यों कई एक बाण मार इन्होंने उसे मार गिराया और शाम्ब ने भी असुरदल काट काट समुद्र में पाटा। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! जब असुरदल से युद्ध करते करते

द्वारका में सब यदुवंशियों को सत्ताईस दिन हुये, तब अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र जी हस्तिनापुर में बैठे बैठे द्वारका की दशा देख राजा युधिष्ठिर से कहा कि, महाराज! मैंने रात्रि स्वप्न में देखा कि द्वारका में महा उपद्रव हो रहा है और सब यदुवंशी अति दुःखी हैं इससे अब आज्ञा दो तो हम द्वारका को प्रस्थान करें, यह बात सुन राजा युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ कर कहा कि जो प्रभु की इच्छा। इतना बचन राजा युधिष्ठिर के मुख से निकलते ही श्रीकृष्ण बलराम सबसे बिदा हो ज्यों पुर के बाहर निकले त्यों क्या देखते हैं कि बाईं ओर एक हरिणी दौड़ी चली जाती है और सोंहों श्वान खड़ा सिर झड़ता है यह अशकुन देखि हरि ने बलराम जी से कहा कि, भाई! तुम सब को साथ ले पीछे आओ, मैं आगे चलता हूँ। राजा! भाई से यों कह श्रीकृष्णचन्द्र जी आगे जाय रणभूमि में क्या देखते हैं कि असुर यदुवंशियों को चारों ओर से बड़ी मार मार रहे हैं और वे निपट घबराय घबराय शस्त्र चलाय रहे हैं। यह चरित्र देख हरि ज्यों वहाँ खड़े हो कुछ भावित हुए त्यों पीछे से बलदेव जी भी जा पहुँचे। उस काल श्रीकृष्ण जी ने बलराम जी से कहा कि भाई! तुम जाय नगर और प्रजा की रक्षा करो मैं इन्हें मार चला आता हूँ। प्रभु की आज्ञा पाय बलदेव जी तो पुरी में पधारे और आप हरि वहाँ रण में गये जहाँ प्रद्युम्न जी शाल्व से युद्ध कर रहे थे। यदुपति के आते ही शङ्खध्वनि हुई और सबने जाना कि श्रीकृष्णचन्द्र आये। महाराज! प्रभु के जाते ही शाल्व अपना रथ उड़ाय आकाश में ले गया और वहाँ से अग्निमय बाण वर्षाने लगा। उस समय श्रीकृष्ण जी ने सोलह बाण गिन कर ऐसे मारे कि उसका रथ और सारथी उड़ गया और लड़-खड़ाय नीचे गिरा; गिरते ही सँभाल कर एक बाण उसने हरि की भुजा में मारा और यों पुकारा,—रे कृष्ण खड़ा रह। मैं युद्ध कर तेरा

बल देखता हूँ। तैने तो शङ्खासुर, भौमासुर औ शिशुपाल आदि बड़े बड़े बलवान् योद्धा छल बल कर मारे हैं पर अब मेरे हाथ से तेरा बचना कठिन है।

चौ० मोसों तोहिं परयो अब काम। कपट छाँड़ि कीजो संग्राम॥
बाणासुर भौमासुर बरी। तेरो मग देखत हैं हरी॥
पठऊँ तहाँ बहुरि नहिं आवै। भाजे तू न बड़ाई पावै॥

यह बात सुन ज्यों श्रीकृष्ण जी ने इतना कहा कि, रे मूर्ख! अभिमानी कायर क्रूर! जो हैं क्षत्री गम्भीर धीर शूर वे पहिले किसी से बड़ा बोल नहीं बोलते, इतना सुन उसने दौड़ कर हरि पर एक गदा अति क्रोध कर चलाई, सो प्रभु ने सहज स्वभाव ही काट गिराई; पुनि श्रीकृष्णचन्द्र जी ने उसके एक गदा मारी वह गदा खाय, माया की ओट में जाय दो घड़ी मूर्च्छित रहा। फिर कपटरूप बनाय प्रभु के सन्मुख आय बोला :—

दो० मात तिहारी देवकी, पठयो मोहिं अकुलाय।
रिपु सालभ बसुदेव को, पकरे लीनो जाय॥

महाराज! वह असुर इतना बचन सुनाय वहाँ से जाय माया का बसुदेव बनाय बाँध लाय श्रीकृष्णचन्द्र के सों हीं आन बोला- रे कृष्ण! देख मैं तेरे पिता को बाँध लाया और अब इसका शिर काट सब यदुबंशियों को मार समुद्र में पाटूँगा, पीछे तुझे मार एकछत्र राज करूँगा! महाराज! ऐसे कह उसने माया के बसुदेव का शिर पछाड़ के श्रीकृष्ण के देखते काट डाला और बरछी के फल पर रख सब को दिखाया। यह माया का चरित्र देख पहिले तो प्रभु को मूर्च्छा आई पुनि देह सँभाल मन ही मन कहने लगे कि, यह क्यों कर हुआ? जो यह बसुदेव जी को बलराम जी के रहते द्वारका से पकड़ लाया, क्या यह

उनसे भी बली है ? जो उनके सन्मुख से बसुदेव जी को ले निकल आया।

महाराज ! इसी भाँति की अनेक अनेक बातें कितनी एक बेर लग आसुरी माया में आय प्रभु ने की और महा भावित रहे। निदान ध्यान कर हरि ने देखा तो सब आसुरी माया की छाया का भेद पाया। तब तो श्रीकृष्णचन्द्र जी ने उसे ललकारा, प्रभु की ललकार सुन वह आकाश को गया और लगा वहाँ से प्रभु पर शस्त्र चलाने। बीच श्रीकृष्ण जी ने कई एक बाण ऐसे मारे कि वह रथ समेत समुद्र में गिरा, गिरते ही शल्व गदा ले प्रभु पर झपटा तब तो हरि ने उसे अति क्रोध कर सुदर्शन चक्र से मार गिराया ऐसे कि जैसे सुरपति ने बृत्रासुर को मार गिराया था। महाराज ! उसके गिरते ही शीश की मणि निकल भूमि पर गिरी और ज्योति श्रीकृष्णचन्द्र के मुख में समाई।

७८—सूत-बध

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज ! अब मैं शिशुपाल के भाई दन्तवक्र और विदूरथ की कथा कहता हूँ कि जैसे वे मारे गये। जब से शिशुपाल मारा गया तब से वे दोनों श्रीकृष्णचन्द्र जी से अपने भाई का पलटा लेने का बिचार किया करते थे। निदान शाल्व और द्युमित के मरते ही अपना सब कटक ले द्वारकापुरी पर चढ़ आये और चारों ओर से घेर लगे अनेक अनेक प्रकार के यंत्र और शस्त्र चलाने।

चौ० परा नगर में खर भर भारी। सूत पुकार रथ चढ़े मुरारी॥

आगे श्रीकृष्ण जी नगर के बाहर जाय वहाँ खड़े हुये कि, जहाँ अति कोप किये शस्त्र लिये वे दोनों असुर लड़ने को उपस्थित

थे। प्रभु को देखते ही दन्तवक्र महा अभिमान कर बोला कि, रे कृष्ण! तू पहिले अपना शस्त्र चलाय ले पीछे तुझे मैं मारूँगा। इतनी बात मैंने इसलिये तुझसे कही कि मरती समय तेरे मन में यह अभिलाषा न रहे कि मैंने दन्तवक्र पर शस्त्र न किया, तू ने तो बड़े बड़े बली मारे हैं पर अब मेरे हाथ से जीता न बचेगा। महाराज! ऐसे कितने एक बेर दुष्ट बचन कह दन्तवक्र ने प्रभु पर गदा चलाई, सो हरि ने सहज ही में काट गिराई। पुनि दूसरी गदा ले हरि से महा युद्ध करने लगा तब तो भगवान् ने उसे मार गिराया और उसका जी निकल प्रभु के मुख में समाया। आगे दन्तवक्र का मरना देख विदूरथ जो युद्ध करने को चढ़ आया, त्योंहीं श्रीकृष्ण जी ने सुदर्शन चक्र चलाया उसने विदूरथ का शिर मुकुट कुण्डल समेत काट गिराया। पुनि सब असुर दल को मार भगाया, उस काल :—

चौ० फूले देव पुष्प बरषावें। किन्नर चारण हरि यश गावें॥
सिद्ध साधु विद्याधर सारे। जय जय चढ़े विमान पुकारे॥

पुनि सब बोले कि महाराज! आपकी लीला अपरम्पार है कोई इसका भेद नहीं जानता। प्रथम हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष भये, पीछे रावण और कुम्भकर्ण अब ये दन्तवक्र और शिशुपाल हो आये, तुमने तीनों बेर इन्हें मारा और परम मुक्ति दी, इससे तुम्हारी गति कुछ किसी से जानी नहीं जाती, महाराज! इतना कह देवता तो प्रभु को प्रणाम कर चले गये और हरि बलराम जी से कहने लगे कि, भाई! कौरव और पाण्डवों से हुई लड़ाई अब क्या करें? बलदेव जी बोले—कृपानिधान! कृपा कर आप हस्तिनापुर को पधारिये, तीर्थ यात्रा कर पीछे से मैं भी आता हूँ इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! यह बचन सुन श्रीकृष्णचन्द्र जी तो वहाँ को पधारे, जहाँ कुरु-

क्षेत्र में कौरव और पाण्डव महाभारत युद्ध करते थे और बलराम जी तीर्थ यात्रा को निकले। आगे सब तीर्थ करते करते बलदेव जी नैमिषारण्य में पहुँचे तो वहाँ क्या देखते हैं कि एक और ऋषि मुनि की सभा में सिंहासन बैठे सूत जी कथा बाँच रहे हैं। इनको देखते ही शौनकादि सब ऋषि मुनियों ने उठ कर प्रणाम किया और सूत सिंहासन पर गद्दी लगाये बैठा देखता रहा। महाराज! सूत के न उठते ही बलराम जी ने शौनकादिक सब ऋषि मुनियों से कहा कि इस मूर्ख को किसने वक्ता किया और व्यासासन दिया। वक्ता चाहिये भक्तिवन्त विवेकी और ज्ञानी, यह है गुणहीन कृपण और अति अभिमानी, पुनि चाहिये निर्लोभी और परमार्थी, यह है महालोभी और अपस्वार्थी, ज्ञानहीन अविवेकी को यह व्यास गद्दी फबती नहीं, इसे मारें तो क्या? पर यहाँ से निकाल दिया चाहिये। इस बात के सुनते ही शौनकादि बड़े बड़े मुनि ऋषि अति बिनती कर बोले कि, महाराज! तुम हो बीर धीर सकल धर्म नीति के ज्ञाता, यह है कायर अधीर अविवेकी अभिमानी अज्ञान इसका अपराध क्षमा कीजे, क्योंकि यह व्यास गद्दी पर बैठा है। और ब्रह्मा ने यज्ञ कर्म के लिये इसे यहाँ स्थापित किया है।

चौपाई

आसन गर्व मूढ़ मन धरयो। उठि प्रणाम तुम को नहिं करयो॥
यही नाथ याको अपराध। परो चूक है तो यह साध॥
सूदहि मारे पातक होय। जग में भलो कहै नहिं कोय॥
निष्फल बचन न जाय तिहारो। यह तुम निज मन माँह बिचारो॥

महाराज! इतनी बात के सुनते ही बलराम जी ने एक कुश उठाय सहज स्वभाव सूत को मारा, उसके लगते ही वह मर

गया। यह चरित्र देख शौनकादि ऋषि मुनि हाहाकार कर अति उदास हो बोले कि, महाराज! जो बात होनी थी सो तो हुई पर अब कृपा कर हमारी चिन्ता मेटिये। प्रभु बोले—तुम्हें किस बात की चिन्ता है सो कहो हम पूरी करैं। मुनियों ने कहा—महाराज! हमारे यज्ञ करने में किसी बात का विघ्न न होय हमारी यही वासना है सो पूरी कीजै और जगत् में यश लीजै। इतना बचन मुनियों के मुख से निकलते ही अन्तर्यामी बलराम जी ने सूत के पुत्र को बुलाय व्यास-गद्दी पर बैठाय के कहा यह अपने बाप से अधिक वक्ता होगा और मैंने इसे अमर पद दे चिरञ्जीव किया, अब निश्चिन्ताई से यज्ञ करो।

७६—श्रीबलराम-तीर्थकरण

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! बलराम जी की आज्ञा पाय शौनकादि सब ऋषि मुनि अति प्रसन्न हो ज्यों यज्ञ करने लगे त्यों इल्वल नाम दैत्य बल्वल का बेटा आय महा मेघ कर बादल गरजाय बड़ी भयङ्कर अति काली आँधी चलाय लगा आकाश से रुधिर और मल मूत्र बर्षावने और अनेक अनेक उपद्रव मचाने।

महाराज! दैत्य की यह अनीति देख बलदेव जी ने हल मूसल को आवाहन किया, वे आय उपस्थित हुए। पुनि महा क्रोध कर प्रभु ने इल्वल को हल से खैंच एक मूसल उसके शिर में ऐसे मारा कि,

चौ० फूट्यो मस्तक छूट्यो प्रान। रुधिर प्रवाह भयो तिहि थान॥
कर भुज डारि परयो विकरार। निकरे लोचन राते बार॥

इल्वल के मरते ही सब मुनियों ने अति सन्तुष्ट हो बलदेवी जी की पूजा की और बहुत सी स्तुति कर भेंट दी। फिर

बलराम सुखधाम वहां से बिदा हो तीर्थयात्रा को निकले तो, महाराज ! सब तीर्थ कर पृथ्वी प्रदक्षिणा करते करते वहाँ पहुँचे कि जहाँ कुरुक्षेत्र में दुर्योधन और भीमसेन महायुद्ध करते थे और पाण्डव समेत श्रीकृष्णचन्द्र और बड़े बड़े राजा खड़े देखते थे, बलराम जी के जाते ही दोनों ने प्रणाम किया एक ने गुरु जान दूसरे ने बंधु मान। महाराज ! उन दोनों को लड़ता देख बलदेव जी बोले :—

चौ० सुभट समान प्रबल दोउ बीर। अब संग्राम तजहु तुम धीर॥
कौरव पांडु को राखहु वंश। बंधु मित्र सब भये विध्वंस॥
दोऊ सुनि बोले शिर नाय। अब रण तें उतरयो नहिं जाय॥

पुनि दुर्योधन बोला कि, गुरुदेव ! मैं आप के सन्मुख झूँठ नहीं भाषता आप मेरी बात मन दे सुनिये। यह जो महाभारत युद्ध होता है और लोग मारे गये हैं और जाते हैं और जायँगे सो तुम्हारे भाई श्रीकृष्णचन्द्र जी के मते से, पाण्डव केवल श्रीकृष्णचन्द्र जी के बल से लड़ते हैं, नहीं तो इनकी क्या सामर्थ्य थी जो ये कौरवों से लड़ते। बावरे तो हरि के वश ऐसे हो रहे हैं कि जैसे काठ की पुतली नटुए के वश हो जिधर वह चलावे तिधर वह चले, उनको यह उचित न था जो पाण्डवों की सहायता कर हम से इतना द्वेष करें। दुश्शासन की भीम से भुजा उखड़ाई और मेरी जाँघ में गदा लगवाई ! तुम से अधिक हम क्या कहेंगे ? इस समय,

चौ० जो हरि करें सोई अब होय। ये बातें जानै सब कोय।

यह वचन दुर्योधन के मुख से निकलते ही इतना कह बलराम जी श्रीकृष्णचन्द्र के निकट आये कि तुम भी उपाधि करने में कुछ घाट नहीं। और बोले कि, भाई ! तुमने यह क्या किया जो युद्ध करवाय दुश्शासन की भुजा उखड़वाई और

दुर्योधन की जांघ कटवाई। यह धर्म की रीति नहीं है कि कोई बलवान् हो किसी की भुजा उखाड़े कै कटि के नीचे शस्त्र चलावे, हां धर्म यह है कि एक एक को ललकार सन्मुख शस्त्र करे। श्री-कृष्णचन्द्र बोले कि भाई! तुम नहीं जानते थे कौरव बड़े अधर्मी अन्यायी हैं इनकी अनीति कुछ कही नहीं जाती। पहिले इन्होंने दुश्शासन शकुनी भगदत्त के कहे जुआ खेल कपट कर राजा युधिष्ठिर का सर्वस्व जीत, दुश्शासन द्रौपदी को हाथ पकड़ लाया, इससे उनके हाथ भीमसेन ने उखाड़े। दुर्योधन ने सभा के बीच द्रौपदी को जांघ पर बैठने को कहा, इसी से उसकी जांघ काटी गई। इतना कह पुनि श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, भाई! तुम नहीं जानते इसी भांति की जेा जेा अनीति कौरवों ने पाण्डवों के साथ की हैं सेा हम कहां तक कहैंगे। इससे यह भारत की आग किसी रीति से अब न बुझेगी तुम इसका कुछ उपाय मत करेा। महाराज! इतना वचन प्रभु के मुख से निकलते ही बलराम जी कुरुक्षेत्र से चल द्वारकापुरी में आये और राजा उग्रसेन शूरसेन से भेंट कर हाथ जेाड़ कहने लगे कि, महाराज! आप के पुण्य प्रताप से हम सब तीर्थयात्रा तेा कर आये, पर एक अपराध हम से हुआ। राजा उग्रसेन बोले सेा क्या? बलराम जी ने कहा कि, महाराज! नैमिषारण्य जाय हमने सूत को मारा तिसकी हत्या हमें लगी। अब आप की आज्ञा होय तेा पुनि नैमिषारण्य जाय यज्ञ के दर्शन कर तीर्थ न्हाय हत्या का पाप मिटाय आवें, पीछे ब्राह्मण भोजन करवाय जाति को जिमावें जिससे जग में यश पावें, राजा उग्रसेन—बोले अच्छा आप हो आइये। महाराज! राजा की आज्ञा पाय बलराम जी कितने एक यदुवंशियों को साथ ले नैमिषक्षेत्र में जाय स्नान दान कर शुद्ध कर हो आये। पुनि पुरोहित को बुलाय, होम करवाय, ब्राह्मण जिमाय, जाति को खिलाय, लोक रीति

कर पवित्र हुए । इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले, महाराज ।

चौ० जो यह चरित्र सुनै मन लाय । ताको सबही पाप नशाय ॥

८०—सुदामा-द्वारकागमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! अब मैं सुदामा की कथा कहता हूँ कि, जैसे वह प्रभु के पास गया और उसका दरिद्र कटा, सो तुम मन दे सुनो । दक्षिण दिशा की ओर है एक द्राविड़ देश, तहाँ विप्र और वणिक बसते थे नरेश । जिस के राज्य में घर घर होता था भजन स्मरण और हरि का ध्यान, पुनि सब करते थे तप, यज्ञ, धर्म, दान और साधु सन्त गौ ब्राह्मण का सन्मान ।

चौ० ऐसे सबही तिहि ठौर । हरि बिन कछू न जाने और ॥

तिसी देश में सुदामा नाम ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्र का गुरुभाई अतिदीन तनक्षीण महादरिद्री ऐसा कि जिसके घर पै न घास न खाने को कुछ पास रहता था । एक दिन सुदामा की स्त्री दरिद्र से अति घबराय, महादुःख पाय, पति के निकट जाय, भय खाय, डरती काँपती बोली कि, महाराज ! अब इस दरिद्र के हाथ से महादुःख पाते हैं । जो आप इसे खोया चाहिये तो मैं एक उपाय बताऊँ । ब्राह्मण बोला—सो क्या ? कहा तुम्हारे परम मित्र त्रिलोकीनाथ द्वारकावासी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द हैं, जो उनके पास जाओ तो यह जाय । क्योंकि वे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के दाता हैं । महाराज ! जब ब्राह्मणी ने ऐसा समझाय कर कहा तब सुदामा बोला कि, प्रिये ! बिन दिये श्रीकृष्णचन्द्र भी किसी को कुछ नहीं देते, मैं भली भाँति से

जानता हूँ कि जन्म भर मैंने किसी को कभी कुछ नहीं दिया, बिन दिये कहाँ से पाऊँगा ? हाँ तेरे कहे से जाऊँगा तो श्रीकृष्ण जी के दर्शन कर आऊँगा। इस बात के सुनते ही ब्राह्मणी ने एक अति पुराने धौले वस्त्र में थोड़े से चावल बाँध ला दिये, प्रभु की भेंट के लिये और डोरी लोटा लाठी ला आगे धरी। तब तो सुदामा डोरी लोटा काँधे पर डाल चावल की पोटली काँख में दबाय, लाठी हाथ में ले गणेश को मनाय, श्रीकृष्ण जी का ध्यान कर, द्वारकापुरी को पधारा। महाराज ! बाट ही में चलते चलते सुदामा मन ही मन कहने लगा कि, भला धन तो मेरे प्रारब्ध में नहीं पर द्वारका जाने से श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द का दर्शन तो पाऊँगा। इसी भाँति से शोच बिचार करता करता सुदामा तीन पहर के बीच द्वारकापुरी में पहुँचा तो क्या देखता है कि नगर के चारों ओर समुद्र है और बीच में पुरी, वह पुरी कैसी है कि जिसके चहुँ ओर बन उपवन फल फूल रहे हैं, तड़ाग बापी इन्दारों पर रहँट परोह चल रहे हैं, ठौर ठौर गायों के यूथ के यूथ चर रहे हैं, तिनके साथ ग्वाल बाल न्यारे ही कुतूहल करते हैं। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! सुदामा बन उपवन की शोभा निरख पुरी के भीतर जाय देखे तो कञ्चन के मणिमय मन्दिर महासुन्दर जगमगाय रहे हैं, ठाँव ठाँव अथाइयों में यदुवंशी इन्द्र की सी सभा किये बैठे हैं, हाट बाट चौहटों में नाना प्रकार की वस्तु बिक रही हैं, घर घर जिधर तिधर गान दान हरि भजन और प्रभु का यश हो रहा है और सारे नगर निवासी महा आनन्द में हैं। महाराज ! यह चरित्र देखता देखता और श्रीकृष्णचन्द्र का मन्दिर पूँछता सुदामा जा प्रभु की सिंह पौर पर खड़ा हुआ। इसने किसी से डरते डरते पूँछा कि श्रीकृष्णचन्द्र जी कहाँ बिराजते हैं ? उसने

कहा कि, देखता ! आप मन्दिर के भीतर जाओ सन्मुख ही श्री-कृष्णचन्द्र जी रत्न सिंहासन पर बैठे हैं। महाराज ! इतना बचन सुन सुदामा जो भीतर गया तो देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र सिंहासन से उतर आगे बढ़ भेंट कर अति प्यार से हाथ पकड़ उसे ले गये। पुनि सिंहासन पर बिठाय पांव धोय चरणामृत लिया। आगे चन्दन चरच, अक्षत लगाय, पुष्प चढ़ाय, धूप दीप कर, प्रभु ने सुदामा की पूजा की।

चौ० इतनी करके जोरे हाथ। कुशल क्षेम पूँछत यदुनाथ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा से कहा कि, महाराज ! यह चरित्र देख श्रीरुक्मिणी जी समेत आठों पटरानियां और सोलह सहस्र एक सौ रानियां और सब यदुवंशी जो उस समय वहां थे मन ही मन यों कहने लगे कि, इस दरिद्री दुर्बल मलीन वस्त्रहीन ब्राह्मण ने ऐसा क्या अगले जन्म पुण्य किया था ? जो त्रिलोकीनाथ ने इसे इतना माना। महाराज अन्तर्यामी श्री-कृष्णचन्द्र उस काल सब के मन की बात समझ उनके सन्देह मिटाने को सुदामा से गुरू के घर की बातें करने लगे। भाई ! तुम्हें वह सुधि है जो एक दिन गुरुपत्नी ने हमें तुम्हें ईंधन लेने भेजा था और जब बन से ईंधन ले गठरियां बांध शिर पर धर घर को चले तब आंधी और मेह आया और लगा मूसलाधार बर्षाने जल थल चारों ओर भर गया हम तुम ने भींग कर महादुःख पाया जाड़ा खाय रात भर एक वृक्ष के नीचे रहे, भोर ही गुरुदेव बन में ढूँढ़ने आये और अति करुणा कर अशीश दे हमें तुम्हें अपने साथ घर लिवाय लाये।

इतना कह पुनि श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले कि, भाई ! जब से तुम गुरुदेव के यहां से बिछुड़े तब से हमने तुम्हारा समाचार न पाया था कि कहां थे और क्या करते थे ? अब आय दर्श दिखाय

तुमने हमें महा सुख दिया और घर पवित्र किया। सुदामा बोला— हे कृपासिन्धु ! दीनबन्धु ! स्वामी अन्तर्यामी ! तुम सब जानते हो कोई बात संसार में ऐसी नहीं जो तुम से छिपी हो।

८१—सुदामा-दारिद्रगमन

श्रीशुकदेव मुनि जी बोले कि, महाराज ! अन्तर्यामी श्रीकृष्ण जी ने सुदामा की बात सुन और उसके अनेक मनोरथ समझ हँस कर कहा कि, भाई ! भाभी ने हमारे लिये क्या भेंट भेजी है ? सो देते क्यों नहीं ? काँख में किस लिये दबाय रहे हो ? महाराज ! यह बचन सुन सुदामा तो सकुचाय शिर झुकाय रहा और प्रभु ने झट चावल की पोटली उसकी काँख से निकाल ली। पुनि खोल उसमें से अति रुचि कर दो मुट्ठी चावल खाय और ज्यों तीसरी मुट्ठी भरी त्यों श्री रुक्मणी जी ने हरि का हाथ पकड़ा और कहा कि, महाराज ! आपने दो लोक तो इसे दिये, अब अपने रहने को भी कोई ठौर रक्खोगे कै नहीं यह तो ब्राह्मण सुशील कुलीन अति वैरागी महात्यागी सा दृष्टि आता है क्योंकि इसे विभव पाने से कुछ हर्ष न हुआ। इससे मैंने जाना कि ये लाभ हानि समान जानते हैं, इन्हें पाने का हर्ष न जाने का शोक।

इतनी बात रुक्मिणी जी के मुख से निकलते ही श्रीकृष्ण-चन्द्र जी ने कहा कि, हे प्रिये ! यह मेरा परममित्र है। इसके गुण मैं कहाँ तक बखानूँ सदा सर्वदा मेरे स्नेह में मग्न रहता है और उसके आगे संसार के सुख को तृणवत् समझता है। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महा-राज ! ऐसे अनेक अनेक प्रकार की बातें कर प्रभु रुक्मिणी जी को

समझाय सुदामा को मन्दिर में लिवाय ले गये। आगे षट्रस भोजन करवाय, पान खिलाय, हरि ने सुदामा को फेन सी सेज पर ले जाय बैठाया। वह पथ का हारा थका तो था ही सेज पर जाय सुख पाय सो गया। प्रभु ने उस समय विश्वकर्मा को बुलाय के कहा कि तुम अभी जाय सुदामा के मन्दिर अति सुन्दर कञ्चन रत्न के बनाय तिन में अष्टसिद्धि नवनिधि धर आओ जो इसे किसी बात की काँक्षा न रहे। इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही विश्वकर्मा वहाँ जाय बात की बात में बनाय आया और हरि से कह अपने स्थान को गया। भोर होते ही सुदामा उठा स्नान ध्यान भजन पूजा से निश्चिन्त हो प्रभु के पास बिदा होने गया। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र जी मुख से तो कुछ न बोले पर प्रेम में मग्न हो आँखें डबडबाय शिथिल हो देखते रहे। सुदामा बिदा हो प्रणाम कर अपने घर को चला और पन्थ में जाय मनहीं मन विचार करने लगा कि, भला भया जो मैंने प्रभु से कुछ न माँगा जो उनसे कुछ माँगता तो वे देते तो सही पर मुझे लोभी लालची समझते। कुछ चिन्ता नहीं, ब्राह्मणी को मैं समझाय लूँगा। श्री कृष्णचन्द्र जी ने मेरा अति मान सन्मान किया और निर्लोभी जाना, यही मुझे लाख है। महाराज! ऐसे सोच बिचार करता करता सुदामा अपने ग्राम के निकट आया, तो क्या देखता है कि न वह ठाँव है न वह टूटी मड़ैया; वहाँ तो एक इन्द्रपुरी सी बस रही है। देखते ही सुदामा अति दुखित हो कहने लगा कि, हे नाथ! तूने यह क्या किया? एक दुःख तो था ही दूसरा और दुःख दिया। यहाँ से मेरी झोंपड़ी क्या हुई? और ब्राह्मणी कहाँ गई, किससे पूँछूँ और किधर ढूँढूँ। इतना कह द्वार पर जाय सुदामा ने द्वारपाल से पूँछा कि यह मन्दिर अति सुन्दर किसके हैं? द्वारपाल ने कहा श्रीकृष्णचन्द्र जी के

मित्र सुदामा के हैं। यह बात सुन सुदामा ज्यों कुछ कहने को हुआ त्यों भीतर से देख उसकी ब्राह्मणी अच्छे वस्त्र आभूषण पहिने नख शिख से शृङ्गार किये पान खाये सुगन्ध लगाये सखियों को साथ लिये पति के निकट आई।

चौ० पाँयन पर पाटम्बर डारे। हाथ जोड़ ये बचन उचारे॥
ठाढ़े क्यों मन्दिर पग धारो। मन सों शोच करो तुम न्यारो॥
तुम पाछे विश्वकर्म्मा आये। तिन मन्दिर पल माँझ बनाये॥

महाराज! इतनी बात ब्राह्मणी के मुख से सुन सुदामा जी मन्दिर में गये और अति विभव देख महा उदास भये। ब्राह्मणी बोली—स्वामी धन पाय लोग प्रसन्न होते हैं तुम उदास हुए इसका कारण क्या है? सो कृपा कर कहिये जो मेरे मन का सन्देह जाय। सुदामा बोला कि, हे प्रिये! यह माया बड़ी ठगनी है, इसने सारे संसार को ठगा है और ठगती है, और ठगैगी। सो प्रभु ने मुझे दी और मेरे प्रेम की प्रतीति न की मैंने उनसे कब माँगी थी जो उन्होंने मुझे दी? इसीसे मेरा चित्त उदास है। ब्राह्मणी बोली स्वामी! तुमने तो श्रीकृष्णचन्द्र जी से कुछ न माँगा था पर वे अन्तर्यामी घट घट की जानते हैं मेरे मन में धन की बासना थी, सो प्रभु ने पूरी की; तुम अपने मन में और कुछ मत समझो। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! इस प्रसंग को जो सदा सुने सुनावेगा, सो जग जगत् में आय दुःख कभी न पावेगा, और अन्त काल बैकुण्ठ धाम जावेगा।

८२—श्रीकृष्ण बलराम-कुरुक्षेत्र गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! अब मैं प्रभु के कुरुक्षेत्र जाने की कथा कहता हूँ तुम चित्त दे सुनो कि जैसे द्वारका से

सब यदुबंशियों को साथ ले श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी सूर्य्यग्रहण नहाने कुरुक्षेत्र गये। राजा ने कहा—महाराज! आप कहिये मैं मन दे सुनता हूँ। पुनि श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! एक समय सूर्य्यग्रहण के समाचार पाय श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव जी ने राजा उग्रसेन के पास जाय के कहा कि, महाराज बहुत दिन पीछे सूर्य्यग्रहण आया है, जो इस पर्व को कुरुक्षेत्र में चल कर स्नान कीजे तो बड़ा पुण्य होय, क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि कुरुक्षेत्र में जो दान पुण्य करिये सो सहस्र गुण होय। इतनी बात के सुनते ही यदुवंशियों ने श्रीकृष्णचन्द्र जी से पूँछा कि, महाराज! कुरुक्षेत्र ऐसा तीर्थ कैसे हुआ? सो कृपा कर हम से समझाय के कहिये। श्रीकृष्णचन्द जी बोले कि सुनो जमदग्नि ऋषि बड़े ज्ञानी ध्यानी तपस्वी तेजस्वी थे, तिनके तीन पुत्र हुए। उनमें सब से बड़े परशुराम, सो वैराग कर घर छोड़ चित्रकूट में जाय रहे और सदाशिव की तपस्या करने लगे। लड़का के होते ही जमदग्नि ऋषि गृहस्थाश्रम छोड़ वैराग कर स्त्री सहित बन में जाय तप करने लगे। उनकी स्त्री का नाम रेणुका सो एक दिन अपनी बहिन को नौतने गई उसकी बहिन राजा सहस्रार्जुन की स्त्री थी, न्योता देते ही अहंकार कर राज सहस्रार्जुन की स्त्री रेणुका की बहिन हँस कर बोली कि, बहिन! हमें हमारे कटक समेत जिमाय सको तो न्योता दो नहीं तो न दो; महाराज! यह बात सुन रेणुका अपना सा मुख ले चुप चाप वहाँ से उठ अपने घर आई। इसे उदास देख जमदग्नि ऋषि ने पूँछा कि आज क्या है जो तू अनमनी हो रही है? महाराज! बात के पूछते रेणुका ने रोकर सब ज्यों की त्यों बात कही। सुनते ही जमदग्नि ऋषि ने स्त्री से कहा कि अच्छा तू जाय के अभी अपनी बहिन को कटक समेत न्योत आ। पति की आज्ञा पाय

रेणुका बहिन के घर जाय न्योत आई। उसकी बहिन ने अपने स्वामी से कहा कि कल तुम्हें हमें सब दल समेत जमदग्नि ऋषि के यहाँ भोजन करने जाना है। स्त्री की बात सुन अच्छा कह वह हँस कर चुप हो रहा। भोर होते ही जमदग्नि उठ कर राजा इन्द्र के पास गये और कामधेनु माँग लाये, पुनि जाय राजा सहस्रार्जुन को बुलाय लाये वह कटक समेत आया तिसे जमदग्नि जी ने इच्छा भोजन खिलाया। कटक समेत भोजन कर राजा सहस्रार्जुन अति लज्जित हुआ और मन ही मन कहने लगा कि इसने इतने लोगों की सामग्री रात भर में कहाँ पाई और कैसे बनाई? इसका भेद कुछ जाना नहीं जाता। इतना कह बिदा होय उसने अपने घर जाय यों कह एक ब्राह्मण को भेज दिया कि देवता! तुम जमदग्नि के घर जाय इस बात का भेद अब लाओ कि उसने किसके बल से एक दिन के बीच मुझे कटक समेत न्योत जिमाया। इसी बात के सुनते ही ब्राह्मण ने झट जाय देख आय सहस्रार्जुन से कहा कि, महाराज! उसके घर में कामधेनु है, उसी के प्रभाव से उसने तुम्हें एक दिन में न्योत जिमाया। यह समाचार सुन सहस्रार्जुन ने उसी ब्राह्मण से कहा कि तुम जाय हमारी ओर से जमदग्नि ऋषि से कहो कि सहस्रार्जुन ने कामधेनु माँगी है। बात के सुनते ही वह ब्राह्मण संदेशा लै ऋषि के पास गया और उसने सहस्रार्जुन की कही बात कही। ऋषि बोले कि यह गाय हमारी नहीं जो हम दें; यह तो राजा इन्द्र की है, हम इसको दे नहीं सकते तुम जाय अपने राजा से कहो। बात के कहते ही ब्राह्मण ने आय राजा सहस्रार्जुन से कहा कि, महाराज! ऋषि ने कहा है कामधेनु हमारी नहीं; यह तो राजा इन्द्र की है, इसे हम दे नहीं सकते। इतनी बात ब्राह्मण के मुख से निकलते ही सहस्रार्जुन ने अपने कितने एक योद्धाओं को बुलाय के कहा

तुम अभी जाय जमदग्नि के घर से कामधेनु खोल लाओ। स्वामी की आज्ञा पाय योद्धा ऋषि के स्थान पर गये और ज्यों धेनु को खोल जमदग्नि के सन्मुख हो ले चले त्यों ऋषि ने दौड़ कर बाट में जाय कामधेनु को रोका! यह समाचार पाय क्रोध कर सहस्रार्जुन ने आ ऋषि का शिर काट डाला कामधेनु इन्द्र के यहाँ गई रेणुका आय पति के पास खड़ी हुई।

दो० शिर खसेाट लोटत फिरै, बैठि रही गहि पाँय।
छाती पीटे रुदन करि, पिय पिय कहि चिल्लाय॥

उस काल रेणुका का चिल्लाना और रोना सुन दशों दिशा के दिग्पाल काँप उठे और परशुराम जी का तप करते आसन डिगा और ध्यान छूटा; ध्यान के छूटते ही ज्ञान कर परशुराम जी अपना कुठार ले वहाँ आये जहाँ पिता की लोथ पड़ी थी और माता रोती पीटती खड़ी थी। देखते ही परशुराम जी को महा कोप हुआ, इसमें रेणुका ने पति के मारे जाने का सब भेद पुत्र को रो रो कह सुनाया। बात के सुनते ही परशुराम इतना कह वहाँ गये जहाँ सहस्रार्जुन अपनी सभा में बैठा था कि माता "पहिले मैं अपने पिता के बैरी को मार आऊँ, तब आय पिता को उठाऊँगा"। उसे देखते ही परशुराम जी उसको पकड़ बोले—

चौ० अरे क्रूर कायर कुल द्रोही। तात मारि दुख दीनेा मोही॥

ऐसे कह जब फरसा ले परशुराम जी महाकोप में आये, तब वह भी धनुष बाण ले इनके सोंहीं खड़ा हुआ, दोनों बली महायुद्ध करने लगे। निदान लड़ते लड़ते परशुराम जी ने चार घड़ी के बीच में सहस्रार्जुन को मार गिराया, पुनि उसका कटक चढ़ आया, तिसे भी उसी के पास काट डाला। फिर वहाँ से

आय पिता की गति करी और माता को समझाय पुनि उसी ठौर परशुराम जी ने रुद्र यज्ञ किया, तब से वह स्थान क्षेत्र कह कर प्रसिद्ध हुआ। वहाँ जाकर ग्रहण में जो कोई स्नान, दान, तप, यज्ञ करता है उसे सहस्र गुण फल होता है।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! इस प्रसंग के सुनते ही सब यदुबंसियों ने प्रसन्न हो श्रीकृष्णचन्द्र जी से कहा कि, महाराज! शीघ्र कुरुक्षेत्र को चलिये अब बिलम्ब न करिये क्योंकि पर्व पहुँचा चाहिये। बात के सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी ने राजा उग्रसेन से पूँछा कि महाराज! सब कोई कुरुक्षेत्र को चलेंगे, यहाँ पुरी की चौकसी को कौन रहेगा? राजा उग्रसेन ने कहा अनिरुद्ध जी को रखि चलिये। राजा की आज्ञा पाय प्रभु ने अनिरुद्ध को बुलाय समझाय कर कहा कि, बेटा! तुम यहाँ रहो गौ ब्राह्मण की रक्षा करो और प्रजा को पालो हम राजा जी के साथ सब यदुबंशियों समेत कुरुक्षेत्र न्हाय आवें। अनिरुद्ध जी ने कहा जो आज्ञा, महाराज! एक अनिरुद्ध जी को पुरी रखवाली को छोड़ शूरसेन, बसुदेव, उद्धव, कृतवर्मा, अक्रूरादि छोटे बड़े सब यदुबंशी अपनी अपनी स्त्रियों समेत राजा उग्रसेन के साथ कुरुक्षेत्र चलने को उपस्थित हुए। जिस समय कटक समेत राजा उग्रसेन ने पुरी के बाहर डेरा किया उस काल सब जाय मिले; तिनके पीछे से श्रीकृष्णचन्द्र जी भी भाई भौजाई को साथ ले आठौं पटरानी और सोलह सहस्र एक सौ रानी और बेटों पोंतों समेत जाय मिले, प्रभु के पहुँचते ही राजा उग्रसेन ने वहाँ से डेरा उठाया और राजा इन्द्र की भाँति बड़ी धूमधाम से आगे को प्रस्थान किया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! कितने एक दिनों में चले चले श्रीकृष्णचन्द्र सब यदुबंशियों समेत आनन्द मंगल

से कुरुक्षेत्र में पहुँचे। वहाँ जाय पर्व में सब ने स्नान किया और यथा शक्ति हर एक ने हाथी, घोड़ा, पालकी, वस्त्र, रत्न, आभूषण, अन्न, धन, दान दिया। पुनि यहाँ सबों ने डेरे डाले। महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी के कुरुक्षेत्र जाने के समाचार पाय चहुँ ओर के राजा कुटुम्ब सहित अपनी अपनी सेना ले ले वहाँ आय आय श्रीकृष्ण बलराम जी को मिले, पुनि सब कौरव पाण्डव भी अपना अपना दल ले सकुटुम्ब वहाँ आय मिले। उस काल कुन्ती और द्रौपदी यदुबंशियों के रनिवास में जाय सब से मिलीं। आगे कुन्ती ने भाई के सन्मुख जाय कहा कि, भाई! मैं बड़ी अभागी जिस दिन से माँगी उसी दिन से दुःख उठाती हूँ, तुमने जब से ब्याह दी तब से मेरी सुधि कभी न ली और राम कृष्ण जो सब कहते हैं सुखदाई, उनको भी मेरी दया कुछ न आई। महाराज! इस बात के सुनते ही करुणाकर आँखें भर बसुदेव जी बोले कि, बहिन! तू मुझे कहती है? इसमें मेरा कुछ बश नहीं कर्म की गति जानी नहीं जाती, हरि इच्छा प्रबल है; देखो कंस के हाथ मैंने भी क्या क्या दुःख न पाया?

चौ० प्रभु अधीन सकल जग आय। कित दुख करो देख जग माय॥

महाराज! इतना कह बहिन को समझाय बुझाय बसुदेव जी वहाँ गये जहाँ सब राजा उग्रसेन की सभा में बैठे थे और राजा दुर्य्योधन आदि बड़े बड़े नृप और पाण्डव उग्रसेन की बड़ाई करते थे कि, राजा! तुम बड़े भागी हो जो सदा श्रीकृष्णचन्द्र का दर्शन पाते हो और जन्म का पाप गँवाते हो। जिन्हें शिव बिरञ्चि आदि सब देवता खोजते फिरें, सो प्रभु तुम्हारी सदा रक्षा करें। जिनका भेद योगी यती मुनि ऋषि न पावें, सो हरि तुम्हारी आज्ञा लेने आवें। जो हैं सब जग के ईश, वेई तुम्हें नवाते हैं शीश। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव

जी बोले कि, महाराज ! ऐसे सब राजा आय आय राजा उग्रसेन की प्रशंसा करते थे और वे यथायोग्य सब का समाधान। इसमें श्रीकृष्ण बलराम जी का आना सुन नन्द उपनन्द भी सकुटुम्ब और सब गोपी गोप ग्वाल बाल समेत आन पहुँचे। स्नान दान से सुचित हो नन्द जी वहाँ गये जहाँ पुत्र सहित बसुदेव देवकी बिराजते थे। इन्हें देखते ही बसुदेव जी उठकर मिले और दोनों ने परस्पर प्रेम कर ऐसे सुख माना कि जैसे कोई गई वस्तु पाय सुख माने। आगे बसुदेव जी ने नन्दराय जी से ब्रज की पिछली सब बात कह सुनाई, जैसे नन्दराय जी ने श्रीकृष्ण बलराम जी को पाला था। महाराज ! इस बात के सुनते ही नन्दराय जी नयनों में नीर भर बसुदेव जी का मुख देख रहे। उस काल श्रीकृष्ण बलदेव जी प्रथम नन्द यशोदा जी को यथायोग्य दण्डवत् कर पुनि ग्वालबालों से जाय मिले। तहाँ गोपियों ने आय हरि का चन्द मुख निरख निरख अपने नयन चकोरों को सुख दिया और जीवन का फल लिया। इतना कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! बसुदेव देवकी रोहिणी श्रीकृष्ण बलराम से मिल जो कुछ प्रेम नन्द उपनन्द यशोदा गोपी गोप ग्वालबालों ने किया सो मुझ से कहा नहीं जाता ; वह देखे ही बन आवे निदान सब को स्नेह में निपट व्याकुल देख श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले कि, सुनो,

चौ० मेरी भक्ति जो प्राणी करै। भवसागर निर्भय सो तरै॥
तन मन धन तुम अर्पण कीन्हों। नेह निरन्तर मोहिं सन चीन्हों॥
तुम सम बड़ भागी नहिं कोय। ब्रह्मा रुद्र इन्द्र किन होय॥
योगीश्वर के ध्यान न आयो। तुम सँग रह नित प्रेम बढ़ायो॥
हौं सब ही के घट घट रहो। अगम अगाध जु बाणी कहौं॥

जैसे तेज, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश का है देह में बास, तैसे सब घट में है मेरा प्रकाश। श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! जब श्रीकृष्णचन्द्र ने यह सब भेद कह सुनाया तब सब ब्रजवासियों को धैर्य्य आया।

८३—स्त्री-गीत वर्णन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! जैसे द्रौपदी और श्रीकृष्णचन्द्र जी की स्त्रियों में परस्पर बातें हुई, सो मैं प्रसंग कहता हूँ, तुम सुनो। एक दिन कौरव और पाण्डवों की स्त्रियाँ श्रीकृष्णचन्द्र जी की नारियों के पास बैठी थीं, प्रभु के चरित्र और गुण गाती थीं। इसमें कुछ बात जो चली तो द्रौपदी ने श्रीरुक्मिणी जी से कहा कि, हे सुन्दरी! कह तूने श्रीकृष्णचन्द्र जी को कैसे पाया, श्रीरुक्मिणी जी बोलीं,

चौ० सुनो द्रौपदी तुम चित लाय। जैसे प्रभु ने कियो उपाय॥
मेरे पिता का तो मनोरथ था कि मैं अपनी कन्या श्रीकृष्णचन्द्र को दूँ और भाई ने राजा शिशुपाल को देने का मन किया, वह बरात ले ब्याहने को आया और श्रीकृष्णचन्द्र जी को मैंने ब्राह्मण भेज बुलाया। ब्याह के दिन मैं जो गौरी की पूजा कर घर को चली, तो श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सब असुरदल के बीच से मुझे उठाय के रथ में बैठाय अपनी बाट ली। तिस पीछे समाचार पाय सब असुरदल प्रभु पर आय टूटा सो हरि ने सहज ही में मार भगाया, पुनि मुझे ले द्वारका पधारे। वहाँ जाते ही राजा उग्रसेन शूरसेन बसुदेव जी ने वेद की बिधि से श्रीकृष्णचन्द्र जी के साथ मेरा ब्याह किया। बिबाह के समाचार पाय मेरे पिता ने बहुत सा यौतुक भिजवाय दिया। इतनी कथा कह

श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! जैसे द्रौपदी जी ने रुक्मिणी से पूँछा और उन्होंने कहा तैसे ही सत्यभामा, जाम्बवती, कालिन्दी, भद्रा, सत्या, मित्रबिन्दा, लक्ष्मणा आदि श्रीकृष्णचन्द्र जी की सोलह सहस्र एक सौ आठ पटरानियों से पूँछा और एक एक ने सब समाचार अपने अपने विवाह का ब्योरे समेत कहा।

८४—बसुदेव-यज्ञकरण

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! अब मैं सब ऋषियों के आने की और बसुदेव जी के यज्ञ करने की कथा कहता हूँ तुम चित्त दे सुनो। महाराज! एक दिन राजा उग्रसेन, शूरसेन, बसुदेव, श्रीकृष्ण, बलराम, सब यदुवंशियों समेत सभा किये बैठे थे और सब देश देश के नरेश वहाँ उपस्थित थे कि इस बीच श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के दर्शन की अभिलाषा कर व्यास, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, पराशर, भृगु; पुलस्त्य, भरद्वाज, मार्कण्डेय आदि अट्ठासी सहस्र ऋषि वहाँ आये और तिनके साथ नारद जी भी, उन्हें देखते ही सभा की सभा सब उठ खड़ी हुई, पुनि सब दण्डवत् कर पाटम्बर के पाँवड़े डाल सबको सभा में ले गये। आगे श्रीकृष्णचन्द्र ने सब को आसन पर बैठाय पाँव धोय चरणामृत ले पिया और सारी सभा पर छिड़का फिर चन्दन अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवैद्य कर भगवान् ने सब की पूजा कर परिक्रमा की। पुनि हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हो हरि बोले कि धन्य भाग हमारे जो आपने आय घर बैठे दर्शन दिया, साधु का दर्शन गङ्गा के स्नान समान है। जिसने साधु का दर्शन पाया, उसने जन्म का पाप गँवाया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज।

चौ० श्रीभगवान् बचन जब कहे। तब सब ऋषी बिचारत रहे॥

कि जेा प्रभु है ज्येाति स्वरूप और सकल सृष्टि का कर्त्ता सेा जब यह बात कहे तब और की किसने चलाई? मन ही मन सब मुनियों ने जब इतना कहा तब नारद जी बेाले :—

चौ० सुनो सभा तुम सब मनलाय। हरि माया जानो नहिं जाय॥

ये आपही ब्रह्मा हेा उपजावते हैं, विष्णु हेा पालते हैं, शिव हेा संहारते हैं। इनकी गति अपरम्पार है, इसमें किसी की बुद्धि काम नहीं करती। पर इतना इनकी कृपा से हम जानते हैं कि साधुओं के सुख देने को और दुष्टों के मारने को और सनातनधर्म चलाने को बार बार अवतार ले प्रभु आते हैं। महाराज! ज्येां इतनी बात कह नारद जी सभा से उठने को हुये त्येां बसुदेव जी सन्मुख आय हाथ जेाड़ बिनती कर बेाले कि, हे ऋषिराज! मनुष्य संसार में आय कर्म से कैसे छूटे? सेा कृपा कर कहिये। महाराज! यह बसुदेव जी के मुख से निकलते ही सब ऋषि मुनि नारद जी का मुख देख रहे। तब नारद जी ने मुनियों के मन का अभिप्राय समझ कर कहा कि हे देवताओ! तुम इस बात का अचरज मत करेा, श्रीकृष्ण जी की माया प्रबल है। इसने सारे संसार केा जीत रक्खा है। इसी से बसुदेव जी ने यह बात कही और दूसरे ऐसे भी कहा है कि, जेा जन जिसके समीप रहता है यह उसका गुण प्रभाव और प्रताप माया के वश हेा नहीं जानता जैसे,

चौ० गंगा बासी अनतहिं जाय। तज के गंग कूप जल न्हाय।
यों ही यादव भये अयाने। ये नहिं कछू कृष्ण गति जाने॥

इतनी बात कह नारद जी ने मुनियों के मन का सन्देह मिटाया। बसुदेव जी से कहा कि महाराज! शास्त्र में कहा है

जेा नर तीर्थ, दान, तप, व्रत, यज्ञ, करता है सेा संसार के बन्धन से छूट परम गति पाता है। इस बात के सुनते ही प्रसन्न हो बसुदेव जी ने बात की बात में सब यज्ञ की सामा मँगाय उपस्थित की और ऋषियां मुनियों से कहा कि कृपा कर यज्ञ को आरम्भ कीजे। महाराज! बसुदेव जी के मुख से इतना वचन के निकलते ही सब ब्राह्मणों ने यज्ञ का स्थान बनाय सँवारा। इस बीच स्त्रियों समेत बसुदेव जी वेदी में जा बैठे। सब राजा और यादव यज्ञ की टहल में आ उपस्थित हुए। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा से कहा कि, महाराज! जिस समय बसुदेव जी वेदी में जा बैठे उस काल वेद की विधि से मुनियों ने यज्ञ का आरम्भ किया और लगे वेद मन्त्र पढ़ पढ़ आहुति देने और देवता सदेह आय आय भाग लेने। महाराज! जिस काल यज्ञ होने लगा उस काल उधर किन्नर, गन्धर्व, भेरी दुन्दुभी बजाय बजाय गुण गाते थे, चारण बन्दीजन यश बखानते थे, उर्वशी आदि अप्सरा नाचती थीं और देवता अपने अपने विमानों में बैठे फूल वर्षावते थे और इधर सब मंगली लेाग गाय बजाय मङ्गलाचार करते थे और याचक जयजयकार। इसमें यज्ञ पूर्ण हुआ और बसुदेव जी पूर्णाहुति दे ब्राह्मणों केा पाटम्बर पहिराय अलंकृत कर रत्न धन बहुत सा दिया और उन्होंने वेद मन्त्र पढ़ पढ़ आशीर्वाद दिया। आगे सब देश देश के नरेशों केा भी बसुदेव जी ने पहिराया और जिमाया, पुनि उन्होंने यज्ञ की भेंट कर कर बिदा हो अपनी बाट ली। महाराज! सब राजाओं के जाते ही नारद जी समेत सारे ऋषि मुनि भी बिदा हुए। पुनि नन्दराय जी गेापी गेाप ग्वालबाल समेत सब बसुदेव जी से बिदा होने लगे, उस समय की बात कुछ कही नहीं जाती। इधर तेा यदुवंशी करुणाकर अनेक अनेक प्रकार की बातें करते थे और उधर सब

ब्रजवासी उसका बखान कुछ कहा नहीं जाता वह सुख देखते ही बनि आवे। निदान बसुदेव जी और श्रीकृष्णचन्द्र बलराम जी ने सब समेत नन्दराय जी को समझाय बुझाय पहिराय और बहुत सा धन दे बिदा किया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! इस भाँति श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी पर्व न्हाय यज्ञ कर सब समेत जब द्वारकापुरी में आये तो घर घर आनन्द मङ्गल भये बधाये।

८५—देवकी मृतक पुत्र-जीवन

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! द्वारकापुरी के बीच एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी जो बसुदेव जी के पास गये तो वे इन दोनों भाइयों को देख यह बात मन में विचार उठ खड़े हुये कि कुरुक्षेत्र में नारद जी ने कहा था कि श्रीकृष्णचन्द्र जगत् के कर्त्ता हैं और हाथ जोड़ बोले कि हे प्रभु! अलख अगोचर अविनाशी, सदा सेवती हैं तुम्हें कमला भई दासी। तुम हौ सब देवों के देव, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव। तुम्हारी ही ज्योति है चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, आकाश, तुम्हीं करते हौ सब ठौर प्रकाश। तुम्हारी माया है प्रबल उसने सारे संसार को भुलाय रक्खा है त्रिलोकी सुर नर मुनि ऐसा कोई नहीं जो उसके हाथ से बचा हो। महाराज! इतना कह पुनि बसुदेव जी बोले कि, नाथ!

चौपाई

केउ न भेद तुम्हारो जानै। वेदन माँझ अगाध बखानै॥
शत्रु मित्र नहिं केऊ तिहारो। पुत्र पिता न सहोदर प्यारो॥
पृथ्वी भार हरण अवतरो। जन के हेतु भेष बहु धरो॥

महाराज ! ऐसे कह बसुदेव जी बोले कि, हे करुणासिन्धु ! दीनबन्धु ! जैसे आपने अनेक अनेक पतितों को तारा, तैसे कृपा कर मेरा भी निस्तार कीजै जो भवसागर के पार हो आपके गुण गाऊँ। श्रीकृष्णचन्द्र बोले हे पिता ! तुम ज्ञानी होय पुत्रों की बड़ाई क्यों करते हो ? टुक आप ही मन में बिचारो कि भगवत् की लीला अपरम्पार है उसका पार आज तक किसी ने नहीं पाया, देखो वह,

चौ० घट घट माहिं ज्योति ह्वै रहै। ताही सों जग निर्गुण कहै॥
आपहि सिरजे आपहि हरै। रहै मिल्यो बाँध्यो नहिं परै॥
भू आकाश वायु जल ज्योति। पंचतत्व तें देह जो होति॥
प्रभु की शक्ति सबनि में रहै। वेद माहिं विधि ऐसे कहै॥

महाराज ! इतनी बात श्रीकृष्णचन्द्र जी का मुख से सुनते ही बसुदेव जी मोहवश होय चुप कर हरि के मुख देख रहे। तब प्रभु वहाँ से चल माता के निकट गये तो पुत्र का मुख देखते ही देवकी जो बोलीं—हे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ! एक दुःख मुझे जब तब शालै है। प्रभु बोले—सो क्या ? देवकी जी ने कहा कि, पुत्र ! तुम्हारे छः बड़े भाई जो कंस ने मार डाले हैं उनका दुःख मेरे मन से नहीं जाता। श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! बात के कहते श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले कि, माता ! तुम अब मति कुढ़ो मैं अपने भाइयों को अभी जाय ले आता हूँ। इतना कह पातालपुरी को गये, प्रभु के जाते ही समाचार पाय राजा बलि आय अति धूमधाम से पाटम्बर के पाँवड़े डाल निज मन्दिर में लिवाय ले गया। आगे सिंहासन पर बैठाय राजा बलि ने चन्दन अक्षत पुष्प चढ़ाय, धूप दीप नैवेद्य धर, श्रीकृष्णचन्द्र की पूजा की। पुनि सन्मुख खड़ा हो हाथ जोड़ अति स्तुति कर बोला कि, महाराज ! आपका आना यहाँ कैसे हुआ ? हरि बोले कि, राजा !

सतयुग में मरीचि ऋषि नाम एक ऋषि बड़े ब्रह्मचारी ज्ञानी सत्यवादी और हरिभक्त थे उनकी स्त्री का नाम उरना था, उसके छः बेटे थे, एक दिन वे दुहों भाई तरुण अवस्था में प्रजापति के सन्मुख जा हँसे, उनको हँसता देख प्रजापति ने महाकोप कर यह शाप दिया कि तुम जाय अवतार ले असुर हो। इस बात के सुनते ही ऋषि पुत्र अति भय खाय प्रजापति के चरणों पर जाय गिरे और बहुत गिड़गिड़ाय अति बिनती कर बोले कि, कृपा-सिन्धु! आपने तो शाप दिया पर अब कृपा कर कहिये कि इस शाप से कब मोक्ष पावेंगे? उनके दीन बचन सुनि प्रजापति ने दयालु हो कहा कि तुम श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन पाय मुक्ति होगे।

चौ० इतनी कहत प्राण तब गये। ते हिरणाकुश पुत्र जु भये॥
पुनि बसुदेव के जन्मे जाय। तिनको हत्यो कंस ने आय॥
मार तिन्हें माया ले आई। यह ठाँ राखि गई सुखदाई॥

उनका दुःख माता देवकी करती हैं इसलिये हम यहाँ आये हैं कि अपने भाइयों को ले जाय माता को देंगे और उनके चित्त की चिन्ता दूर करेंगे। श्रीशुकदेव जी बोले कि इतना बचन हरि के मुख से निकलते ही राजा बलि ने दुहों बालक ला दिये और बहुत सी भेंट आगे धरी; तब प्रभु वहाँ से भाइयों को साथ ले माता के पास आये। माता पुत्रों को देखि अति प्रसन्न हुई, इस बात को सुन सारी पुरी में आनन्द हुआ और उनका शाप छूटा।

८६—सुभद्रा-हरण श्रीकृष्णचन्द्र मिथिला गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! जैसे द्वारका से अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्र जी की बहिन सुभद्रा को हरि ले गये और जैसे

श्रीकृष्णचन्द्र मिथिला जाय रहे तैसे मैं कथा कहता हूँ, तुम मन लगाय सुनेा। देवकी की बेटी श्रीकृष्ण जी से छोटी जिसका नाम सुभद्रा जब व्याहन येाग्य हुई तब बसुदेव जी कितने एक कुटुम्बी और श्रीकृष्ण बलराम जी को बुलाय के कहा कि अब कन्या व्याहन येाग्य भई कहो किसको दीजै? बलराम जी बोले कि कहा है व्याह और बैर प्रीति समान से कीजै। एक बात मेरे मन में आई। कि यह कन्या दुर्येाधन को दीजै तेा जग में यस और बड़ाई लीजै। श्रीकृष्ण जी ने कहा—मेरे विचार में आता है जेा अर्जुन को लड़की दें तेा संसार में यश लें। श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! बलराम जी के कहने पर तो कोई कुछ न बोले पर श्रीकृष्णचन्द्र जी के मुख से बात निकलते ही सब पुकार उठे कि अर्जुन को कन्या देना अति उत्तम है। इस बात के सुनते ही बलराम जी बुरा मान वहाँ से उठ गये और उनका बुरा मानना देख सब लोग चुप रहे। आगे ये समाचार पाय अर्जुन संन्यासी का भेष बनाय दण्ड कमण्डल लें द्वारका में जाय एक भली सी ठौर मृगछाला बिछाय आसन मार बैठा।

चौपाई

चार मास वर्षा भर रह्यो। काहू मरम न ताको लह्यो॥
अतिथि जानि सब सेवन लागे। विष्णु हेतु तासों अनुरागे॥
वाको भेद कृष्ण सब जान्यो। काहू सों तिन नाहिं बखान्यो॥

महाराज! एक दिन बलदेव जी भी अर्जुन को साधु जान कर घर जिमाने लिवाय ले गये ज्यों अर्जुन भेाजन करने बैठे त्यों चन्द्र-वदनी मृगलेाचनी सुभद्रा जी दृष्टि आईं; देखते ही उधर तेा अर्जुन मेाहित हेा सब की दीठ बचाय फिर देखने लगे और लगे मनहीं मन यह विचार करने कि देखिये बिधाता कब जन्मपत्री की विधि

मिलावै और इधर सुभद्रा जी इनके रूप की छटा देख रीझ तन मन से यों कहती थी कि :—

चौ० है कोउ नृपति नाहिं संन्यासी। का कारण यह भयो उदासी॥

महाराज! इतना कह उधर तो सुभद्रा जी घर में जाय पति के मिलने की चिन्ता करने लगीं और इधर भोजन कर अर्जुन अपने आसन पर आय प्रिया के मिलने की अनेक अनेक प्रकार की भावना करने लगे। इसमें कितने दिन पीछे एक समय शिवरात्री के दिन सब पुरवासी क्या स्त्री क्या पुरुष नगर के बाहर शिव पूजन को गये तहाँ सुभद्रा जी अपनी सखी सहेलियों समेत गईं; उनके जाने का समाचार पाय अर्जुन भी रथ पर चढ़ धनुष बाण ले वहां जाय उपस्थित हुये। महाराज! ज्यों शिव पूजन कर सखियों को साथ ले सुभद्रा जो फिरीं त्यों देखते ही शोच संकोच तज अर्जुन ने हाथ पकड़ उठाय सुभद्रा को रथ में बैठाय बाट ली।

चौपाई

सुन कै राम कोप अति कर्‌यो। हल मूसल ले काँधे धर्‌यो॥
राते नयन रक्त से करे। घन सम गाज बोल उच्चरै॥
अबहीं जाय प्रलय मैं करिहौं। भुव उठाय माथे पर धरिहौं॥
मेरी बहिन सुभद्रा प्यारी। ताको कैसे हरै भिखारी॥
अबहीं जहँ संन्यासी पाऊँ। तिनको सब कुल खोज मिटाऊँ॥

महाराज! बलराम जी तो महाक्रोध में बक झक रहे ही थे कि इस बात के समाचार पाये प्रद्युम्न अनिरुद्ध शाम्ब और बड़े बड़े यादव बलदेव जी के सन्मुख आय हाथ जोड़ जोड़ बोले कि, महाराज! हमें आज्ञा होय तो शत्रु को पकड़ लावें। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! जिस समय बलराम

जी सब यदुवंशियों को साथ ले अर्जुन के पीछे चलने को उपस्थित हुए उस काल श्रीकृष्णचन्द्र जी ने जाय बलदेव जी को सुभद्रा हरण का सब भेद समझाय और अति बिनती कर कहा कि, भाई अर्जुन एक तो हमारी फूफी का बेटा और दूसरे परम मित्र उसने जाने अनजाने समझे बिन समझे यह कर्म किया तो किया पर हमें उससे लड़ना किसी भाँति उचित नहीं यह धर्म विरुद्ध है और लोक विरुद्ध। इस बात को जो सुनेगा सो कहेगा कि यदुवंशियों की प्रीति है बालू की सी भीत। इतनी बात के सुनते ही बलराम जी शिर धुन झुँझलाकर बोले कि यह तुम्हारा ही काम है कि आग लगाय पानी को दौड़ना, नहीं तो अर्जुन की क्या सामर्थ्य थी जो हमारी बहिन को ले जाता? इतना कह मनही मन पछताय ताव पेच खाय बलराम जी भाई का मुख देख हल मूसल पटक बैठ रहे और उनके साथ सब यदुवंशी भी।

श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! इधर तो श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सब को समझाय बुझाय रक्खा और उधर अर्जुन ने घर जाय वेद की विधि से सुभद्रा के साथ ब्याह किया। ब्याह के समाचार पाय श्रीकृष्ण बलराम जी ने वस्त्र, आभूषण, दास दासी, हाथी, घोड़े, रथ और बहुत से रुपये एक विप्र के हाथ संकल्प कर हस्तिनापुर भेज दिये। आगे श्रीमुरारी भक्त हितकारी रथ पर बैठ मिथिला को चले, जहाँ श्रुतदेव बहुलाश्व नाम एक राजा और एक ब्राह्मण दो भक्त थे। महाराज! प्रभु के चलते ही नारद, वामदेव, व्यास, अत्रि, परशुराम आदि कितने एक मुनि आनि मिले और श्रीकृष्णचन्द्र जी के साथ हो लिये। पुनि जिस देश में ही प्रभु जाते थे तहाँ के राजा आगू आय आय पूज पूज भेंट धरते जाते थे। निदान चले चले कितने एक दिनों में प्रभु वहाँ पधारे, हरि के आने के समाचार पाय वे दोनों जैसे बैठे थे तैसे ही भेंट ले उठ धाये

और श्रीकृष्णचन्द्र के पास आये। प्रभु का दर्शन करते ही दोनों भेंट धर दण्डवत् कर हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हो अति बिनती कर बोले कि, हे कृपासिंधु! आपने बड़ी कृपा की जो हम से पतितों को दर्शन दे पावन किया और जन्ममरण का निवेरा चुका दिया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी, बोले कि, महाराज! अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र उन दोनों भक्तों के मन की भक्ति देख दो स्वरूप धारण कर दोनों के घर जाय रहे। उन्होंने मन मानता सब राव चाव किया और हरि ने कितने एक दिन वहाँ ठहर उन्हें अधिक सुख दिया। आगे प्रभु उनके मन का सब मनोरथ पूरा कर ज्ञान दृढ़ाय जब द्वारका को चले तब ऋषि मुनि पन्थ से बिदा हुए और हरि द्वारका में जा बिराजे।

८७–नरनारायण-नारद संवाद

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूँछा कि, महाराज! आप जो आगे कह आये कि वेद ने परम ईश्वर की स्तुति की सो निर्गुण ब्रह्म की स्तुति वेद ने क्योंकर की? यह मुझे समझाय कर कहो जो मेरे मन का सन्देह जाय। श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! सुनिये कि जिसने बुद्धि, इन्द्रिय, मन, प्राण, धर्म, अर्थ, काम मोक्ष को बनाया है सो प्रभु सदा निर्गुण रूप रहता है पर जब ब्रह्माण्ड रचता है तब सगुण स्वरूप होता है इससे निर्गुण सगुण वही एक ईश्वर है। इतना कह पुनि श्रीशुकदेव मुनि बोले कि, राजा! जो प्रश्न तुमने किया सोई प्रश्न एक समय नारद जी ने नर नारायण से किया था। राजा परीक्षित ने कहा कि, महाराज! यह प्रसंग मुझे समझा कर कहिये जो मेरे मन का सन्देह जाय। शुकदेव जी बोले कि,

राजा ! सत्युग में एक समय नारद जी ने सत्यलोक में जाय जहाँ नरनारायण अनेक मुनियों के संग बैठे तप करते थे पूँछा कि, महाराज ! निराकार ब्रह्म की स्तुति वेद किस भाँति करते हैं ? सो कृपा कर कहिये। नरनारायण बोले कि, सुन नारद ! जो सन्देह तूने मुझ से पूँछा यही सन्देह एक समय जन लोक में जहाँ सनातनादि ऋषि बैठे तप करते थे वहाँ हुआ था। तब सनन्दन मुनि ने कथा कह सब का सन्देह मिटाया। नारद जी बोले कि, महाराज ! मैं भी तो वहीं रहता हूँ जो यह प्रसङ्ग चलता तो मैं भी सुनता। नरनारायण ने कहा—नारद जी ! तब तुम श्वेत द्वीप में भगवत् दर्शन को गये थे तभी यह प्रसंग चला था इससे तुमने नहीं सुना। इतनी बात सुन नारद जी ने पूँछा, महाराज ! वहाँ क्या प्रसंग चला था ? सो कृपाकर कहिये। नरनारायण बोले कि, सुन नारद ! जब मुनियों ने यह प्रश्न किया तब सनन्दन मुनि कहने लगे कि सुनो जिस समय महाप्रलय होय चौदह ब्रह्माण्ड जलाकार हो जाते हैं उस समय पूर्णब्रह्म अकेले सोते रहते हैं। जब भगवान को सृष्टि करने की इच्छा होती है तब उनके श्वास से वेद निकल हाथ जोड़ स्तुति करते हैं, ऐसे कि जैसे कोई राजा अपने स्थान पर सोता हो और बन्दीजन भीरहीं उसका यश गाय गाय उसी को जगावें इसीलिये कि चैतन्य हो शीघ्र अपने कार्य को करें। इतना प्रसङ्ग कह नरनारायण बोले कि सुन नारद ! प्रभु के मुख से निकल वेद यह कहते हैं कि, हे नाथ ! वेग चैतन्य हो सृष्टि रचो और जीवों के मन से अपनी माया दूर करो क्योंकि वे तुम्हारे रूप को पहिचानें, माया तुम्हारी प्रबल है यह सब जीवों को अज्ञान कर रखती है जो इससे छूटें तो जीव को तुम्हारे समझने का ज्ञान हो। हे नाथ ! तुम बिन इसे कोई वश नहीं कर सकता जिसके हृदय में ज्ञान रूप हो

तुम बिराजते हो सोई इस माया को जीतता है नहीं तो किसकी सामर्थ्य है जो माया के हाथ से बचे? तुम सबके कर्त्ता हो सब जीव तुम्हीं से उत्पन्न हो तुम्हीं में समाते हैं ऐसे कि जैसे पृथ्वी से अनेक वस्तु हो पुनि पृथ्वी में मिल जाती हैं। कोई किसी देवता की पूजा स्तुति करे पर वह तुम्हारी ही पूजा स्तुति होती है; ऐसे कि जैसे कोई कञ्चन के अनेक आभरण बनाय अनेक नाम धरे पर वह कंचन ही है, तिसी भाँति तुम्हारे अनेक रूप हैं और ज्ञान कर देखिये तो कोई कुछ नहीं, जिधर देखिये तिधर तुम ही तुम दृष्टि पड़ते हो। नाथ! तुम्हारी माया अपरम्पार है यही सत्व, रज, तम तीन गुण हो तीन स्वरूप धारण कर सृष्टि को उपजाय पालन नाश करती है इसका भेद किसी ने न पाया न कोई पावेगा। इसमे जीव को उचित यह है कि सब वासना छोड़ तुम्हारा ध्यान करे इसी में इसका कल्याण है। महाराज! इतना प्रसंग सुनाय नरनारायण ने नारद जी से कहा कि, हे नारद! जब सनन्दन मुनि ने पुरातन कथा कह सब के मन का सन्देह दूर किया। तब शौनकादि मुनियों ने वेद की विधि से सनन्दन मुनि की पूजा की। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जो बोले कि, हे राजा! यह नरनारायण का संवाद जो कोई सुनेगा सो निस्सन्देह मुक्ति पदार्थ पाय मुक्त होगा। जो कथा पूर्ण ब्रह्म वेद ने गाई सोई कथा सनन्दन मुनि ने शौनकादि मुनियों को सुनाई पुनि वही कथा नरनारायण ने नारद के आगे गाई नारद से व्यास ने पाई; व्यास ने मुझे पढ़ाई, सो मैंने अब तुम्हें सुनाई। इस कथा को जो जन सुने सुनावेगा सो मन मानता फल पावेगा। जो पुण्य होता है तप, यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ करने में सोई पुण्य होता है इस कथा के कहने सुनने में।

८८—रुद्रमोक्ष, वृकासुर-बध

श्रीशुकदेव जी बोले कि महराज ! भगवत् की अद्भुत लीला है इसे सब कोई जानता है, जो जन हरि की पूजा करे सो दरिद्र होय और महादेव को मानें सेा धनवान् । देखो हरि हर की कैसी रीति ? ये लक्ष्मीपति, वे गौरीपति ; ये धरें बनमाल, वे धरें मुण्ड-माल ; ये चक्रपाणि, वे त्रिशूलपाणि ; ये धरणीधर, वे गंगाधर ; ये मुरली बजावें, वे शृङ्गी ; ये बैकुण्ठनाथ, वे कैलाशनाथ ; ये प्रतिपालें, वे संहारें, ये चरचें चन्दन, ये लगावैं भस्म ; ये ओढ़े अम्बर, वे बाघम्बर ; ये पढ़ें वेद, वे आगम ; इनका वाहन गरुड़, उनका नन्दी, ये रहैं ग्वालबालों में, वे भूत प्रेतों में ।

चौ० दोऊ प्रभु की उलटी रीति । जित इच्छा तित कीजै प्रीति ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! राजा युधिष्ठिर से श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा है कि, हे युधिष्ठिर ! जिस पर मैं अनुग्रह करता हूँ, हौले हौले उसका सब धन खेाता हूँ, इसलिये कि धनहीन हो भाई बन्धु स्त्री पुत्र आदि सब कुटुम्ब के लोग तज देते हैं तब उसे वैराग्य उपजता है । वैराग्य होने से धन जन की माया छोड़ निर्मोही हेा मन लगाय मेरा भजन करता है । भजन के प्रताप से अटल निर्वाण पद पाता है । इतनी कथा कह पुनि श्रीशुकदेव जी कहने लगे कि, महाराज ! और देवता की पूजा करने से मनकामना पूरी होती है पर मुक्ति नहीं मिलती । यह प्रसंग सुनाय मुनि ने पुनि राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज ! एक समय कश्यप का पुत्र वृकासुर तप करने की अभिलाषा कर ज्यों घर से निकला त्यों पन्थ में उसे नारद मुनि मिले । नारद जी को देखते ही इसने दण्डवत् कर हाथ जेाड़ सन्मुख खड़ा हेा अति दीनता कर पूछा कि महाराज ! ब्रह्मा,

विष्णु, महादेव, इन तीनों देवताओं में शीघ्र बरदाता कौन है? सो कृपा कर कहो तो मैं उन्हीं की तपस्या करूँ। नारद जी बोले कि, सुन बकासुर! इन तीनों देवताओं में महादेव जी बड़े बरदाई हैं इन्हें न रीझते बिलम्ब न खीझते, देखो शिव जी ने थोड़े से तप करने में प्रसन्न हो सहस्रार्जुन को सहस्र हाथ दिये और अल्प ही अपराध में क्रोध कर उसका नाश किया। महाराज! इतना कह नारद मुनि तो चले गये और बृकासुर अपने स्थान पर आय महादेव का अति तप यज्ञ करने लगा; सात दिन के बीच उसने छुरी से अपने शरीर का मांस सब काट काट होम दिया। आठवें दिन जब शिर काटने का मन किया तब भोलानाथ ने आय उसका हाथ पकड़ के कहा कि मैं तुझसे प्रसन्न हुआ जो तेरी इच्छा में आवे सो वर माँग मैं तुझे अभी दूँगा। इतना वचन शिव जी के मुख से निकलते ही बृकासुर हाथ जोड़ कर बोला :—

दो० ऐसो बर दीजै अबै, जा शिर राखों हाथ।
भस्म होय सो पलक में, करहु कृपा तुम नाथ॥

महाराज बात के कहते ही, महादेव जी ने उसे मुँह माँगा वर दिया। वर पाय वह शिव जी के शिर पर हाथ धरने गया। उस काल भय खाय महादेव जी अपना आसन छोड़ भागे उनके पीछे असुर भी दौड़ा। महाराज! सदाशिव जी जहाँ जहाँ फिरे तहाँ तहाँ वह भी उनके पीछे ही लगा आया। निदान अति व्याकुल महादेव जी बैकुण्ठ में गये। इनको महा दुखित देख भक्त हितकारी बैकुण्ठनाथ श्रीमुरारी करुणानिधान करुणाकर विप्र भेष धर बृकासुर के सन्मुख जाय बोले कि, हे असुरराय! तुम इनके पीछे क्यों श्रम करते हो? यह मुझे समझा कर कहो। बात के सुनते ही बृकासुर ने सब भेद कह सुनाया। पुनि भगवान् बोले कि, हे

असुरराय ! तुम सा सयाना हो धोखा खाय, यह बड़े अचरज की बात है। इस नंग सुनंगे बावले भाँग धतूर खाने वाले योगी की बात कौन सत्य मानै ? यह सदा भस्म लगाये सर्प लिपटाये भयानक भेष किये भूत प्रेतों को संग लिये श्मशान में रहता है, इसकी बात किसके जी में आवे ? महाराज ! यह बात कह श्रीनारायण बोले कि, हे असुरराय ! जो तुम मेरा कहा झूठ न मानो तो अपने शिर पर हाथ रख देख लो।

महाराज ! प्रभु के मुख से इतनी बात सुनते ही माया के वश अज्ञान हो ज्यों वृकासुर ने अपने शिर पर हाथ धरा त्यों जल कर भस्म का ढेर हुआ। असुर के मरते ही सुर पुर में आनन्द के बाजन बाजने लगे और लगे देवता जय जय कार कर फूल वर्षाने विद्याधर गन्धर्व किन्नर हरि गुण गाने। उस काल हर ने हरि की स्तुति कर विदा किया और बृकासुर को मोक्ष पदार्थ दिया। श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! इस प्रसंग को जो सुने सुनावेगा सो निस्सन्देह हरि हर की कृपा से परम पद पावेगा।

८६—द्विजकुमार-हरण

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! एक समय सरस्वती के तीर सब ऋषि मुनि बैठे तप यज्ञ करते थे, कि उनमें से किसी ने पूँछा कि ब्रह्मा बिष्णु महेश इन तीनों देवताओं में बड़ा कौन है ? सो कृपा कर कहो। इसमें किसी ने कहा कि बिष्णु, किसी ने कहा ब्रह्मा, और किसी ने महादेव, पर सब ने मिल एक को बड़ा न बताया। तब कई एक बड़े बड़े मुनीशों ऋषीश्वरों ने कहा कि हम यों तो किसी की बात नहीं मानते। पर हाँ, जो कोई इन

तीनों देवताओं की जाके परीक्षा कर आये और धर्म स्वरूपी कहें तो उसका कहना सत्य मानै। महाराज ! यह बात सुन सब ने प्रणाम किया और ब्रह्मा के पुत्र भृगु को तीनों देवताओं की परीक्षा कर आने को आज्ञा दी। आज्ञा पाय भृगु मुनि प्रथम ब्रह्मलोक में गये और चुप चाप ब्रह्मा की सभा में जा बैठे ; न दण्डवत् की न स्तुति न परिक्रमा दी। राजा ! पुत्र का अनाचार देख ब्रह्मा ने महा कोप किया और चाहा कि शाप दूँ, पर पुत्र की ममता कर न दिया। उस काल भृगु ब्रह्मा को रजोगुण में आसक्त देख वहाँ से उठ कैलास में गये और जहाँ शिव पार्वती बिराजते थे, तहाँ जा खड़े भये, इन्हें देख शिव जी खड़े हो ज्यों हाथ पसार मिलने को हुए त्यों यह बैठ गया ; बैठते ही शिव जी ने अति क्रोध किया और इसके मारने को त्रिशूल हाथ में लिया। उस समय पार्वती जी ने अति बिनती कर पायों पड़ महादेव जी को समझाया और कहा कि यह तुम्हारा छोटा भाई है, इसका अपराध क्षमा कीजै।

चौ० चूक कछू बालक सों परै। साधु न कबहूँ मन में धरै॥

महाराज ! जब पार्वती जी ने शिव को समझा कर ठण्ढा किया तब भृगु महादेव जी को तमोगुण में लीन देख चल खड़े हुए। पुनि बैकुण्ठ में गये, जहाँ भगवान् मणियम कञ्चन के छपरखट पर फूलों की सेज में लक्ष्मी के साथ सोते थे ; जाते ही भृगु ने भगवान् के हृदय में एक लात ऐसी मारी कि वे नींद से चौंक पड़े। मुनि को देख लक्ष्मी को छोड़ छपरखट से उतर हरि भृगु जी का पाँव थाम शिर आँखों से लगाय लगे दाबने और यों कहने कि, हे ऋषिराय ! मेरा अपराध क्षमा कीजै, मेरे कठोर हृदय की चोट तुम्हारे कोमल चरण कमल में अनजाने लगी, यह दोष चित्त में न लीजै। इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही

भृगु जी अति प्रसन्न हो स्तुति कर बिदा हो वहाँ आये जहाँ सरस्वती तीर सब ऋषि मुनि बैठे थे; आते ही भृगु जी ने तीनों देवताओं का भेद सब ज्यों का त्यों कह सुनाया कि,

चौपाई

ब्रह्म राजस के लपटान्यो। महादेव तामस में सान्यो॥
विष्णु जेा सात्विक माहिं प्रधान। तिनते बड़ेा देव नहिं आन॥
सुनत ऋषिन को संशय गयेा। सब ही के मन आनन्द भयेा॥
विष्णु प्रशंसा सब ने करी। अविचल भक्ति हृदय में धरी॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! मैं अन्तर कथा कहता हूँ; तुम मन लगाय सुनो। द्वारकापुरी में राजा उग्रसेन तो धर्मराज करते थे और श्रीकृष्णचन्द्र बलराम उनके आज्ञाकारी। राजा के राज्य में सब लोग अपने अपने धर्म में सावधान, काजकर्म में सज्ञान रहते थे और आनन्द चैन करते थे, तहाँ एक ब्राह्मण भी अति सुशील धर्मिष्ठ रहता था। एक समय उसके पुत्र हो मर गया वह उस मरे पुत्र को ले राजा उग्रसेन के द्वार पर गया और जेा उसके मुँह में आया सों कहने लगा कि तुम बड़े अधर्मी पापी हो, तुम्हारे ही कर्म धर्म से प्रजा दुःख पाती है और मेरा भी पुत्र तुम्हारे ही पाप आचरण से मरा। महाराज! इसी भाँति की अनेक अनेक बातें कह मरे लड़के को राज द्वार पर रख ब्राह्मण अपने घर आया। आगे उसके आठ बेटे हुए आठों को वह उसी रीति से राज द्वार पर रख रख आया। जब नवाँ पुत्र होने को हुआ, तब वह ब्राह्मण फिर राजा उग्रसेन की सभा में जाय श्रीकृष्ण के सन्मुख खड़ा हो पुत्र के मरने का दुःख सुमिर सुमिर रो रो यों कहने लगा कि, धिक्कार है! राजा और इसके राज्य का; पुनि धिक्कार है उन लोगों को जेा इस अधर्मी की सेवा

करते हैं और धिक्कार है मुझे जो इस पुरी में रहता हूँ, जो इन पापियों के देश में न रहता तो मेरे पुत्र बचते, इन्हीं के अधर्म से मेरे पुत्र मरे और किसी ने उपाय न किया। महाराज! इसी ढब की सभा के बीच खड़े हो ब्राह्मण ने रो रो बहुत सी बातें कहीं पर कोई कुछ न बोला निदान श्रीकृष्णचन्द्र के पास बैठा सुन सुन घबराकर अर्जुन बोला कि, हे देवता! तू किसके आगे बात कहे है और क्यों इतना खेद करे है? इस सभा में कोई धनुर्धर नहीं जो तेरा दुःख दूर करै। आज कल के राजा आपकार्यो हैं परदुःख निवारक नहीं। जो प्रजा को सुख दें और गौ ब्राह्मण की रक्षा करें। ऐसे सुनाय अर्जुन ने पुनि ब्राह्मण से कहा कि देवता अब तुम जाय अपने घर निश्चिन्त हो बैठो, जब तुम्हारे लड़का होने का दिन आवे तब तुम मेरे पास आइयो मैं तुम्हारे साथ चलूँगा और लड़के को न मरने दूँगा। महाराज! इतनी बात के सुनते ही ब्राह्मण खिजलाय के बोला कि मैं इस सभा के बीच श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध छुड़ाय ऐसा बलवान् किसी को नहीं देखता जो मेरे पुत्र को काल के हाथ से बचावे? अर्जुन बोला कि, ब्राह्मण! तू मुझे नहीं जानता? कि मेरा नाम धनञ्जय है, मैं तुझे प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो मैं तेरा सुत काल के हाथ से न बचाऊँ तो तेरे मरे हुए लड़के जहाँ पाऊँ तहाँ से ले आय तुझसे दिखाऊँ और वे भी न मिलें तो गाण्डीव धनुष समेत अपने तईं अग्नि में जलाऊँ। महाराज! यह प्रतिज्ञा कर जब अर्जुन ने ऐसा कहा, तब वह ब्राह्मण सन्तोष कर अपने घर गया। पुनि पुत्र होने के समय विप्र अर्जुन के निकट आया। उस काल अर्जुन धनुष बाण ले उसके साथ उठ धाया। आगे वहाँ जाय उसका घर अर्जुन ने बाणों से ऐसा छाया कि जिस में पवन भी प्रवेश

न कर सके और आप धनुष बाण लिये उसके चारों ओर फिरने लगा। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! अर्जुन ने बहुत सा उपाय बालक बचाने को किया पर न बचा; और दिन बालक होने के समय रोता था उस दिन श्वास भी न लिया वरन् पेट ही से मरा निकला! मरे लड़के को सुनि लज्जित हो अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्र के निकट आया और उसके पीछे ब्राह्मण भी। महाराज! आते ही रो रो वह ब्राह्मण लगा कहने कि, रे अर्जुन! धिक्कार है तुझे और तेरे जीवन को जो मिथ्या वचन कह संसार में लोगों को मुख दिखाता है, अरे नपुंसक! जो तू मेरे पुत्र को काल से न बचा सकता था तो तैंने प्रतिज्ञा क्यों की थी? मैं तेरे पुत्र को बचाऊँगा और न बचा सकूँगा तो तेरे मरे हुए पुत्र सब ला दूँगा। महाराज! इतनी बात के सुनते ही अर्जुन धनुष बाण ले वहाँ से उठ चला चला संयमनीपुरी में धर्मराज के पास गया। इसे देख धर्मराज उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ स्तुति कर बोला कि, महाराज! आपका आगमन यहाँ कैसे हुआ? अर्जुन बोला कि मैं अमुक ब्राह्मण के बालक लेने आया हूँ। धर्मराज ने कहा कि यहां वे नहीं आये। महाराज! इतना बचन धर्मराज के मुख से निकलते अर्जुन बिदा हो वहाँ से सब ठौर फिरा; पर उसने ब्राह्मण के लड़कों को कहीं न पाया निदान अछता पछता द्वारकापुरी में आय चिता बनाय धनुष बाण समेत जलने को उपस्थित हुआ आगे अग्नि जलाय अर्जुन ज्यों चाहें कि चिता पर बैठें त्योंहीं श्रीमुरारी गर्वप्रहारी ने आय हाथ पकड़ और हँस के कहा कि, हे अर्जुन! तू मत जले तेरी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा। जहाँ उस ब्राह्मण के पुत्र होंगे तहाँ से ला दूँगा। महाराज! ऐसे कह त्रिलोकीनाथ रथ पर बैठ अर्जुन को साथ ले पूर्व दिशा की ओर को चले और सात समुद्र पार हो

लोकालोक पर्वत के निकट पहुँचे ; वहाँ जाय रथ से उतर कर अति अँधेरी कन्दरा में पैठे। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सुदर्शन चक्र को आज्ञा की, वह कोटिसूर्य्य का प्रकाश किये प्रभु के आगे आगे महा अन्धकार को टालता चला।

चौ० तम तजि केतिक आगे गये। जल में तबै जु पैठत भये॥
महा तरंग तासु में लसे। मूँदि आँखि ये तामे धसे॥
पहुचे हुते शेष जी जहाँ। कृष्ण अरु अर्जुन पहुँचे तहाँ॥

जाते ही आँखें खोल कर देखा कि एक बड़ा लम्बा चौड़ा ऊँचा कञ्चन का मणिमय मन्दिर अति सुन्दर है, तहाँ शेष जी के शीश पर रत्नजटित सिंहासन धरा है तिस पर श्याम घन रूपी, सुन्दर स्वरूप, चन्द्रबदन कमल नयन, किरीट कुण्डल पहिने पीतबसन ओढ़, पीताम्बर काछे, बनमाल मुक्तमाल डाले, आप प्रभु मोहनी मूर्त्ति बिराजे हैं और ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, आदि सब देवता सन्मुख खड़े स्तुति करते हैं। महाराज ! ऐसा स्वरूप देख अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र जी ने प्रभु के सोंहीं जाय दण्डवत कर हाथ जोड़ कर अपने जाने का सब कारण कहा बात के सुनते ही प्रभु ब्राह्मण के बालक सब मँगाय दीने और अर्जुन ने देख भाल प्रसन्न हो लीने तब प्रभु बोले :—

चौपाई

तुम दोउ मेरी कला जु आहि। हरि अर्जुन देखो चित्त चाहि॥
भार उतारन भूपर गये। साधु सन्त को बहु सुख दये॥
असुर दैत्य तुम सब संहारे। सुर नर मुनि के काज संवारे॥
मेरे अंश जो तुम में ह्वैहैं। पूरण काम तुम्हारे ह्वैहैं॥

इतना कह भगवान् ने अर्जुन और श्रीकृष्ण जी को बिदा किया। ये बालक ले पुरी में आये द्विज के पुत्र द्विज ने पाये,

घर घर आनन्द मङ्गल भये बधाये। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज !

चौ० जो यह कथा सुने धर ध्यान। तिनके पुत्र होयँ कल्यान ॥

९०—द्वारका विहार वर्णन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! द्वारकापुरी में श्रीकृष्णचन्द्र बिराजें, ऋद्धि सिद्धि सब यदुबंशियों के घर घर राजें नर नारी बसन आभूषण ले नवभेष बनाये, चोवा चन्दन चर्च सुगन्ध लगाये, महाराज ! हाट बाट और चौहटे झाड़ बुहार छिरकावें, तहाँ देश देश के व्यापारी अनेक अनेक पदार्थ बेचने को लावें। जिधर तिधर पुरबासी कुतूहल करैं, ठौर ठौर ब्राह्मण वेद उच्चरैं। घर घर लोग कथा पुराण सुने सुनावें, साधु सन्त आठों याम हरि यस गावें। सारथी रथ घुड़बहल जोत जोत राजद्वार पर लावें। रथी, महारथी, गजपति, अश्वपति, शूरबीर, रावत, योधा, यादव, राजा को जुहार करने आवें। गुणीजन नाचें, गावें, बजावें, रिझावें; बन्दीजन चारण यश बखान कर, हाथी, घोड़े, बस्त्र, अन्न, धन, कञ्चन के रत्नजटित आभूषण पावें।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा से कहा कि, महाराज ! उधर तो राजा उग्रसेन की राजधानी में इसी रीति से भाँति भाँति के कुतूहल हो रहे थे और इधर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द सोलह सहस्र एक सौ आठ युवतियों के साथ नित्य बिहार करें। कभी युवतियाँ प्रेम में आसक्त हो प्रभु का भेष बनाय कर कभी हरि आसक्त हो युवतियों को शिंगारे और जो परस्पर लीला क्रीड़ा करें सो अकथ है मुझसे कही नहीं जाती वह देखे ही बनि आवे। इतना कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज !

एक दिन रात्रि समय श्रीकृष्णचन्द्र सब युवतियों के साथ बिहार करते थे और प्रभु के नाना प्रकार के चरित्र देख देख किन्नर गन्धर्व बीण पखावज भेर दुन्दुभी बजाय बजाय गुण गाते थे और एक समा हो रहा था, कि इसमें बिहार करते करते जो कुछ प्रभु के मन में आया तो सब को साथ ले सरोवर के तीर जाय नीर में पैठ जलक्रीड़ा करने लगे। आगे जलक्रीड़ा करते करते सब स्त्री श्रीकृष्णचन्द्र के प्रेम में मग्न हो तन मन सुरत भुलाय एक चकवा चकवी को सरोवर के वार पार बैठे बोलती देख बोली—

चौपाई

हे चकई तू दुख क्यों गोवे। पिय वियोग तें रैन न सोवे॥
अति व्याकुल ह्वै पिया पुकारे। हम सी तू निज पियहि सँभारे॥
हम तो विनकी चेरी भई। ऐसे कहि आगे को गई॥

पुनि समुद्र से कहने लगीं को, हे समुद्र! तू जो लम्बी श्वास लेता है और रात दिन जागता है सो क्या तुझे किसी का वियोग है? कि चौदह रत्न गये का शोक है? इतना कह फिर चन्द्रमा को देख बोलीं, हे चन्द्रमा! तू क्यों तनत्तीण मन मलीन हो रहा है? क्या तुझे राजरोग हुआ, जो दिन दिन घटता बढ़ता है; कै श्रीकृष्णचन्द्र को देख जैसे हमारी गति मति भूलती है, तैसे तेरी भी भूली है।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा से कहा कि, महाराज! इसी भाँति सब युवतियों ने पवन, मेघ, कोकिला, पर्वत, नदी, हंस से अनेक अनेक बातें कहीं सो जान लीजे। आगे सब स्त्री श्रीकृष्णचन्द्र के साथ बिहार करें और सदा सेवा में रहें, प्रभु के गुण गावें और मनवाञ्छित फल पावें, प्रभु गृहस्थाश्रम चलावें। महाराज! सोलह सहस्र एक सौ आठ श्रीकृष्णचन्द्र की रानी, जो प्रथम बखानी, तिनमें एक एक रानी

के दश दश पुत्र और एक एक कन्या थीं और उनकी सन्तान अगणित हुई सेा मेरी सामर्थ्य नहीं जेा उनका बखान करूँ। पर मैं इतना जानता हूँ कि तीन करोड़ अट्ठासी सहस्र एक सौ पाठशाला थीं, श्रीकृष्णचन्द्र की सन्तान के पढ़ाने को; और इतने ही पांडे थे। आगे श्रीकृष्ण जी के जितने बेटे पोते नाती हुए, रूप बल पराक्रम धन धर्म में कोई कम न था, एक एक से बढ़ कर था. उनका वर्णन मैं कहाँ तलक करूँ? इतना कह ऋषि बेाले—महाराज! मैंने ब्रज और द्वारका की लीला गाई, यह है सब को सुखदाई; और जेा जन इसे प्रेम सहित गावेगा, सेा निस्सन्देह भुक्ति मुक्ति पदार्थ पावेगा। जेा फल होता है तप, यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ, स्नान करने में, सेा फल मिलता है हरि कथा सुनने और सुनाने से।

॥ इति ॥

Printed by Ramzan Ali Shah at the National Press, Allahabad.

चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा कृत

१—आरम्भोपन्यास, प्रथम भाग
(सचित्र) ... ॥=)
२— ... दूसरा भाग
(सचित्र) ... ॥=)
३—श्रीमद्भागवत संग्रह
(सचित्र) ... ॥=)
४—रामायणीय संग्रह
(सचित्र) ... ॥=)
५—संक्षिप्त मनुस्मृति ... ।-)
६—संक्षिप्त-विष्णु-पुराण ॥=)
७—सच्ची-मनोहर-कहानियाँ ॥=)
८—उपदेश रत्न-माला ... ।-)
९—संक्षिप्त पाराशर स्मृति ।-)
१०—आश्चर्य्य-सप्त-दशी ... ।-)
११—ग्रीस और रोम की दन्त-
कथायें ... ।-)
१२—संक्षिप्त-मार्कण्डेय-पुराण ।-)
१३—हिन्दी महाभारत,
प्रथम खण्ड ... ॥=)
१४—हिन्दी-महा-भारत,
द्वितीय खण्ड ... ॥=)
१५—भारतीय उपाख्यान-माला,
प्रथम खण्ड ... ॥=)
१६—भारतीय-उपाख्यान माला,
द्वितीय खण्ड ... ॥=)
१७—सरल-पत्र बोध ... ।-)
१८—संक्षिप्त-कल्कि-पुराण ... ।-)
१९—शिष्टाचार-पद्धति ... ।-)
२०—हिन्दी-निबन्ध-शिक्षा ... ॥=)
२१—भाषा हितोपदेश ।-)
२२—दश कुमारों का वृत्तान्त ...।-)
२३—नाटकीय कथा ... ।-)
२४—हिन्दी व्याकरण शिक्षा ॥)
२५—याज्ञवल्क्य स्मृति-सार ।-)
२६—आदर्श-महात्मागण,
प्रथम भाग ... ॥=)
२७—आदर्श-महात्मागण,
द्वितीय भाग ... ॥=)
२८—श्रीमद्भागवद्गीतार्थ
संग्रह ... ।-)
२९—उपासना कल्पद्रुम ... ।-)
३०—पौराणिक उपाख्यान माला
प्रथम खण्ड ... ॥=)
३१—पौराणिक उपाख्यान माला
द्वितीय खण्ड ... ॥=)
३२—हिन्दी पद्य-संग्रह ॥=)
३३—हिन्दी महा-भारत-जिल्ददार
अठारहों पर्व सहित ... १)
३४—भारतीय-उपाख्यान माला
(सचित्र) ... १)
३५—पौराणिक उपाख्यान माला
सम्पूर्ण जिल्ददार ...१॥)

रामनारायण लाल, बुकसेलर, इलाहाबाद